UGC Care List Journal No. 20

अक्तूबर- दिसंबर, 2019

ISSN:2321-0443

सत्यमेव जयते

ज्ञान गरिमा सिंधु

शिक्षा विशेषांक

अंक 64

Digital India
Power To Empower

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

UGC Care List Journal No. 20 ISSN:2321-0443

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

शिक्षा विशेषांक

अंक 64

अक्तूबर-दिसंबर, 2019

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

2019

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु 'मानविकी और सामाजिक विज्ञान' की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान-संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र-व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएँगे। अत: लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए प्रोत्साहन के तौर पर आयोग के नियमानुसार मानदेय दिया जाएगा। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:
    संपादक, ज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड - 7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066
11. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक / पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

पत्रिका का शुल्क :	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों / संस्थाओं के लिए प्रति अंक	₹ 14.00	पौंड 1.64 डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	₹ 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	₹ 8.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	₹ 30.00	पौंड 3.50 डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.education.gov.in

कॉपीराइट : ©2019

प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड -7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड -7,
रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
टेलीफोन - (011) 20867172
फैक्स - (011) 26105211/246

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक मंडल की इनसे सहमति आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष की कलम से

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का ध्येय विविध विज्ञानों, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) तथा संबद्ध विषयों पर ऐसी मानक शब्दावली प्रस्तुत करना है जिसका शिक्षा जगत द्वारा अपने सभी कार्य-कलापों में सुगमतापूर्वक प्रयोग किया जा सके। इसी को व्यावहारिक रूप से अपनाने के लिए आयोग द्वारा विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों आदि के स्तर पर संगोष्ठियों, कार्यशालाओं आदि का आयोजन कराया जाता है जिससे शब्दावली की व्यवहार्यता पर सीधा संवाद किया जा सके, तत्संबंधी समस्याओं को समझा जा सके। उच्च तथा उच्चतर शिक्षा में समाज वैज्ञानिक तथा मानविकी विषयों पर मौलिक रूप से हिंदी लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए **"ज्ञान गरिमा सिंधु"** का प्रकाशन किया जाता है।

पिछले कुछ समय से आयोग 'ज्ञान गरिमा सिंधु' के अंकों को विषय विशेष केंद्रित पत्रिका के रूप में प्रकाशित कर रहा है। अभी तक 'जनसंचार', 'राजनीति विज्ञान', 'पर्यटन' आदि विशेषांक प्रस्तुत किए जा चुके हैं। इसी शृंखला में 'शिक्षा' पर केंद्रित यह शिक्षा विशेषांक प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है।

शिक्षा समाज और व्यक्ति के भविष्य को सार्थक और उन्नत बनाने की दिशा में महती योगदान करती है। शिक्षा एक ऐसा कौशल है जिसे साधन बनाकर उन्नति के नूतन सोपान गढ़े जा सकते हैं, नए-नए द्वार खोले जा सकते हैं। शिक्षा एक व्यापक शब्द है जिसका हमारे जन-जीवन के प्रत्येक विषय / क्षेत्र से नाता है। हमारा प्रत्येक कार्य-कलाप, 'शिक्षा' से जुड़ा हुआ है।

शिक्षा हमें वास्तविक रूप में सुशिक्षित-सुसंस्कृत मानव बनाती है। शिक्षा के अभाव में मानव जीवन संपूर्ण नहीं हो सकता है। शिक्षा का साधारण अर्थ सीखना और सिखाना ही है। शिक्षा (सीखने) प्राप्ति की कोई वय सीमा नहीं होती। मनुष्य जीवन पर्यन्त सीखता रहता है। जागरूक व्यक्ति कदम-कदम पर 'शिक्षा' ग्रहण करता चलता है। सड़क पर चलते समय पैर में ठोकर लगने से यह सीख मिलती है कि सावधानीपूर्वक चलने से आकस्मिक दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है। सजगता, सतर्कता दोनों ही शिक्षा के महत्वपूर्ण पक्ष हैं।

शिक्षा के विविध पक्षों को प्रतिपादित करने वाले कुछ विशिष्ट लेखों को इस 'शिक्षा विशेषांक' में प्रस्तुत किया जा रहा है। यह विशेषांक शिक्षा क्षेत्र से जुड़े विशिष्ट विद्वानों के मार्गदर्शन और चयनित लेखकों के परिश्रम का सुप्रयास है। हमारे इस प्रयास के संदर्भ में आपके सुझाव प्रतीक्षित रहेंगे।

(प्रो. एम. पी. पूनियां)
अध्यक्ष

संपादकीय

ज्ञान गरिमा सिंधु का 64वाँ अंक 'शिक्षा विशेषांक' के रूप में आपके कर कमलों में सौंपते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है।

शिक्षा अत्यंत व्यापक विषय है। प्रत्येक नर-नारी, वयस्क- अवयस्क, छोटे-बड़ों के साथ-साथ जीवन का प्रत्येक अंग-उपांग इससे प्रभावित रहता है। यह दूसरी बात है कि हम उसे हर समय अनुभव नहीं कर पाते हैं। अज्ञानरूपी अंधकार पर शिक्षारूपी प्रकाश से विजय पायी जा सकती है। जागरूक व्यक्ति प्रत्येक पग पर शिक्षा ग्रहण कर लेता है।

शिक्षा केवल विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय तक ही सीमित नहीं अपितु जीवन के हर मोड़ पर यह हमें प्रभावित करती है। बाल्यकाल में माता-पिता, परिवार एवं समाज से प्राप्त संस्कार, ज्ञान और अनुभव शिक्षा की आधारशिला का काम करते हैं। इसी संदर्भ में गांधी जी यह मानते थे कि "सुघड़ घर के समान कोई स्कूल नहीं हो सकता, न ईमानदार सदाचारी माता-पिता के समान कोई अध्यापक ही हो सकता है" । इसके दूसरे पक्ष को प्रतिपादित करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद ने कहा है कि कभी-कभी उन लोगों से भी शिक्षा मिलती है जिन्हें हम अभिमानवश अज्ञानी समझते हैं।

प्रस्तुत विशेषांक में विषय की व्यापकता के अनुरूप विभिन्न महाविद्यालयों के शिक्षा संकाय तथा संम्बद्ध विषयों के विशेषज्ञों से संपर्क कर आलेख आमंत्रित किए गए। प्राप्त आलेखों में से विविध क्षेत्रों के आलेखों को इस विशेषांक में संकलित किया गया है। डॉ. सुभाष सिंह ने 'शिक्षाशास्त्र के संप्रत्यय अध्ययन' को प्रो. दिनेश मणि ने 'शिक्षा के मूल स्वर' को सहज एवं सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। निजी कोचिंग देश में शिक्षा को किस तरह प्रभावित कर रही है इसे श्रीपाल जैन के आलेख में पढ़ा जा सकता है। गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचार आज भी समीचीन हैं और इसे डॉ. कमलेश सिंह अपने आलेख से अभिव्यक्त कर रहे हैं। 'रामचरितमानस में निहित मूल्य' से शिक्षा और संस्कारों के मूल्यों को अभय तिवारी अवगत करा रहे हैं। 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बौद्ध-दर्शन की प्रासंगिकता', 'वैश्वीकरण और भारत में सार्वभौम शिक्षा', 'बुनियादी अंकगणितीय ज्ञान और साक्षरता कौशल', 'समृद्ध राष्ट्र की धुरी बालिका शिक्षा' की जानकारी क्रमशः प्रो. आर. पी. पाठक, डॉ. अभय प्रसाद सिंह, डॉ. सुषमा सिंह, डॉ. डोरीलाल ने लिपिबद्ध किया है।

शिक्षा के अन्य विविध पक्ष यथा- 'शिक्षा, समाज और भविष्य', 'शिक्षण अभ्यास में नवाचार', 'उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश', शिक्षण अधिगम, समावेशी शिक्षा, शिक्षा और संस्कृति, शिक्षा और मानवाधिकार, संस्कृत शिक्षा में नवाचार, जेलों में शिक्षा और इग्नू की भूमिका आदि आलेख शिक्षा के विविध पक्षों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त नियमित स्तंभ- 'ज्ञान चर्चा' आदि पूर्ववत् सुलभ हैं।

आशा है कि ज्ञान गरिमा सिंधु के जिज्ञासु पाठकवृंद इस 'शिक्षा विशेषांक' का पूर्व की भांति स्वागत करेंगे।

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल

सहायक निदेशक

परामर्श एवं संपादन मंडल

प्रधान संपादक
प्रोफेसर एम. पी. पूनियां
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, सहायक निदेशक

संपादन समिति

प्रो. आर. पी. पाठक,
शिक्षा संकाय
श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रीय संस्कृत
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. अजय कुमार दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर,
शिक्षा विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर (उ.प्र.)

डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी
पूर्व प्रबंधक
(राजभाषा) वित्त मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली

डॉ. डी. प्रसाद
पूर्व व.वै. अधिकारी
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय,
नई दिल्ली.

श्री. के. के. सिंह
पूर्व उपनिदेशक (भाषा)
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
नई दिल्ली

डॉ. अमित कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग,
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज,
प्रयागराज, उ.प्र.

डॉ. बी. के. सिन्हा
पूर्व वैज्ञानिक अधिकारी, वै.त.श. आयोग
नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं.
1	शिक्षा के मूल स्वर	प्रो. (डॉ.) दिनेश मणि	1
2	शिक्षा, समाज और भविष्य	ऋषभ कुमार मिश्र	8
3	वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता	प्रो. आर.पी.पाठक	16
4	वैश्वीकरण और भारत में सार्वभौम शिक्षा	डॉ. अभय प्रसाद सिंह	23
5	भारत में शिक्षा पर निजी कोचिंग संस्थाओं का कसता शिंकजा	श्रीपाल जैन	31
6	शिक्षण अभ्यास में नवाचार	डॉ. जयशंकर शुक्ल	40
7	उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेशः क्रियान्वयन का व्यावहारिक प्रस्ताव	डॉ. सरोज कुमार वर्मा	49
8	शिक्षण अधिगम एवं सूचना प्रौद्योगिकी	डॉ.अमित कुमार, आकांक्षा तिवारी	55
9	टैगोर और गांधी के शिक्षा संबंधी विचार	डॉ. कमलेश सिंह	61
10	समावेशी शिक्षा वर्तमान समय की आवश्यकता	डॉ. विभा दुबे, डॉ. मनीष कुमार दुबे	69
11	शिक्षा और संस्कृति : एक दार्शनिक उपादेयता	डॉ. अमिता पाण्डेय	75
12	बुनियादी अंकगणितीय ज्ञान और साक्षरता कौशल	डॉ. सुषमा सिंह	81
13	अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में महिला संदर्भित अनुसंधान : एक प्रवृत्त्यात्मक अध्ययन	गौरव रानी, अजय सुराणा, प्रो. मधु माथुर	85
14	उच्च शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी एवं कौशल विकास का महत्व	डॉ. अविनाश पारीक	90
15	शिक्षा और मानवाधिकार	डॉ. नावेद जमाल	98
16	वनस्थली विद्यापीठ के अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र की कार्यप्रणाली	गौरव रानी, डॉ. अजय सुराणा, डॉ. प्रिया सोनी खरे	105
17	उत्तराखंड राज्य का संस्कृत शिक्षा में योगदान	संतोष कुमार काण्डपाल	114
18	रामचरित मानस में निहित मूल्य	अभय तिवारी	126
19	ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा एवं जागरुकता में विज्ञापन की भूमिका	डॉ. रेणू सिंह, डॉ. शशि गौड़	133
20	समृद्ध राष्ट्र की धुरी बालिका शिक्षा	डॉ. डोरी लाल	139
21	संस्कृत शिक्षा में नवाचार	डॉ. कुन्दन कुमार	145
22	जेलों में शिक्षा और इग्नू की भूमिका	डॉ. वर्तिका नन्दा	153
23	शिक्षा शास्त्र के संप्रत्यय अध्ययन में वस्तुनिष्ठता	डॉ. सुभाष सिंह	161
	विविध **ज्ञान-चर्चा**		
1	पेशीय ऐंठन	सतीश चन्द्र सक्सेना	167
2	बचा भोजन और उसका सदुपयोग	सतीश चन्द्र सक्सेना	170
3	महिलाओं में अस्थिसुषिरता (आस्टियोपोरोसिस)	डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन	172

4	जैविक घड़ी	डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन	175
5	पक्षियों के घोंसले	डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन	177
6	श्रोणिशोथ रोग (पेल्विक इन्फेलेमेटरी डिजीज)	डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन	179
7	पत्रिकाएँ (त्रैमासिक) Journals (Quaterly) बिक्री संबंधी नियम / Rules Regarding Sales		181
8	पत्रिका की सदस्यता हेतु ग्राहक/ अभिदान फार्म		184
10	प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र / Sale Counters of Department of Publication		185

शिक्षा के मूल स्वर

डॉ. दिनेश मणि[1]

शिक्षा के उपयोगी स्वरूप को सभी ने स्वीकार किया है, इससे समय-समय पर जो अनेक अपेक्षाएं की जाती हैं उनसे यह आभास होता है मानो यह एक स्वायत्त प्रणाली हो। यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा क्रियाशीलता को बढ़ाने वाली हो और परिवर्तन की प्रमुख प्रवर्तक बने।

विकसित देशों में अध्यापन और अनुसंधान की दिशा, निरंतरता, पूर्वानुमेयता और समरूपता के बजाय गतिशीलता, अनुकूलन, अनुपूरकता और अज्ञात की खोज की ओर चल पड़ी है। 'ज्ञान के विस्फोट' की क्रांति ने भारत को सतही तौर पर ही स्पर्श किया है। उच्च शिक्षा की अवधारणाओं, उपकरणों, तकनीकों और संगठनात्मक ढांचे को वर्तमान दुनिया की गत्यात्मकता और भविष्य की ज्ञेय प्रवृत्तियों के लिए उनकी सार्थकता से परखना होगा।

मानव-जाति का भविष्य एक संतुलित और न्यायपूर्ण विश्व-व्यवस्था पर निर्भर है, राष्ट्रीय स्तर पर लोभ-लालच और स्वार्थपरता, हिंसा और विनाश को जन्म देती है । शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अंतरराष्ट्रीय सद्भाव और मेल-मिलाप के सबल कारक सम्मिलित किए जाएं।

जीवन के लिए शिक्षा, शिक्षा का सामाजिक वातावरण से जुड़ाव, शैक्षिक ढांचे में कार्य अनुभव और शिल्प-प्रशिक्षण की व्यवस्था, एक ऐसी प्रणाली विकसित करने तथा समाज-सेवा के सार्थक कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों और अध्यापकों को समाज से जोड़ने की आवश्यकता इत्यादि महत्वपूर्ण धारणाएं हैं जिनकी उपेक्षा करना संपूर्ण शिक्षा जगत के लिए उचित नहीं है। शिक्षा को पुनः परिभाषित करना और उसकी संकल्पना को व्यापक बनाना अति आवश्यक है।

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए अति आवश्यक है। शिक्षा न केवल प्रचलित सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखती है अपितु नए मूल्यों का सृजन भी करती है। शिक्षा में सामाजिक परिवर्तन लाने की

[1] **प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग, इलाहाबाद, केंद्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)**

क्षमता होती है। शिक्षा बड़े स्तर पर सामाजिक परिवर्तन हेतु एकमात्र अभिकरण है। सामाजिक परिवर्तन के द्वारा समाज का विकास होता है।

शिक्षा मानवीय व्यक्तित्व के व्यवहारगत अधिगम की रचनात्मक प्रक्रिया है। इससे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तथा समाज एवं राष्ट्र की प्रगति होती रहती है। शिक्षक ही इस संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का प्राण तत्व है जो अपनी रचनात्मक ऊर्जा से समाज के नवनिर्माण में, युवा पीढ़ी में सृजनात्मक चेतना का संचार करता है, इसलिए राष्ट्र के अभ्युत्थान में उसकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टियों से शिक्षक को शिक्षा प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। इस दृष्टि से नि:सन्देह शिक्षक का प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व, उसका पाण्डित्य, अभिव्यक्ति शैली, उसकी गहरी आत्मीय संवेदनशीलता और उसका गरिमापूर्ण जीवन स्तर उसकी शिक्षण कला को निरंतर उत्प्रेरित करते रहते हैं, जिसमें आनंददायी अधिगम प्रक्रिया मानवीय व्यक्तित्व को संजोने और संवारने में सार्थक होती है।

किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रणाली को अपनी सामाजिक उपयोगिता को जीवन्त बनाए रखने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में सतत हो रहे परिवर्तनों पर नजर रखना जरूरी है। जिससे हम समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए समय-समय पर अपेक्षित पुनरीक्षण के पश्चात् एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास करें जो सामयिक चुनौतियों से निपटने के लिए समर्थ और कारगर हो।

वास्तव में समाज को कुछ स्थाई मूल्यों और तत्संबंधी उद्देश्यों की आवश्यकता है। परंतु, स्थायित्व और परिवर्तन दोनों आवश्यकताओं में एक दूसरे प्रकार से भी समाधान हो सकता है। सामाजिक नियंत्रण के रूप में शिक्षा बालकों को सामाजिक व्यवहार के अनुकूल बनाती है। प्रभुता संपन्न राज्य में व्यवहार का आयाम सीमित और आलोचना का निषेध होगा। परंतु जनतांत्रिक समाज में समाज के अनुकूल के अर्थ में परिवर्तन की योग्यता और तत्परता दोनों सम्मिलित हैं। इसके तीन कारण हैं –

1. जनतंत्र की परंपरा में विचारों और उनकी अभिव्यक्ति की अधिकतम स्वतंत्रता है, एवं आलोचना तथा परिवर्तन का आदर है।

2. जनतंत्र के मूल्यों में स्वयं जनतंत्र में भी सुधार की संभावनाओं पर दृष्टि और विश्वास होता है

3. परिवर्तन का निर्देश करने वाली सामाजिक शक्तियां शासन के नियंत्रण में होती हैं और उनका कार्यान्वयन सर्वसम्मति से होता है।

शिक्षक को यह नहीं समझना चाहिए कि वह सब कुछ जानता है। श्रेष्ठ शिक्षक वही है जो ऐसी शिक्षा दे जिससे बच्चों का मस्तिष्क सक्रिय हो, उनमें जिज्ञासा की भावना पैदा हो। उनकी विचार करने की शक्ति तेज हो ताकि बच्चे के सर्वोत्तम गुण उभर कर सामने आएं और वह फूल की तरह विकसित हों। परंतु ऐसे सफल अध्यापकों की संख्या ज्यादा नहीं है।

शिक्षा को बेहतर बनाने का हमारा कोई भी प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक किसी भी शिक्षण प्रक्रिया की धुरी शिक्षकों की उन्नति और बेहतरी की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता । हम अपने शिक्षकों को जिस स्तर तक सम्मान देंगे उसी स्तर तक हम ऊपर उठ पाएंगे। शिक्षक जिन मूल्यों की शिक्षा दें, वे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप सही हों।

औपचारिक, अनौपचारिक, गैर-औपचारिक या निरोपचारिक तथा व्यावसायिक (वोकेशनल) शिक्षा द्वारा, जहां तक पहुंच सकें वहाँ तक प्रति व्यक्ति को शिक्षित करने का स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए जिससे शिक्षा योग्य प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचा जा सके। इसके लिए हमें सभी उपलब्ध माध्यम अपनाने होंगे। वास्तव में शिक्षा मूलतः ज्ञान के प्रसार का एक माध्यम है। प्रसार की विधियों को अब से 40 या 50 वर्ष पहले उपयोग की जा रही विधियों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। परंपरागत भारतीय शिक्षा प्रणाली एक व्यक्तिपरक थी, जिसमें गुरू और शिष्य के बीच निकट का व्यक्तिगत सम्पर्क रहता था। जबकि आज एक गुरू और कई शिष्य वाले युग में यह संबंध बिल्कुल समाप्त हो गया है। एक अध्यापक और एक शिष्य अथवा एक अध्यापक और तीन या चार छात्र पर आधारित संप्रषण प्रजाली तब मायने नहीं रखती जब हम एक अध्यापक और 100 छात्रों की बात कर रहे हों।

वास्तव में शिक्षा न तो अपने आप ही कोई क्रांति लाएगी और न ही नैतिक व्यवस्था में परिवर्तन करेगी। उसकी भूमिका तो अनिवार्य रूप से प्रारंभिक और समर्थक होगी लेकिन इसका महत्व भी इस दृष्टि से है कि यह हमें वैकल्पिक भविष्य की ओर अग्रसर होने में सहायता देती है। हमें बहुत निष्ठा और स्पष्टता के साथ श्रम और सादगी की ओर जाना होगा। विकास पर पुनर्विचार करते हुए हमें जीवन के गुणात्मक आयामों पर भी विचार करना होगा और शिक्षा को नए सामाजिक लक्ष्यों के अनुकूल बनाना होगा।

आधुनिक युग में शिक्षा को व्यक्ति और समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रभावकारी साधन के रूप में संगठित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। शिक्षा अब एक पूरक या वैकल्पिक विषय अथवा अनुत्पादक इकाई या उपेक्षित समाज सेवा मात्र नहीं है। देश की नई शिक्षा नीति में शिक्षा को मानव संसाधन के विकास की इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तात्पर्य यह है कि आज लोग अनुभव करने लगे हैं कि शिक्षा के अभाव में भौतिक संसाधनों का समुचित दोहन, दूसरे शब्दों में देश का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। किन्तु शिक्षा के भौतिक पक्ष पर अधिक महत्व देते समय हमें उसके नैतिक पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके विपरीत यदि व्यक्ति का विकास भौतिक सुख-समृद्धि बटोरने की मशीन के रूप में किया जाएगा तो इसके गंभीर सामाजिक दुष्परिणाम होंगे।

शैक्षिक संरचना सामाजिक ढाँचे का ही भाग है। तात्पर्य यह है कि राजनैतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक उपसंरचनाएं परस्पर संबंधित एवं परस्पर निर्भर हैं। शैक्षिक ढांचे को स्वरूप एवं शक्ति सामाजिक ढांचे से प्राप्त होती है और शैक्षिक ढाचा सामाजिक ढाँचे को बनाए रखने और उसमें संशोधन व परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता है जो उसके जीवन में पूर्णता की अनुभूति जगाए, सबके बीच समानता लाए, व्यक्तिगत उत्कृष्टता को बढ़ावा दे, व्यक्तिगत और सामूहिक आत्मनिर्भरता लाए और इन सबसे ऊपर राष्ट्रीय एकजुटता पर बल दे।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो हमारी जनता की आंतरिक शक्ति का निर्माण करे नई पीढ़ी को पुरातन विरासत से अवगत और युवा पीढ़ी के समक्ष कला और सौन्दर्य के भण्डार खोले। यह भी केवल एक क्षेत्र या एक राज्य की विरासत तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। स्थानीय संस्कृति, स्थानीय भाषा, स्थानीय विरासत का संगम सारे देश की विरासत से, भारतीय संस्कृति की समृद्धि विरासत के साथ होना चाहिए।

शिक्षा इसलिए दी जाती है कि हम संचित ज्ञान प्राप्त कर सकें। एक तरह से इसका उद्देश्य लोगों को वह ज्ञान देना है जो हमारे पास है। परंतु यही पर्याप्त नहीं है कि हम बच्चों को ज्ञान दें, कौशल सिखाएं और ऐसी नैतिक एवं अन्य मान्यताएं उन्हें दें जो हमें विरासत में मिली हैं बल्कि अपनी शिक्षा प्रजाली के द्वारा हमें उनको भविष्योन्मुखी बनाना होगा ताकि वे केवल अतीत में ही खोए न रहें बल्कि भविष्य के प्रति भी सोचें। अपनी शिक्षा प्रणाली में ऐसा परिवर्तन करना सचमुच कठिन कार्य है। लेकिन

यदि हम ऐसा नहीं कर पाए तो हम विकास की ओर एकबद्धता की प्रक्रिया को आवश्यक गति नहीं दे सकेंगे। भविष्योन्मुखी शिक्षा केवल विज्ञान और तकनीक प्रधान शिक्षा नहीं है, यद्यपि विज्ञान और तकनीक भी उसके अंग है। यह एक व्यापक अवधारणा है जिसके द्वारा हम नई पीढ़ी को भविष्य की ऐसी दिशा दिखाना चाहते हैं कि वे देश के विकास और सुदृढ़ीकरण को सही और व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख सकें। आज हमारा प्रयास यह है कि यह प्रणाली उद्धदिष्ट दिशाओं की ओर उन्मुख की जाए।

हम क्या सोचते हैं, क्या अनुभव करते हैं इसका संबंध हमारी पूरी संस्कृति और विरासत से है। हमें स्वयं को केवल आर्थिक प्रगति तक ही सीमित नहीं रखना है। शिक्षा क्षेत्र और अधिक व्यापक होना चाहिए। हमें अपने ज्ञान या पारंपरिक ज्ञान की उपेक्षा नहीं करनी है। जो ज्ञान हमें विरासत में मिला है उसको महत्वहीन नहीं माना जा सकता। दूर-दराज या पिछड़े क्षेत्रों में बसे हमारे लोग निरक्षर हो सकते हैं लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि उनमें बुद्धि नहीं है। वे बुद्धिमान हैं, कमी है तो केवल साक्षरता की, औपचारिक शिक्षा की। अतः ऐसे उपाय करने होंगे कि औपचारिक (फॉर्मल) शिक्षा कहीं उस बुद्धि और विवेक को समाप्त न कर दे जो हमारे लोगों में पहले से ही है। इस बुद्धि और विवेक को बनाए रखकर इस प्रकार औपचारिक शिक्षा द्वारा साक्षरता का प्रसार करना है कि लोग अंधविश्वास शोषण से मुक्त हो सकें। साक्षरता दासता से मुक्त होने का एक माध्यम है। साक्षरता से हमारे समाज की शक्ति बढ़ेगी।

शिक्षा से यह आशा की जाती है कि वह अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच के अंतराल को दूर करे। वह ज्ञान के प्रसार द्वारा यह कार्य संपन्न करती भी है। एक ओर यदि उपलब्ध ज्ञान का प्रसार शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य है तो नये ज्ञान की सर्जना भी उसका उतना ही महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। वास्तव में ऐसे विरले ही दर्शन और उपागम होंगे जो शिक्षा को एक अवरूद्ध और आबद्ध प्रणाली मानते हों, इसे तो दरअसल परिमाप और प्रभाव- दोनों दृष्टियों से निरतंर शिक्षा प्रक्रिया से अपेक्षा की जाती है कि वह उन सबके व्यक्तित्व के सर्वतोन्मुखी विकास की व्यवस्था करे जो इसमें प्रवेश लेते हैं। शिक्षा को मनुष्य को पूर्ण बनाने में सहायक होना चाहिए। शिक्षा से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह समाज के विकासात्मक उद्देश्यों को पूरा करे। शिक्षा दर्शन के आरंभिक प्रतिपादन में इस कार्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं था। शिक्षा पहले से ही निपुणता तथा व्यवसायीकरण का मुख्य साधन रही है और आज भी है। यद्यपि माना जाता है कि ये योग्यताएँ और क्षमताएँ सामाजिक विकास के बृहत्तर लक्ष्य के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं, किन्तु व्यावहारिक रूप से इनका घनिष्ठ संबंध वैयक्तिक हित-साधन

या समाज के संकुचित तथा विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के हितों के साथ ही बना हुआ है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा को अब एक नए उद्देश्य के साथ जोड़ा जाने लगा है। इससे सामाजिक परिवर्तन के एक ऐसे साधन के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जाती है जिसका प्रयोजन पूर्व निश्चित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो। इससे यह अपेक्षा भी है कि यह एक ऐसा साधन बने जो समस्याओं का समाधान कर सके, जिसकी सहायता से मानवजाति अज्ञात भविष्य की अनिश्चितताओं और झटकों को सहन करने योग्य बन सके।

सबको प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य उसी स्थिति में प्राप्त हो सकता है जब समाज का इसमें सक्रिय योगदान हो। अतीत में लोकोपकारी व्यक्तियों ने हमारी शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज फिर शिक्षा प्रणाली में नागरिकों की वैसी ही भागीदारी आवश्यक हो गई है। हमें ऐसी भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए उपाय करने हैं।

शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण, बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण, सांस्कृतिक विरासत, खेल-कूद, ललित कलाओं जैसे सदैव उपेक्षित, लेकिन व्यक्ति के विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों की तरफ ध्यान देना चाहिए। हमें अपन सर्वोत्तम मानव संसाधनों को जुटाना होगा। अधिक प्रतिभावान बच्चों को उनके विशेष गुणों का विकास करने का अवसर प्रदान करना है। हमने इस उद्देश्य से नवोदय विद्यालय का सुअवसर दिया है। यह स्कूलों की ऐसी योजना है जो जिलों और गावों में चल रहे पारम्परिक स्कूलों से कहीं बेहतर है और जो विशिष्ट वर्ग के स्कूलों से भिन्न हैं। हम समझते हैं कि गरीबों और समाज के सबसे कमजोर वर्गो को अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने की दिशा में हमारे द्वारा उठाया गया संभवतः यह पहला बड़ा समतावादी कदम है। यह समानता और गुणवत्ता के लिए उठाया गया कदम है। इसका उद्देश्य सबसे अच्छे बच्चों को सबसे अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराना है चाहे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति कैसी भी रही हो।

हमें अपनी पूरी शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था, जिसमें शिक्षकों के प्रशिक्षण से लेकर उनके कार्य-निष्पादन, जिम्मेदारी शिक्षा से संबंद्ध प्रशासनिक कार्मिकों और इस क्षेत्र में केंद्र और राज्यों के बीच संबंधों का ध्यान रखना होगा। शिक्षा प्रणाली के विकास में हमें नई भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। इसे अनुशासनहीनता और आन्दोलनों से दूर रखा जाए। हमें शिक्षा संस्थानों को और स्वायत्तता देनी होगी । इन संस्थानों को लोगों में ऐसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना है जिससे उच्च कोटि के

विशेषता प्राप्त चन्द वैज्ञानिक ही न बनें बल्कि ऐसा दृष्टिकोण प्रचलित हो जो औसतन हर भारतीय तक पहुंचे।

हमको ऐसी शिक्षा के लिए सुविधाएं जुटाना है जिनसे शिक्षा विकास की दृष्टि से और अधिक उत्पादक बने और जिससे सामाजिक, क्षेत्रीय और भाषाई रुकावटें दूर हों। प्रत्येक भाषा और संस्कृति का विकास करना है लेकिन इससे सांस्कृतिक विविधता के बीच दीवारें न खड़ी हों।

आज शिक्षा प्रणाली जिस रूप में है उसका संबंध राज्यों केंद्र और जनता तीनों से है। अतः हम काट-छांट करने के बाद जो बी निर्णय लेते हैं उसके क्रियान्वयन में भी इन तीनों की सक्रिय भूमिका होनी चाहिए। यदि कोई भी इससे छूट जाता है जो क्रियान्वयन वैसा नहीं होगा जैसा कि हम चाहते हैं। आधुनिक शिक्षा और अनुसंधान इतने व्यय साध्य हैं कि उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा और स्तरीय शोध केवल अत्यंत सम्पन्न केंद्रों में ही संभव है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी आज जिस रूप में हमारे सामने हैं वे एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज हैं, उनका वर्तमान रूप विशेष प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुए उनके विकास का ही परिणाम है। उन्हें अधिक मानवीय दृष्टिकोण अपनाकर हम और बेहतर ढंग से मानवजाति की सेवा कर सकते हैं।

आज की शिक्षा को हमें उस व्यवहार के साथ जोड़ना पड़ेगा जो 10 या 20 वर्ष बाद आने वाला है। शायद, यह संभव हो सकता है कि हम पिछले अनुभव के आधार पर आगामी 25 वर्षों में आने वाली परिस्थितियों की कल्पना कर सकें। पिछले अनुभव के आधार पर की गई कुछ कल्पनाएं उपयोगी हो सकती हैं, पर अधिकतर संकल्पनाएं विज्ञान की वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर करनी होंगी। इस आधार पर इंजीनियरिंग शिक्षा और विज्ञान की शिक्षा में भी आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं।

जब उच्च लक्ष्य गहराई के साथ व्यावहारिक धरातल पर मिलते हैं तो श्रेष्ठता स्वंय दिखती है। किसी काम को श्रेष्ठता के साथ करने के लिए दृढ़संकल्प वाले प्रयत्न ही चाहिए। श्रेष्ठता सदैव ही समय, शक्ति, ध्यान तथा केंद्रित प्रयत्न से ही संभव है।

शिक्षा, समाज और भविष्य

ऋषभ कुमार मिश्र[1]

औपचारिक शिक्षा के बारे में जब हम सोचना शुरू करते हैं उसी समय विशाल भवन, शिक्षक, विद्यार्थी, कक्षा और परीक्षा की छवि एवं धारणाएं हमारे मन में बनने लगती हैं। ये छवियां वर्तमान की तुलना में भविष्य का सुंदर चित्र उकेरती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शिक्षा हमारे भविष्य को सुरक्षित करने वाला साधन है। हम मानते हैं कि शिक्षा अपने भागीदारों में मनुष्यता के बीज बोएगी। उन्हें नए संस्कारों और मूल्यों में विश्वास करने और व्यवहार में अपनाने के लिए तैयार करेगी। जटिल और गतिशील समाज में व्यक्ति को उसकी भूमिकाओं के लिए तैयार करेगी। उसकी व्यावसायिक अस्मिता के साथ-साथ सांस्कृतिक अस्मिताओं को मजबूत करेगी। उसमें दुनिया के प्रति सहिष्णुता, मैत्री- भाव और समानता के मूल्यों का परिष्कार करेगी। इन उम्मीदों पर परिकल्पित हमारी शिक्षा जिस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में रूपाकार हो रही है उस पर भी विचार करना आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि में यह लेख बदलते समय में शिक्षा की परिकल्पना और बदलावों को समझने का प्रयास है।

शिक्षा का सामाजिक परिवेश

सीखने के समानार्थी रूप में शिक्षा मानव सभ्यता के आरंभ से वयस्क और बच्चे के संबंध में शामिल रही है। आरंभिक और सरल समाजों में शिक्षा का औपचारिक ढाँचा लचीला था। यह शिक्षा सामुदायिक जरूरतों को पूरा करने वाली और स्वावलंबी थी। इसका संचालन स्थानीय स्तर पर किया जाता था। शिक्षा को वस्तु मानकर इसका व्यापार नहीं किया जाता था। धीरेधीरे शिक्षा के दायरे का - की पूर्ति के साथ नागरिकता के गुणों के विकास विस्तार हुआ और मूलभूत आवश्यकताओं, उत्पादन कौशलों और विशेषज्ञता के प्रशिक्षण को भी शिक्षा के लक्ष्यों से जोड़ दिया गया। औद्योगिक क्रांति के बाद तो शिक्षा की भूमिका में आमूल चूल परिवर्तन आ गया। यह मानव संसाधन तैयार करने वाले साधन के रूप में स्वीकार की जाने लगी। लिखने, पढ़ने और गिनने की दक्षताएं, उत्पादन की कुशलताएं और प्रभावपूर्ण तरीके से मानसिक और शारीरिक श्रम की आदत का विकास हमारी शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य बन गया। शिक्षा के व्यापक प्रसार, शिक्षित होने की लालसा और शिक्षा के बाद रोजगार के बाजार में शामिल होना, शिक्षा से उक्त अपेक्षाओं का ही परिणाम है। अंततः शिक्षा के

[1] **सहायक प्रोफेसर, शिक्षा स्कूल, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र**

जिस स्वरूप को प्रायः राज्य प्रायोजित कल्याणकारी व्यवस्था के रूप में समझा जाता था वह वर्तमान में कई तरह के आंतरिक और बाह्य टकरावों का मंच बन चुका है। उदाहरण के लिए भाषा, विषयवस्तु और कौशलों के एकरूप और सार्वभौमिक मॉडल को अपनाया जाए या बहुलता प्रधान और स्थानीयता के प्रारूप को। क्या केवल मुख्यधारा के समाज और संस्कृति के सांचे में सबको ढाल दिया जाए और शेष को छोड़ दिया जाए? शिक्षा का मूल्य व्यक्ति, उसकी संस्कृति, प्रकृति और समुदाय में निहित है या वह केवल पूंजी है और पुनः पूंजी के उत्पादन के लिए प्रयुक्त हो? इन सवालों का कोई अंतिम और एकमात्र उत्तर नहीं है बल्कि इन्हीं सवालों के बीच हमारी शिक्षा अपनी भूमिका निभा रही है।

अब हमारा समाज स्थानीय जरूरतों वाला लघुसरल समाज नहीं रहा है जहां शिक्षा के वैयक्तिक गुण का आरोपण केवल 'संस्कार' या 'मूल्य' प्रदान करके उसे सुसंस्कृत बनाने की इच्छा तक सीमित हो। पिछले कुछ दशकों में हमारे समाज और संस्कृति में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। समाज में व्यक्ति की भूमिका, व्यक्ति और संस्थानों के आपसी रिश्ते और व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संबंध लगातार जटिल होते जा रहे हैं। उत्पादन, आदान-प्रदान और उपभोग की बदलती व्यवस्था में व्यक्ति की भूमिकाएं विशिष्ट से विशष्टितम होती जा रही हैं। सामुदायिक और उत्पादन इकाइयों की परस्पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। इनके संबंधों का जाल जटिल होता जा रहा है। इसके प्रभाव में समाज में जिस स्वतंत्र व्यक्ति का उदय हुआ है उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने स्वतंत्र निर्णय ले। यह निर्णय भावनात्मक होने के स्थान पर तार्किक हों, विशिष्टतावादी न होकर सार्वभौमिक हों। वह ऐसे निर्णय लेने में भी समर्थ हो जिसे सामाजिक परंपराएं स्वीकार न करती हों। इस तरह के व्यक्ति को तैयार करने का जिम्मा शिक्षा का है। विचारणीय है कि औपचारिक शिक्षा में जिस तर्कशील चिंतन का पाठ पढ़ाते हैं उसके अधिकांश भागीदार अपने रोजमर्रा के व्यवहार और परिवेश में अंधानुकरण, मतारोपण, अधीनता और पूर्वाग्रह का परिचय देते हैं (सिंह, 1991)। इसी तरह सांस्कृतिक फलक पर देखें तो इस व्यक्ति के सामाजिक दायरे में नई संस्कृतियों का प्रवेश हो रहा है। वह विचारों और व्यवहारों में दूसरे सांस्कृतिक समूहों के लिए खुला है लेकिन अपनी सांस्कृतिक अस्मिताओं की परिधि में खुद को परिभाषित भी करता है। वह दूसरे सांस्कृतिक समूहों से उत्पादन या लेन-देन पर आधारित रिश्ते कायम कर सकता है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक में उसकी पसंद उसकी खुद की सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतिनिधित्व करने वाला समुदाय है। शिक्षा की भूमिका इस तरह के 'व्यक्ति', समाज और संस्कृति के नए उभरते रिश्तों में टकराव को न्यूनतम कर सामंजस्य की स्थापना करना है (पापाडोप्यूलस, 1995)। समाज में

एकजुटता पैदा करने के लिए लोगों में आम सहमति विकसित करना शिक्षा का एक प्रमुख दायित्व है। यह एकजुटता लाभ आधारित न होकर परस्पर प्रेम, स्वीकृति और सौहार्द पर अवलंबित होनी चाहिए। एक दौर में शिक्षा के कंधों पर विकास की जिम्मेदारी थी। आजकल यही शिक्षा विकास और वैश्वीकरण के पीछे चल रही है। शिक्षा की तीन संकल्पनाओं पर विचार कीजिए। पहली सत्य की खोज, दूसरी मानव की दशाओं में सुधार और तीसरी, बौद्धिक व शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा। मौलिक रूप में शिक्षा खोज की एक सतत प्रक्रिया है। इसके किसी अंतिम लक्ष्य को न तो तय किया जा सकता है और न ही मापा जा सकता है। शिक्षा के इस रूप की प्रतिष्ठा व्यष्टि के बदले समष्टि को महत्व देती है। लेकिन हम अपने व्यवहार, विश्वास और रिश्तों में व्यक्ति निष्ठ होते जा रहे हैं (गुप्ता, 2000)और हमारी चेतना की सांस्कृतिक जड़ें कमजोर हो रही हैं। सामाजिक संबंधों में कार्यस्थल के परिचितों के अलावा अन्य सामुदायिक संबंधों और नातेदारियों का बंधन कमजोर पड़ रहा है। खुद के अलावा हर दूसरे व्यक्ति को हम अपना प्रतियोगी मान रहे हैं। ज्ञान द्वारा सत्य की सुंदरता और सहजीवन को सींचने के बदले आत्ममुग्धता में डूब रहे हैं। शिक्षा का इन प्रवृत्तियों के साथ भी अंतर्द्वंद्व है। वह विकास की अनुगामी बन चुकी है और उसका अर्थ बढ़ोत्तरी है। इस बढ़ोत्तरी को धन या संपत्ति के रूप में संगृहीत कर सकते हैं। ऐसे सामाजिक विभाजन कर सकते हैं जिसमें एक समूह के पास विकास का परिणाम होगा और एक समूह के पास ऐसे किसी भी परिमाण का अभाव होगा। इस पृष्ठभूमि में स्थापित कर दिया गया है कि शिक्षा व्यवस्था इस विकास में सहयोग करेगी। जबकि भारतीय परंपरा में आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय विकास एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हम विचार और वस्तु में दोहन का संबंध देखने के बदले सर्जन और सहअस्तित्व का रिश्ता बनाते हैं। हमारी परंपरा में शिक्षा केवल उपयोगिता को निर्मित और संवर्धित ही नहीं करती है बल्कि उचित-अनुचित का बोध विकसित करने वाला विवेक है। शिक्षा विकास का माध्यम नहीं है बल्कि सद्-असद् के बोध का विकास ही शिक्षा है। शिक्षा के इस लक्ष्य से बदलाव की संभावना बनती है। इस रास्ते पर शिक्षा को ले जाना एक जोखिम भरा काम है क्योंकि यह समाज के चलन से न्यूनतम तालमेल रखेगा। इस मार्ग पर चलना तात्कालिक दृष्टि से मापे जा सकने वाले उत्पादों जैसे - परीक्षा के अंको और नौकरी के पैकेज आदि पर सफल नहीं होगा फिर भी, वर्तमान में ऐसे अनेक प्रयोग हो रहे हैं जो शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति, समाज और कुदरत के संबंध को मजबूत कर रहे हैं। महात्मा गांधी, महर्षि अरबिंद, जे. कृष्णमूर्ति और रबीन्द्रनाथ टैगोर के दर्शन पर संचालित संस्थाएं इनके उदाहरण हैं। आनंद निकेतन विद्यालय, सेवाग्राम, राजघाट विद्यालय वाराणसी, ऋषि वैली स्कूल, ओरोविलो पांडिचेरी जैसी संस्थाओं के प्रयोग प्रशंसनीय हैं। इन

प्रयोगों को वैकल्पिक प्रयोग कह कर मुख्य धारा से अलग पहचान दी जा रही है जबकि इन्हीं प्रयोगों को मुख्यधारा में स्थान मिलना चाहिए।

शिक्षा का औपचारिक संगठन : सुविधाएं और समस्याएं

आधुनिक शिक्षा की एक महत्वपूर्ण विशेषता बड़े पैमाने पर औपचारिक संगठन के माध्यम से शिक्षण की गतिविधि को संचालित करना है। प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर तक शिक्षा का संगठनात्मक ढांचा, संस्थागत संरचना, नियम, संचालन और नियंत्रण सुपरिभाषित है। इस व्यवस्था के लक्ष्यों और प्रक्रियाओं की पारस्परिकता और निर्भरता शिक्षा को गतिशील किए हुए है। इसके बिना एक बड़ी आबादी को शिक्षा के दायरे में लाना संभव नहीं था। शिक्षा के अवसरों की उपलब्धता, इसे व्यक्तिगत आग्रहों से मुक्त रखने, संवैधानिक अधिकारों और मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए यह औपचारिक संगठन कार्य करता है। शिक्षा के निर्बाध संचालन के लिए यह औपचारिक व्यवस्था एक अनिवार्य शर्त है लेकिन समय के साथ-साथ यह व्यवस्था केंद्रीकृत, अफसरशाही और नियम केंद्रित जटिल प्रबंधन की ओर अग्रसर हुई है (पाठक, 2018)। ऐसी स्थिति में शिक्षा के औपचारिक संगठन मानव संसाधन उत्पादन के फैक्टरी मॉडल बनते जा रहे हैं। इसकी व्याख्या अमन मदान (2019) ने बड़े तार्किक ढंग से की है। वे इस व्यवस्था की जड़ को औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन की एक सुपरिभाषित प्रक्रिया में देखते हैं। इस प्रक्रिया में उत्पादन लक्ष्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। इसे छोटे-छोटे क्रियात्मक चरणों में बांटा जाता है। हर चरण के लिए विशेषज्ञ नियुक्त किए जाते हैं। जिनकी विशेषज्ञता और दायित्व केवल किसी विशिष्ट चरण के उद्देश्य को पूर्ण करना होता है। वे केवल इसके प्रति ही जवाबदेह होते हैं। बड़े पैमाने का उत्पादन इन्हीं विशेषज्ञों के कारण संभव होता है लेकिन ये पूरी उत्पादन व्यवस्था से केवल यांत्रिक संबंध कायम कर पाते हैं। यद्यपि व्यवस्था और उत्पादन चक्र बिना बाधा के संचालित होता है लेकिन धीरे-धीरे व्यवस्था निर्वैयक्तिक होने लगती है (मदान, 2014)। इस तरह से मानव मस्तिष्क के विचार और व्यवहार को मशीन सदृश कर दिया जाता है। उसमें जीवंतता और संवेदनशीलता का क्षय होने लगता है। औपचारिक शिक्षा इसी मॉडल के अनुरूप होती जा रही है। कब? कौन? कैसे? क्या? कितना? पढेगा-पढ़ाएगा- इसका विभाजन किया जा चुका है। हमने विद्यार्थियों से लेकर शिक्षकों के रोजमर्रा के जीवन को इस व्यवस्था में बांध दिया है। सभी केवल अपनी विशेषीकृत भूमिकाओं को निभा रहे हैं। प्रवेश, मूल्यांकन, नियुक्ति, कक्षा में निगरानी, शिक्षकों के प्रदर्शन का वार्षिक आकलन आदि अभिप्रेरक नहीं रह गए हैं।

शिक्षा संस्थान स्वायत्तता के स्थान पर नौकरशाही को बढ़ावा दे रहे हैं। इस दशा में हमारी शिक्षा समर्थ और विवेकशील नागरिक के स्थान पर दब्बू और अनुकरणकर्ताओं को तैयार कर रही है (मदान, 2014)। औपचारिक शिक्षा के दीर्घकालीन नियंत्रण और बाध्यकारी अनुभवों के कारण विद्यार्थी और शिक्षक दोनों की मौलिकता और रचनात्मकता उपेक्षित होती जा रही है (पाठक, 2018)। शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था ने इसे सरल, सुगम और सुलभ तो बनाया है लेकिन इसके हालात 'नियमों की कैद' जैसे हो गए हैं जहां निर्जीव नियम सजीव चेतना पर भारी पड़ रहे हैं जिसका परिणाम है कि व्यक्ति में सहमति का विवेक और असहमति का साहस समाप्त होता जा रहा है। शिक्षा के औपचारिक संगठन का कठोर ढाँचा, नौकरशाही की तरह शिक्षा का संचालन शिक्षा की मूल प्रकृति से मेल नहीं खाता है। स्वतंत्र सोचने की गुंजाइश, व्यक्तिगत रिश्तों और विचारों की कद्र, वैयक्तिक और सामुदायिक जरूरतों के प्रति संवदेनशील और उत्तरदायी हुए बिना शिक्षा अपनी भूमिका का निर्वहन नहीं कर सकती है।

औपचारिक शिक्षा : ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था का बाजार :

वर्तमान में औपचारिक शिक्षा की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है बाजार के नियमों के अंतर्गत शिक्षा की एक वस्तु के रूप में उपलब्धता और लाभ की इच्छा से निजी भागीदारों का प्रवेश और विस्तार। एक उद्योग के रूप में निजी शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और विकास 1980 के आस-पास शुरू हुआ और 1990 के बाद इसकी गति बहुत तीव्र हो गई। वैसे तो निजी शैक्षिक संस्थाएं आजादी के पहले भी थीं लेकिन उनकी प्राथमिकता सूची में राष्ट्रीय लक्ष्यों को साकार करना था। वे अंग्रेजी राज के विरोध में और अपने गांव, क्षेत्र और समुदाय को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने के लिए समर्पित थीं। अक्सर ऐसे संस्थानों को समुदाय का समर्थन और सहयोग प्राप्त होता था। वे क्षेत्रीय अस्मिता और एकजुटता के प्रतीक होते थे। आज भी हर कस्बे और जिले में ऐसे स्कूल और कॉलेज मिल जाएंगे जो आजादी के पहले 'अपनी' शिक्षा की जरूरतों को ध्यान में रखकर खोले गए थे। ऐसे संस्थानों के लिए पर्याप्त दान और सहयोग स्थानीय समुदाय से प्राप्त होता था। शिक्षा से जुड़े नीतिकारों का एक धड़ा औपचारिक शिक्षा के बाजार के पक्ष में तर्क देता है कि निजी संस्थाएं सरकार के बोझ को साझा करती हैं और वे शिक्षा के प्रसार की गति को तीव्र करती हैं (वेंकटनारायन, 2015)।

शिक्षा के बाजार में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय प्रौद्योगिकी शिक्षा अध्यापक शिक्षा का विस्तार निजी क्षेत्रों में किया जा रहा है। ऐसे संस्थान केवल उन लोगों को अधिक ताकत दे रहे हैं जिनके पास शिक्षा की सुविधाओं को खरीदने की पूंजी है। उदाहरण के लिए मध्यम वर्गीय अपार्टमेंट में

रहने वाले लोग प्री-प्राइमरी स्कूलों की सूची बनाते वक्त स्कूल की गुणवत्ता, वहां जाने वाले बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि, स्कूल की सुविधाओं में विलासिता, शिक्षकों की पृष्ठभूमि और आभिजात्य व्यवहार के लक्षणों का अवलोकन करते हैं जबकि एक साधारण मध्यम वर्गीय न्यूनतम शुल्क को अपनी प्राथमिकता सूची में रखता है। स्पष्ट है कि जो लोग जितनी अधिक मात्रा में शिक्षा की सुविधाओं को खरीदेंगे वही भविष्य में उत्पादन के साधनों पर कब्जा बरकरार रखेंगे। इस तरह से बाजार और प्रकारांतर से समाज में उनका वर्चस्व कायम रहेगा। अंततः शिक्षा के बाजार में कुछेक अपवादों को छोड़कर शीर्ष पर अधिकतम क्रयशक्ति वालों का आधिपत्य रहेगा जो व्यवस्था को अपने ढंग से परिभाषित करेंगे (किंगडन, 1996)। शेष समाज, खासकर वंचित वर्ग, गतिशीलता के नाम पर मध्यम वर्ग की तलछट या सतह तक पहुंच कर संतुष्ट हो जाएगा। इस व्यवस्था में सामाजिक बदलाव के मुद्दे गौण रहेंगे। यह व्यवस्था आपको 'मेरिट' के आधार पर 'पुरस्कार' देने में या प्राप्त करने में विश्वास करना सिखाएगी। सामाजिक-सांस्कृतिक पहचानों और पारस्परिक संबंधों को हतोत्साहित करेगी। इसी का प्रभाव है कि शिक्षक-विद्यार्थी संबंध कमजोर होता जा रहा है। शिक्षक बुद्धिजीवी नहीं रह गया है। वह प्रबंधन का एक कर्मचारी भर है जो प्रबंधन की इच्छा अनुसार ग्राहकों को सेवा दे रहा है। कार्पोरेट घरानों की पकड़ स्कूली शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक बढ़ रही है। संस्थानों की शृंखला या श्रृं ब्राण्ड के रूप में प्रसार शिक्षा में एकाधिकार को बढ़ावा दे रहा है। बाजार और सरकार एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के समर्थन में हैं। न तो एक झटके में बाजार के नियमों और प्रभावों से बंधी शिक्षा को मुक्त किया जा सकता है और न ही केवल सरकार और कल्याणकारी राज्य द्वारा शिक्षा की व्यवस्था को गुणवत्तापूर्ण और संतुष्टिदायी माना जा सकता है। लोकतांत्रिक सरकारों की जनता के प्रति जवाबदेही के कारण यह संभव नहीं है। यह दबाव राज्य को बाध्य करता है कि वह शिक्षा की योजना और आकलन केवल लाभ के सापेक्ष न करे बल्कि इसके वृहत्तर लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए अपनी भूमिका निभाए। इसके लिए राज्य को पुनर्वितरण के सिद्धांत का पालन करते हुए समृद्ध और धनवानों की पूंजी का गरीबों और वंचितों के पक्ष में वितरण करना होगा।

ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के दौर में ज्ञान केवल उत्पादन का साधन नहीं है बल्कि उत्पादन के अन्य संसाधनों को 'डिक्टेट, करने वाला निवेश है। अर्थ प्रधान दुनिया में शिक्षा स्वयं एक वस्तु के समान बन चुकी है जो आर्थिक लाभों के उद्देश्य से उपयोग में लायी जा रही है। वर्तमान परिवेश में न तो ज्ञान द्वारा मुक्ति का उद्देश्य प्रधान है और न ही शिक्षा द्वारा न्याय आधारित समतामूलक समाज

की स्थापना। हमारा ध्यान केवल उन्हीं दक्षताओं पर है जो उत्पादन व्यवस्था के लिए उपयोगी हैं। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था हर क्षेत्र के लिए विशेषज्ञता का प्रमाणपत्र बांट रही है। हद तो यह है कि हम ऐसे कामकाजी दिमागों को तैयार कर रहे हैं जो ग्राहक को अपने लुभावने व्यवहार और चमत्कृत कर देने वाली विश्लेषण क्षमता से बांध सकते हैं लेकिन अपने पड़ोसी के सुख- दु:ख के भागीदार नहीं बन सकते। अब लिखने, पढ़ने और गिनने की दक्षताएं पीछे छूट चुकी हैं। हमें सोच में नयापन, संप्रेषण में गर्मजोशी, समस्या के सृजनात्मक समाधान और सहभागिता के उत्साह जैसी दक्षताओं के सापेक्ष शिक्षा को विकसित करने की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ विषय का ज्ञान देना या अनुशासन और चारित्रिक विकास करना मात्र नहीं है। यह शिक्षा कार्य करने की तत्परता वाले व्यक्ति तो तैयार कर देगी लेकिन क्या सोचने-बूझने की नयी दृष्टि का विकास होगा? जीवन और प्रकृति के प्रति आस्था का बोध विकसित होगा? आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति से मुक्त करने वाली सांस्कृतिक चेतना का विकास होगा? ये विशेषताएं आज के समय की अनिवार्यताएं हैं। शिक्षा का भविष्य इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विषयों के ज्ञान तक सीमित नहीं रह सकता है। उसे सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक सरोकारों से जोड़ने की जरूरत है। शिक्षा द्वारा ऐसा सांस्कृतिक माहौल तैयार करने की जरूरत है जिसमें विश्वास, प्रेम, सहयोग और आत्मीयता हो। वह न केवल व्यक्ति को खुद की क्षमताओं के प्रति जागरूक करे बल्कि उन्हें जीवन को संपूर्णता के साथ जीने के लिए प्रेरित करे। उनमें सह जीवन के मूल्यों को पोषित करे। ये लक्ष्य स्वाभाविक रूप से व्यक्ति और समाज के जीवन में खुशहाली भर देंगे। अंतत: हमें इन सवालों पर विचार करना होगा कि जटिल सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तिव्यक्ति-, व्यक्ति और समाज के बीच संबंध प्रतिस्पर्धा और लाभ उत्पादन के स्थान पर सहिष्णुता, एकदूसरे की स्वीकार्यता और - सहकार के मूल्य से कैसे बंधे? शिक्षा व्यवस्था में मशीनी उत्पादन पद्धति-के स्थान पर स्वायत्तता और रचनात्मकता कैसे पैदा की जाए? शिक्षा की वृहद् संरचना में एकरूपता और सार्वभौमिकता के साथ बहुरूपता और स्थानीयता का सामंजस्य कैसे हो? व्यक्ति में तकनीकी और प्रयोजनवादी तर्कशीलता के साथ सांवेगिक बुद्धि और सौंदर्यबोध को कैसे पुष्ट किया जाए। दूसरों पर प्रभुत्व की हिंसक और आक्रमणकारी चाह के बदले संस्कृति-केंद्रित और प्रकृतिमय जीवन और शिक्षा को कैसे अपनाया जाए? यही समय की माँग है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

मदान अमन ,(2019) *शिक्षा और आधुनिकता:.न समाजशास्त्रीय कुछ* :- एकलव्य Cohen, J. (2006). Social, Emotional, Ethical and Academic Education: Creating climate for learning, participation in democracy and well being. *Harvard Education Review*, 76(2), 201-238.

- Kingdon, G.G. (1996). Private Schooling in India: Size, Nature and Equity effects, *Economic and Political Weekly*, 31(51), 3306-3314
- Madan, A. (2014). Max Weber's Critique of Bureaucratisation of Education, *Contemporary Educational Dialogue*, 11(1), 95-113
- Papodopoulos, G. (1995). Looking Ahead: An educational policy agenda for 21st century. *European Journal of Education*, 30(4), 493-506
- Pathak, A. (2018). The danger that lies in Acadamic Bureaucrates taking over our universities, retrieved fr
- Patrinos, H.A. (2000). Market Forces in Education. *European Journal of Education*, 35(1), 61-81
- Reimers, F.M. and Cheng, C.K. (2016). *Teaching and Learng for the twenty-first century: Educational goals, policies and curricul*a. Cambridge: Harvard Educational Press
- Singh, R.R. (1991). *Education for the twenty-first century: Asia-pacific perspectives*. Bangkok: UNESCO
- Tooley, J. and Dixon, P. (2006). "De facto" privatization of education and the poor: Implication of a study from Sub-Saharan Africa and India, *Compare*, 36(4), 443-452
- Venkatanarayanan, S. (2015). Economic liberalization in 1991 and its impact on elementary education in India, Sage Open, 5(2), 1-13

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता

प्रो.आर.पी.पाठक[1]

वर्तमान वैश्विक समाज में व्याप्त अनीति, भ्रष्टाचार, आंतकवाद, अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में गिरावट तथा मानवीय मूल्यों का ह्रास आदि समस्याएं अपने स्वरूप एवं प्राकृतिक विशेषताओं के कारण समाज के मूलभूत संरचना एवं प्रक्रियाओं को पूरी तरह से प्रभावित कर रही हैं जिसके लिए बहुत कुछ जिम्मेदारी शिक्षा को उठानी पडेगी। मात्र शिक्षा के उद्देश्यों एवं मूल्यों में ही यथोचित परिवर्तन कर देने से सुधार की अपार संभावनाओं में से अधिकांश की प्राप्ति संभव हो जाएगी इस दृष्टिकोण से जब हम बौद्ध दर्शन के शैक्षिक विचारों की तरफ देखते हैं तो हमें पथ प्रदर्शित करने वाले मूलभूत विचार एवं समाज के पुनः निर्माण के लिए आवश्यक आत्मबल प्राप्त होता है।

वर्तमान शिक्षा व्यक्ति को एक सफल उद्यमी, अधिकारी, विद्यार्थी, श्रमिक तो बना सकती है परन्तु उनके व्यक्तित्व की पूर्णता तभी संभव है जब व्यक्ति के जीवन के नैतिक मूल्यों की तरफ यथोचित ध्यान देते हुए शैक्षिक मूल्यों का निर्धारण किया जाए। मानव के जीवन मूल्यों में उसकी मान्यताएं, आदर्श, परम्पराएं आदि आती हैं। अतः कहा जा सकता है कि वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है जो जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं का परिचय न करवाती हो। इस तरफ संकेत करते हुए बुद्ध ने कहा है कि हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हो।

बौद्ध दर्शन का प्रभाव

तत्कालीन समाज पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव विशेष रुप से परिलक्षित होता है तथा शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध दर्शन ने पर्याप्त प्रभाव डाला था। तत्कालीन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा आदर्श मानी जा सकती है। वर्तमान में जिन सुधारों एवं परिवर्तन की चर्चाएं हो रही हैं, वह परिवर्तन तथा सुधार लाने में बौद्ध शिदना मार्ग दर्शन कर सकती है। बौद्ध शिक्षा में वे समस्त गुण एवं विशेषताएं विद्यमान हैं जिनकी आज शिक्षा प्रणाली में आवश्यकता है।

[1] **प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली.**

शैक्षिक विचारधारा एवं नैतिक मूल्य

बौद्ध दर्शन की शैक्षिक विचारधारा एवं नैतिक मूल्य तथा वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य वस्तुतः व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना था परन्तु बौद्ध शिक्षा में शारीरिक विकास की उपेक्षा नहीं की गयी थी, उद्देश्यानुरूप ही पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी। आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ लौकिक विषयों को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। धर्म तथा दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। बौद्ध शिक्षा केंद्रों में बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों का भी अध्ययन कराया जाता था। अन्य दर्शनों के गूढ़ सत्य एवं तथ्य बौद्ध दर्शन में स्वीकार किए जाते थे। भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिए नियम तथा आचार संहिता थी, जिनका पालन अनिवार्य था। जहां एक ओर प्रतिभाशाली तथा बुद्धिमान छात्रों पर विशेष ध्यान दिया जाता था वहीं दूसरी ओर मानसिकतः चुनौतीपूर्ण (मंद) छात्रों के लिए पृथक्-पृथक् विधियों का प्रयोग किया जाता था।

गुरु-शिष्य संबंध

छात्र-आचार्य संबंध व्यावहारिक तथा मधुर थे। छात्र अपना कर्तव्यपालन करते थे वहीं आचार्य भी अपने उत्तरदायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते थे। वैदिक शिक्षा की भांति बौद्ध शिक्षा में भी शास्त्रार्थ तथा अनुसंधान को महत्त्व दिया जाता था। कतिपय छात्र ज्ञान प्राप्ति हेतु अपना पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर देते थे। स्त्रियों के लिए पृथक् विद्यालयों का उल्लेख कहीं भी नहीं प्राप्त होता, अतएव कहा जा सकता है कि सह शिक्षा (कोऐजुकेशन) की व्यवस्था थी। स्त्रियो को भी पुरूषों की भांति समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा प्रदान करने में वर्ण व्यवस्था का कोई महत्व नहीं था, योग्य छात्र किसी भी वर्ग से संबद्ध हो सकते थे, उन्हें निष्पक्षता से शिक्षा प्रदान की जाती थी।

बौद्ध धर्म का उदय एवं वर्तमान शिक्षा

छठी शताब्दी ई.पू. में धार्मिक क्रांति के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म का उदय हुआ तत्कालीन समाज रूढ़िवाद एवं वर्णमेद की संकीर्णता से ग्रस्त था, तथा ब्राह्मण वर्ग का समाज में प्राधान्य था, ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ही श्रेष्ठता की पहचान माना जाता था, कर्म का महत्व कम होता जा रहा था। बौद्ध धर्म का जन्म चूंकि ब्राह्मण धर्म के प्रतिरोध के कारण हुआ था अतः बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण शिक्षा के समानान्तर विहारों तथा मठों में शिक्षा का कार्य करना प्रारंभ किया। कालांतर में इन विहारों ने

विश्वविद्यालयों का रूप ले लिया जिसके परिणामस्वरूप तक्षशिला, नालन्दा, वलभी, विक्रमशिला जैसे अनेक उच्च शिक्षा केंद्रों एवं विश्वविद्यालयों का उदय हुआ। इन शिक्षा केंद्रों तथा विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के क्षेत्र में मानदण्ड स्थापित किए जिनका महत्व संपूर्ण विश्व में आज भी दिखाई देता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन अभागे बालकों को कोई दूसरा अवसर नहीं देती जो इसके संकीर्ण प्रवेश द्वार में प्रवेश नहीं ले पाते या जो आर्थिक या सामाजिक कारणों की विवशता से त्रस्त होकर इससे बाहर निकल जाते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली निहित स्वार्थों की सहायता करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है, यथास्थिति को प्रोत्साहित करती है और शैक्षिक समानता के अवसरों का गला घोंटती है। इसके दुश्चक्र में फँसकर सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा की संवैधानिक प्रतिबद्धता स्वतंत्रता के लगभग 70 वर्ष होने पर भी हम पूर्ण नहीं कर सके हैं। देश में आज भी लगभग 25 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। इस कारण बौद्ध शिक्षा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में प्रासंगिक है। वस्तुतः वर्तमान शिक्षा में आमूल चूल परिवर्तन करने की महती आवश्यकता है।

वर्तमान शिक्षा में बौद्ध शिक्षा का समावेश कर हम आधुनिक समाज को पुनः एक बार सुशिक्षित, सुपोषित एवं सुरक्षित कर सकते हैं। बौद्ध शिक्षा जहाँ एक ओर लाखों करोड़ों लोगों में शिक्षा के माध्यम से प्राण फूंकने में समर्थ है तो दूसरी ओर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करने में मार्गदर्शन कर सकती है।

निष्कर्ष और सुझाव

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक है। शिक्षा को धर्म, संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, नैतिक मूल्यों, जीवन मूल्यों, आदर्शों से युक्त करना होगा और इसकी निरंतरता को स्थापित करना होगा। इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा दर्शन की उपयोगिता एवं महत्व असंदिग्ध है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली बहुत प्राचीन है फिर भी आधुनिक जीवन में वह अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है अतएव आधुनिक भारत के विकास के मार्ग के प्रशस्तीकरण की आवश्यकता यह मांग करती है कि प्राचीन बौद्ध शिक्षा दर्शन का सर्वांगीण तथा व्यापक अध्ययन किया जाए। स्पष्ट है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक आदर्श शिक्षा प्रणाली में होने चाहिए। बौद्ध शिक्षा प्रणाली अपना कर आधुनिक शिक्षा प्रणाली को समृद्ध बनाया जा सकता है, व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास द्वारा ही व्यक्ति का

सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। व्यक्ति के भावी जीवन की दशा-दिशा तथा मानव समाज की संरचना मूलतः शिक्षा पर आधारित है।

वर्तमान समय में विश्व के बहुआयामी विकास की गति इतनी तीव्र तथा सीमा इतनी अबाध है कि इसके साथ चलना तथा सीमा के समीप पहुंचना कभी-कभी दुरूह कार्य-सा प्रतीत होता है। समय-समय पर शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन तथा समायोजन ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा इस दिशा में कुछ सहायता मिल सकती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के स्वरूप निर्धारण में बौद्ध शिक्षा दर्शन को अपनाया जा सकता है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक एवं मानसिक थी तथा शिक्षा में अधिकतर समय तो व्यवहार कुशलता उभारने और उसके साथ आदर्शवादिता, शालीनता आदि का अभ्यास कराने का उपक्रम चलता था। हमें उसी विद्या, उसी शिक्षा व्यवस्था से प्रेरणा लेनी चाहिए जो सार्वजनीन बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी एवं कारगर बनाने के लिए हो, जिसमें व्यक्ति और समाज को बदलने की क्षमता हो। समय के साथ-साथ परिस्थितियां भी बदल गई हैं इसीलिए पूर्णतः उसकी प्रतिमूर्ति स्थापित करना संभव नहीं है। परन्तु इतना तो किया ही जा सकता है कि बौद्ध शिक्षा पद्धति का स्वरूप एवं अनुशासन गंभीरतापूर्वक समझा जाए और उसके सार को वर्तमान शिक्षा क्रम में समाविष्ट कर लिया जाए। यह पद्धति ज्यों की त्यों लागू तो नहीं हो सकती पर इस पद्धति के वे सिद्धांत जो शाश्वत हैं उन्हें शिक्षा के साथ प्रतिभा निखार तथा सुसंस्कारिता संवर्धन क्रम से तो जोड़ा जा सकता है।

आज के अध्यापक को अपनी गरिमा एवं उत्तरदायित्व अधिक गंभीरता से समझने होंगे। शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता जोड़ने के लिए प्राण पण से प्रयास करना होगा अन्यथा शिक्षा की उपेक्षा और शिक्षकों की अवज्ञा का जो माहौल चल पड़ा है वह बढ़ता ही जाएगा।

अरुचिपूर्वक किसी प्रकार पाठ्यक्रम पूरा करा देने पर तो शिक्षक अपनी महत्ता और उपयोगिता में से किसी एक को भी बनाए न रख सकेंगे इसलिए विद्यार्थियों की उन्नति और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए शिक्षक संवर्ग को यह नया क्रम अपनाना होगा तो पाठ्यक्रम पूरा कराने के साथ साथ छात्रों का व्यक्तित्व उभारने, प्रतिभा निखारने और उन्हें आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनाने में पर्याप्त सफलता मिल सकती है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित था, जहाँ एक ओर पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे गए थे जिनसे आध्यात्मिकता का विकास होता था वहीं दूसरी ओर व्यवसायपरक शिक्षा भी दी जाती थी ताकि विद्यार्थी अपने भविष्य के प्रति चिन्तित न रहें। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा में उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम का संबंध था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भी इस विशेषता से युक्त करना होगा, उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम में संबंध स्थापित करना होगा, पाठ्यक्रम को इस प्रकार व्यवस्थित करना होगा जिससे समाज के विकास की गति एवं दिशा निश्चित हो सके। समाज में व्याप्त परंपरागत कुरीतियों, नैतिक मूल्यों के पतन आदि पर नियंत्रण हेतु प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा का ऐसा पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों की रचना करनी होगी जिनके माध्यम से इन पर नियंत्रण किया जा सके।

बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम श्रेष्ठता पर आधारित था अतएव वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण में बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम मार्गदर्शन कर सकता है। बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम की भांति वर्तमान पाठ्यक्रम को रोजगारपरक बनाया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी आत्मनिर्भर बन सकें। नई पीढ़ी में सद्गुणों का विकास करने, नैतिक मूल्यों की स्थापना तथा प्राचीन समन्वयकारी संस्कृति के ज्ञान की प्राप्ति हेतु बच्चों में अच्छे संस्कार विकसित करना आवश्यक है, इस हेतु स्त्रियों में मातृत्व के गुणों का विकास तथा उन्हें गृहकार्य में दक्ष किया जाना अपेक्षित है जिससे वे बच्चों में जन्म से ही अच्छे संस्कार डाल सकें। अतः स्त्री शिक्षा के विकास के साथ-साथ स्त्रियों के लिए इस प्रकार का पाठ्यक्रम निर्मित किया जाना चाहिए जिससे वे इन गुणों से संम्पन्न हो सकें।

शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक विद्यार्थी की क्षमतानुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए। विकास क्रम के विभिन्न सोपानों पर आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम समायोजित होना चाहिए। प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा के माध्यम से देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक प्रगति की जा सकती है। निरक्षरता उत्पादन को घटाती है तथा औपचारिक शिक्षा बेकारों की फौज बढ़ाती है, इस दुष्चक्र से निकलने का एक मात्र साधन प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा है।

प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा के द्वारा ही जनता को नागरिकता के ज्ञान, प्रजातंत्र के महत्व को बताकर वर्तमान राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सकता है। देश के बहुमुखी विकास के लिए सतत शिक्षा एक आधारभूत आवश्यकता है। यदि देश सतत शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधा एवं साधन विकसित नहीं कर पाएगा तो उससे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि नवीन ज्ञान एवं उच्च तकनीक के

क्षेत्र में वह कुछ प्राप्त कर सकेगा । हजारों वर्ष पूर्व बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अपनायी गयी सतत शिक्षा का अध्ययन करके हम वर्तमान सतत शिक्षा के संप्रत्यय को संरचित एवं सुगठित कर सकते हैं और सार्वजनीन बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रयास कर सकते हैं।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण पक्ष था उसका धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से सुसंबद्ध होना। आधुनिक शिक्षा प्रणाली धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से बहुत दूर हो चुकी है। मानव जाति का उद्धार आत्मज्ञान से ही संभव है। आत्मज्ञान अध्यात्म के बिना संभव नहीं है। अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दर्शन तथा धर्म को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना होगा। धर्म एवं दर्शन से दूर होने के कारण ही आज मानव अपने नैतिक मूल्यों को खो चुका है। मानव का ह्रदय मात्र आत्मज्ञान द्वारा ही परिवर्तित हो सकता है। मानव जीवन के दो पहलू हैं- एक भौतिक तथा दुसरा आध्यात्मिक।

आज मनुष्य अपना अधिकांश समय भौतिक संसार को ही देता है। दूसरे पक्ष की ओर बहुत ही कम सोचता है जबकि दोनों ही एक दूसरे के पूरक है, जिस प्रकार रेलगाड़ी तभी सही दिशा में चलती है जब दोनों पटरियां समानांतर होती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य जीवन रूपी गाड़ी तभी सही-सही चलेगी जब उसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक रूपी दोनों पटरियां समान होंगी। आध्यात्म ज्ञान के प्रचार-प्रसार से ही आज समाज में राष्ट्रीय एकता, अखंडता, मानव प्रेम एवं सद्भावना की शिक्षा प्रदान की जा सकती है। आज का मानव अपने लक्ष्य से दिशाहीन हो चुका है। अतः आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बौद्ध शिक्षा का समावेश ही वर्तमान दिशाहीन मानव का मार्गदर्शन कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

- अल्टेकर, ए.एस. (1965) प्राचीन भारत में शिक्षा, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी।
- अग्रवाल, एस.के. (1979-80) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, मॉडर्न पब्लिशर्स, मेरठ।
- अश्वघोष (1912) बुद्ध चरित्र, बाम्बे ओरियेन्ट पब्लिशिंग कम्पनी।
- उपाध्याय, बलदेव (1972) बौद्ध दर्शन, मोती लाल बनारसीदास, वाराणसी।

- उपाध्याय, रामजी (1966) प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, देवभारती एवं लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- ओशो, शन्ति (1956) नीतिशास्त्र, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस ।
- कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (1961) – भगवान बुद्ध और उनका धम्म, सिद्धांत प्रकाशन मुंबई।
- कुमार, अनन्त (1974) बुद्धकालीन राजगृह,बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।
- गार्डन, डी.एच. (1970) भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
- गुप्त, नत्थूलाल (1979) विदर्भ का सांस्कृतिक इतिहास, विश्व-भारती पब्लिकेशन, नागपुर।
- जौहरी, पी.डी. एवं पाठक, पी.डी. (1973) – भारतीय शिक्षा की समस्याएं, विनोद पुस्तक मंदिर, पृ. 151-153।
- झा, दिजेन्द्र नारायण, श्रीमाली, कृष्ण मोहन (2001) – प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- झा और मिश्र (1968) आचारशास्त्र के मूल सिद्धांत, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।
- टी.डब्ल्यू. रिजडेविडस (1950) बुद्धिष्ट इंडिया कोलकता।

वैश्वीकरण और भारत में सार्वभौम शिक्षा

डॉ. अभय प्रसाद सिंह[1]

नवीन शिक्षा नीति प्रारूप 2019 और वैश्वीकरण

वैश्वीकरण की दौड़ ने शिक्षा व्यवस्था के समक्ष नई चुनौतियां पेश की हैं। आज भारतीय राज्य व्यवस्था के समक्ष एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जरूरत है जो एक संस्कारी, सरोकारी और कारोबारी समाज का निर्माण करे। नई शिक्षा नीति प्रारूप 2019 इस दिशा में एक सकारात्मक पहल है। 2019 के इस नवीन शिक्षा नीति प्रारूप में विज्ञान, प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी), इंजीनियरिंग, गणित (STEM) आदि को प्राथमिकता देने पर बल दिया गया है तथा इस संबंध में कई संरचनात्मक प्रस्ताव हैं। इस शिक्षा नीति में बहु- भाषी शिक्षा प्रक्रिया पर जोर दिया गया है ताकि कई भारत जैसे विविधता मूलक देश में विभिन्न भाषाई संस्कृतियों में ऐतिहासिक रूप से पल्लवित ज्ञान को आधुनिक विश्व के वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान परंपरा से जोड़ा जा सके और इसका लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को मिले तथा भारतीय समाज इस साझे बहु- भाषी ज्ञान से वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक प्रतिस्पर्धी राष्ट्र के रूप में सफलता पूर्वक आगे बढ़े। (Monteiro: 2019; 22-23)

2019 की शिक्षा नीति में सार्वभौमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा देने के लिए कई दूरगामी सुझाव दिए गए हैं। इस नीति में शिक्षा की समान उपलब्धता के साथ-साथ शिक्षा की समान एवं सार्वभौमिक गुणवत्ता पर भी बल दिया गया है। इस नीति में प्रारंभिक शिशु देख भाल एवं शिक्षा (ECCE) 3 से 6 वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चों के शिक्षा अधिकार पर जोर है तथा यह भी प्रस्तावित किया गया है कि ग्यारहवीं एवं बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों को भी इस का लाभ मिले (Jha & Parvati: 2019; 15-16)। इस प्रकार 2019 नवीन शिक्षा नीति प्रारूप ने 2009 शिक्षा अधिकार अधिनियम के दायरे को बढ़ाने का सकारात्मक प्रयास किया है।

हमें यह समझने की जरूरत है कि ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को किस प्रकार एक समावेशी, गुणात्मक एवं सृजनात्मक शिक्षा उपलब्ध हो और इस दिशा में भारतीय समाज के शिक्षा मनीषियों ने कालांतर में शिक्षा के किन-किन उद्देश्यों पर बल दिया तथा शिक्षा संबंधी कौन-कौन सी संस्थागत पहल की। 2019 का यह प्रारूप भारत में 10 वर्ष के बाद प्रस्तावित एक नवीन शिक्षा नीति है

[1] **सहायक प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय**

जो एक स्वागतयोग्य कदम है (Jha & Parvati: 2019; 15-16)। इस नवीन शिक्षा नीति के सकारात्मक पक्षों की स्वीकार्यता के साथ हमें व्यवहार में शिक्षा प्रक्रिया के गुण- दोषों का आकलन करते हुए सर्व-लाभकारी शिक्षा एवं शिक्षा -लाभकारी समाज का मार्ग प्रशस्त करना है। प्रस्तावित नवीन शिक्षा नीति 2019 में बाल शिक्षा तथा मिड-डे मील स्कीम को अधिक प्रभावी करने पर बल दिया गया है, साथ ही वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा की महत्त पर भी जोर दिया गया है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के गठन की अनुशंसा भी की गई है। 2019 के नवीन शिक्षा नीति में यह भी कहा गया है कि जब राष्ट्रीय शिक्षा आयोग कार्यरत हो जाएगा तब इसे संसदीय अधिनियम द्वारा संवैधानिक दर्जा भी दिया जाएगा। इस नवीन शिक्षा नीति में कहा गया है कि अगले 10 वर्षों में शिक्षा पर किए जा रहे कुल व्यय को दोगुना किया जाए।

शिक्षा: सोच और ऐतिहासिक विरासत

भारतीय समाज के कालानुक्रम में शिक्षा का उद्देश्य अलग-अलग रहा है। भारतीय समाज के राजनीतिक इतिहास का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि विभिन्न देश-काल में व्यक्तिगत एवं सामाजिक गतिशीलता के साधन के रूप में शिक्षा की महती भूमिका रही है। भारत में शिक्षा चाहे दार्शनिक रही हो, आध्यात्मिक रही हो, वैज्ञानिक रही हो, या व्यावसायिक उसका महत्व सदैव रहा है। प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय समाज में गुरुकुल एवं मदरसा सरीखी संस्थाओं की अपनी भूमिका रही। मिशनरी, निजी एवं सार्वजनिक संस्थाओं के रूप में इनकी प्रासंगिकता औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक भारतीय समाज में भी रही है। शिक्षा संबंधित उद्देश्य विमर्श के केंद्र में शैक्षणिक संस्था की उपलब्धता और जनहित का प्रश्न काफी महत्वपूर्ण रहा है।

पुरातन भारतीय समाज में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक संरचना की विविधता को बनाए रखना तथा उसके अनुसार अधिकार एवं दायित्व के मूल्यों और सरोकारों को बढ़ावा देना था। इस काल में शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तियों में संस्कार, संस्कृति, सामाजिकता और सह- जीविता जैसे सद्गुणों का विकास करना था। यदि हम भक्ति आंदोलन के दौर की बात करें तो इस काल में समाज सुधारकों ने पुरातन वैदिक शिक्षा के समावेशी और परोपकारी मूल्यों को पुनः स्थापित करने की दिशा में बल दिया था। मध्यकालीन भारत में फारसी अरबी में शिक्षा की महत्ता बढ़ने के कारण भारतीय शिक्षा की दार्शनिक परंपरा से पल्लवित हो रही ज्ञान धारा अवरुद्ध हो गई थी । पुरातन भारतीय शिक्षा व्यवस्था और मध्यकालीन फारसी, अरबी शिक्षा व्यवस्था में संवादहीनता उत्पन्न हुई और इस प्रक्रिया में वैदिक एवं दार्शनिक सनातन शिक्षा व्यवस्था को बहिष्कृत किया गया।

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश हुकूमत ने भारतीय समाज पर अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था को थोपा और मिशनरी शिक्षा संस्थाओं को केंद्रीय भूमिका प्रदान कर भारतीय पुरातन दार्शनिक और आध्यात्मिक शिक्षा पर दूरगामी कुठाराघात किया। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य महज एक ऐसे सामाजिक वर्ग का विकास करना था जो उपनिवेशवादी सत्ता का प्रवक्ता एवं दुभाषिया हो (Singh: 2013;161-62)।

शिक्षा: सैद्धांतिक विमर्श

हालांकि औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था की मंशा के प्रत्युत्तर में ईश्वर चंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फुले, विवेकानंद, अरबिंद घोष, टैगोर, गांधी और अंबेडकर सरीखे राष्ट्रवादियों ने शिक्षा के विविध प्रारूप की वकालत की। जहां एक ओर दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, अरबिंद घोष और टैगोर ने भारतीय और पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्थाओं के बीच परस्पर संवाद एवं विमर्श को बढ़ावा दिया। वहीं गांधी ने बुनियादी शिक्षा पर बल दिया। ईश्वर चंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले ने समाज में लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई शैक्षणिक संस्थाओं को स्थापित किया। डॉ भीमराव अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक असमानता दूर करने के अभिकरण के रूप में कार्य करने पर बल दिया। अंबेडकर के लिए सार्वभौमिक शिक्षा सामाजिक न्याय का साधन है। जहां गांधी शिक्षा को सदगुण एवं नैतिक- नागरिक निर्माण की पूंजी मानते थे, वहीं पियरे बोर्डियू शिक्षा को सामाजिक पूंजी निर्माण के अभिकरण के रूप में देखते हैं। जहां रबीन्द्र नाथ टैगोर की शिक्षा का लक्ष्य नैतिक एवं प्राकृतिक था वहीं गांधी का नैतिक एवं आध्यात्मिक। इस प्रकार हम पाते हैं कि शिक्षा के उद्देश्य न सिर्फ कालांतर में बदलते रहे बल्कि इस पर विभिन्न विद्वानों एवं दार्शनिकों के दृष्टिकोण भी भिन्न रहे हैं (Singh:2013;162-63)।

स्वाधीन भारतीय गणतंत्र में सार्वभौमिक शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के अभिकरण के रूप में कितनी सफल व असफल रही है यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि शिक्षा की प्रक्रिया में सृजनात्मकता कितनी रही है? शिक्षा और समाज के बीच मध्यस्थ संरचनाएं किस प्रकार कार्यरत हैं? साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता, शिक्षकों के शिक्षण व प्रशिक्षण पर किया जा रहा संस्थागत खर्च तथा शिक्षा सम्बन्धी आधारभूत संरचनाओं की उपलब्धता क्या है?

सार्वभौमिक शिक्षा: विधिक प्रावधान व नीतिगत पहल

संविधान के अनुछेद 45 के अंतर्गत राज्य को 26 जनवरी 1950 से 10 वर्ष के अंदर देश के 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की दिशा में ठोस नीतिगत प्रयास करना था। संवैधानिक प्रावधानों की संकल्पनाओं के अनुरूप भारत सरकार ने सार्वभौमिक नि:शुल्क शिक्षा की दिशा में कई कारगर पहल किए हैं। राजकीय नीतिगत पहल को औपचारिक, अनौपचारिक एवं विशिष्ट शिक्षा दृष्टिकोण एवं प्रयास के संदर्भ में समझा जा सकता है (Singh :2013;163-64)।

I. औपचारिक शिक्षा:

औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की अनुशंसा के अनुरूप देश में एक राजकीय शिक्षा व्यवस्था के विकास की दिशा में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की महत्ता पर बल दिया गया। इस संबंध में संविधान के 86 वें संशोधन (2002) के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को अनुच्छेद 21A के अंतर्गत नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया। इस निमित्त 2009 में भारतीय संसद ने नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम पारित किया जिसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात् 1 अप्रैल 2010 से लागू कर दिया गया।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा 1975 से अब तक चार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (1975, 1988,2000 एवं 2005) अनुशंसित हो चुकी है। भारत में सार्वभौम औपचारिक शिक्षा का वर्तमान नवाचार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 पर आधारित है। इसके समानांतर अलग-अलग राज्यों में उनके अपने-अपने राज्य स्तरीय शैक्षिक प्रारूप हैं, जो उन राज्यों के संबंधित शैक्षणिक बोर्डस द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षा प्रदान करते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों से जोड़ने की बात करती है। यह स्कूली शिक्षा को समाज के अनुभव- जनित ज्ञान से जोड़ने की पैरोकारी भी करती है। 2005 की इस पाठ्यचर्या रूपरेखा में बच्चों को बाल समूहों में संगठित कर मुद्दों पर बहस तथा हाथ के प्रयोग से सीखी जाने वाली गतिविधियों को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में प्राथमिकता देने की बात की गई है (Singh :2013;164-65)।

(i) सर्व शिक्षा अभियान:

पूरे देश में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में वर्ष 2001 से सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत की गई। इस दिशा में भारत सरकार एवं राज्य सरकारें सर्व शिक्षा अभियान के तहत पूरे देश में लगभग 20 करोड़ बच्चों को सार्वभौमिक शिक्षा प्रदान करने की दिशा में सतत क्रियाशील हैं। जिन क्षेत्रों में विद्यालय नहीं हैं वहां नए विद्यालय खोले जा रहे हैं और मौजूदा स्कूलों में बढ़ते विद्यार्थियों को समायोजित करने के लिए नए कमरों तथा अन्य आधारभूत संरचना का भी निर्माण किया जा रहा है। इन लक्षित क्षेत्रों में नए शिक्षकों की नियुक्ति की जा रही है जिससे विद्यार्थी- शिक्षक अनुपात संतुलित रहे।भारत आज दुनिया के सबसे बड़े शिक्षा पोषण कार्यक्रम को प्रारंभिक शिक्षा पोषण सहायता राष्ट्रीय कार्यक्रम द्वारा क्रियान्वित कर रहा है।इसे आज हम मिड-डे मील कार्यक्रम के रूप में जानते हैं और जिसका लाभ 12 करोड़ से अधिक विद्यार्थियों को दिया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत देश के सभी प्राथमिक एवं उच्च- प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को पोषाहार प्रदान किया जाता है। नवीन शिक्षा नीति प्रारूप 2019 बच्चों को प्रदान किए जा रहे पोषाहार एवं मिड-डे मील कार्यक्रम के गुणवत्ता वृद्धि की बात करता है (Singh :2013;165)।

(ii) अनौपचारिक एवं विशिष्ट शिक्षा:

भारत में बाल श्रमिक एवं दिव्यांग बच्चों के लिए अनौपचारिक एवं विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

दिव्यांग बच्चों के लिए नए पाठ्य तरीकों, तकनीकों, स्कूली संरचना में बदलाव जैसे शिक्षा संस्थान में रैम्प की व्यवस्था, ऑडियो विजुअल पाठ्यक्रम सॉफ्टवेयर की व्यवस्था जैसे समावेशी संरचना एवं शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था की जा रही है।

बाल श्रमिकों के लिए वी. वी. गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना स्कूल के लिए पाठ्यचर्या प्रारूप तैयार करता है। देश के बाल श्रमिक प्रभावित जिलों में राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद तथा जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान की सहायता से पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री का विकास करते हैं। जिला प्रशासन जिलाधीशों की देखरेख में राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना प्रोजेक्टर आधारिक केंद्रों पर बाल श्रमिकों को किराए के मकान में अथवा सरकारी स्कूल में सुबह या शाम को 2 से 3 घंटों में अनौपचारिक तरीके से पठन- पाठन कार्यक्रम चलाता है। ऐसे बाल

श्रमिक विद्यार्थियों को पोषाहार, नि:शुल्क अध्ययन सामग्री तथा उनके बचत बैंक खातों में 100 रुपये मासिक छात्रवृत्ति भी दी जाती है। इस शिक्षा परियोजना का मूल उद्देश्य बाल श्रम उन्मूलन के साथ उनमें शिक्षा के प्रति जुड़ाव एवं जीवन कौशल का विकास भी है। आज पूरे देश के 250 जिलों में ये स्कूल चल रहे हैं।

सार्वभौम शिक्षा : उपलब्धियां एवं चुनौतियां

देश की स्वतंत्रता के समय भारत में महिलाओं, आदिवासियों एवं दलितों समेत सभी में साक्षरता का स्तर काफी कम था। सार्वभौमिक शिक्षा सम्बन्धित नीतिगत पहल के कारण विभिन्न सामाजिक वर्गों में न सिर्फ साक्षरता का स्तर बढ़ा है बल्कि यदि हम डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के सामाजिक और आर्थिक समानता के स्वप्न तथा उसमें शिक्षा की भूमिका की बात करें तब पाते हैं कि हम उस लक्ष्य के प्राप्ति की दिशा में क्रमवार तरीके से आगे बढ़ रहे हैं।

हालांकि विभिन्न विद्वानों ने अपने शिक्षा सम्बन्धी शोध में इसका उल्लेख किया है कि पिछले सात दशकों में भारत साक्षरता की दिशा में सकारात्मक कदम उठाने में सफल रहा है। वामन देसाई ने 2012 में प्रकाशित अपने शोध निबंध में यह उल्लेख किया है कि भारत साक्षरता, जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय एवं सकल घरेलू उत्पाद के बीच सकारात्मक रूप से सम्बन्ध स्थापित करने में सफल रहा है। देसाई के अनुसार वर्ष 1951से वर्ष 2011 के बीच भारत में जिस प्रकार साक्षरता प्रतिशत दर में वृद्धि हुई है उसने व्यक्तियों को न सिर्फ रोजगार के नए अवसरों की उपलब्धि बढ़ाई है बल्कि उनके जीवन स्तर में भी सुधार किया है। सार्वभौमिक शिक्षा सम्बन्धित उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में आज कुछ प्रमुख चुनौतियां भी हैं। बच्चों में स्कूली शिक्षा छोड़ने की दर के पीछे बाल-सुरक्षा का प्रश्न महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। प्रस्तावित नवीन शिक्षा नीति 2019 ने बाल शिक्षा सम्बन्धी अधिकार के संदर्भ में इस पर भी ध्यान दिया गया है। न्यूपा (NUEPA) ने 2015 के अपने राष्ट्रीय प्रतिवेदन में कहा है कि नामांकित बच्चों की तुलना में शिक्षकों संख्या की का अनुपात काफी कम है। इस प्रतिवेदन के अनुसार बिहार, ओडिशा जैसे राज्यों में प्राथमिक विद्यालयों में दो या दो से कम शिक्षक कार्यरत थे। सिर्फ बिहार और उत्तर प्रदेश में चार लाख से ज्यादा शिक्षकों का पद रिक्त थे। उच्च- प्राथमिक विद्यालयों में भी सम्बन्धित विषय के शिक्षकों की कमी थी। तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, बिहार और उत्तरप्रदेश में 40% तक सम्बन्धित विषय के शिक्षक नहीं थे। वर्ष 2014 तक एक लाख से ज्यादा विद्यालयों में मात्र एक शिक्षक कार्यरत थे (kundu:2019;34-36)।

इस संबंध में 2019 के नवीन शिक्षा नीति प्रारूप में शिक्षक छात्र अनुपात को सुधारने की दिशा में भी नीतिगत प्रयास करने संबंधी अनुशंसा है। इसलिए प्रस्तावित प्रारूप नवीन शिक्षा नीति 2019 के समक्ष चुनौती है कि किस ढंग से आधारभूत शिक्षा संबंधी संरचना का विकास हो, ज्यादा से ज्यादा शिक्षकों की भर्ती हो, छात्र एवं शिक्षकों के बीच का अनुपात सही हो, शिक्षा संबंधी पुस्तकों की विद्यालयों के पुस्तकालयों में उपलब्धता हो, प्रयोगशाला में उपयोग संबंधी रसायन तथा खेल संबंधी वस्तुओं की व्यवस्था हो ।

सार्वभौम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सरकारों एवं प्रशासन को गैर-सरकारी संगठनों, दूरसंचार माध्यमों तथा सामाजिक शैक्षणिक संस्थाओं के साथ साझा प्रयास किया जाए। प्रथम, एकलव्य, ज्ञानदूत, हेडस्टार्ट, एम.वी. फाउंडेशन, अजीम प्रेम जी फाउंडेशन जैसे संगठनों की भूमिका शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी परिणामों वाली रही है । इसलिए ऐसे शैक्षणिक संगठनों के साथ सरकारी साझेदारी को बढ़ावा देना चाहिए। विशिष्ट जरूरतों वाले बच्चों की विशेष शिक्षा की आवश्यकता के मद्देनजर विद्याज्योति फाउंडेशन जैसे शैक्षणिक संस्थाओं की विशेषज्ञता का लाभ उठाया जा सकता है तथा ऐसे अन्य विद्यालयों का गठन किया जा सकता है। शिक्षा की महत्त को प्रचारित व प्रसारित करने के लिए जनसंचार माध्यमों के साथ साझा प्रयास को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। सरकार को निगमित क्षेत्र के साथ भी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भागीदारी की जरूरत है। पाठ्यक्रमों की विषय वस्तु को चित्रों, मानचित्र, संदर्भ चित्र आदि के माध्यम से ज्यादा पाठ्य- सुलभ बनाने की दिशा में भी और अधिक प्रयास की जरूरत है।

आज भारत में स्कूली शिक्षा में निजी स्कूलों की भी महती भूमिका है। निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चों के लिए नामांकन कोटा निर्धारित किया गया है । निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चों को पूर्ण रूप से नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त नहीं होती है। ट्यूशन फीस को छोड़कर कई अन्य ऐसे दैनिक, साप्ताहिक और मासिक खर्चे हैं जिसका बोझ अन्य पिछड़ा वर्ग के बच्चों के अभिभावक नहीं उठा पाते और इसके परिणाम स्वरूप कुछ दिनों के बाद ऐसे अभिभावक अपने बच्चों का निजी स्कूलों से नामांकन रद्द कर फिर किसी सरकारी स्कूल में नामांकन करवाने के लिए विवश हो जाते हैं। इसलिए सरकार को यह भी नीतिगत फैसला लेना चाहिए कि सरकारी स्कूलों की तरह ही निजी स्कूलों में भी आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को पूर्ण रूप से नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त हो।

प्रस्तावित 2019 नवीन शिक्षा नीति प्रारूप इस दिशा में एक सकारात्मक नीतिगत पहल है और अपेक्षा है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में क्रियान्वित होने पर शिक्षा की सार्वभौमिकता की चुनौतियों का समाधान संभव होगा।

निष्कर्ष:

जैसे- जैसे किसी राष्ट्र के जीवन में वहाँ रह रहे विभिन्न सामाजिक वर्गों की अपेक्षाएं एवं आकांक्षाएं बदलती हैं तथा उनकी जरुरतों में भी बदलाव आता है वैसे ही शिक्षा संबंधी नीतियों में भी बदलाव की आवश्यकता होती है। प्रस्तावित नवीन शिक्षा नीति प्रारूप 2019 अगले 10 वर्षों में वास्तविक शिक्षा व्यय को दोगुना कर तथा शिक्षा से वंचित सामाजिक वर्ग के लिए प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को 3 वर्ष से 18 वर्ष तक (जो वर्तमान में 6 वर्ष से 14 वर्ष आयु के विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध है) करने की दिशा में नीतिगत पहल कर भारतीय शिक्षा क्षेत्र में एक क्रांतिकारी एवं समावेशी शिक्षा का सूत्रपात कर रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. Singh, Abhay Prasad(2013) 'Samajik Parivartan Ke Utprerak', in B. N. Chaudhary & Y. Kumar, *Aaj Ka Bharat*, Orient BlackSwan, New Delhi, pp.160-190.
2. Kundu, Protiva(2019) 'Deteriorating Quality of Education in Schools', *Economic and Political Weekly*, Vol. LIV, No. 24, pp. 34-41.
3. Desai S., Vaman,(2012) 'Importance of Literacy in India's Economic Growth', *International Journal of Economic Research,* V. 312, pp.112-124.
4. Jha, Praveen & Pooja Parvati(2019) 'A Country in Search of an Education Policy', *Economic and Political Weekly*, Vol. LIV, No. 26, pp. 16-19.
5. Monterio, Vivek(2019) 'Basic Blunders and Fundamental Flaws' *Economic and Political Weekly*, Vol. LIV, No. 26&27, pp. 20-23.

भारत में शिक्षा पर निजी कोचिंग संस्थाओं का कसता शिकंजा

श्रीपाल जैन[1]

निजी ट्यूशन/कोचिंग संस्थानों ने भारत के विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों के अधिकांश छात्रों को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। अच्छी नौकरी पाने के उद्देश्य से अधिकाधिक छात्र प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करने के लिए निजी ट्यूशन या कोचिंग संस्थान को चुनते हैं। माता-पिता या अभिभावक भी अपने पुत्र या पुत्री को आइ.ए.एस., इंजीनियर, बैंक अधिकारी या डॉक्टर बनाने के लिए उन्हें निजी कोचिंग लेने के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि समाज में यह धारणा घर कर गई है कि विद्यालय या महाविद्यालय में पढ़ाई उनको बड़े पद पाने में अपेक्षित रूप से समर्थ नहीं बनाती। यह स्थिति जहां देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली की कमजोरी दर्शाती है, वहीं अनेक यक्ष प्रश्न खड़ा करती है कि क्या प्रत्येक छात्र के माता-पिता निजी कोचिंग संस्थानों की महंगी फीस चुकाने में सक्षम हैं? क्या स्व-अध्ययन से प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी नहीं की जा सकती? क्या निजी ट्यूशन या कोचिंग सफलता की गारंटी है?

कोचिंग को भले ही एक उद्योग के रूप में मान्यता नहीं मिली लेकिन कोचिंग संस्थान अरबों रुपयों के वारे-न्यारे कर रहे हैं। ग्लोबल इंडस्ट्री एनलिसिस के एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2018 में विश्व में निजी ट्यूशन और कोचिंग का बाजार 103 अरब डालर का था। इस बाजार में अमेरिका, यूरोप और एशिया-प्रशांत क्षेत्र के देशों (हांगकांग, जापान, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया और चीन) का हिस्सा 90 प्रतिशत था। अकेले दक्षिण कोरिया का हिस्सा 19.5 अरब डालर (यानी 20 प्रतिशत) था। इसके अतिरिक्त ऑनलाइन ट्यूशन में भारत भी अग्रगामी है जिसमें किफायती लागत पर पेशेवर भाषाई एवं अकादमिक कोचिंग दी जाती है। एशिया में ट्यूशन बाजार बेहतर स्थिति में है जबकि अमेरिका में इसकी मांग धीरे-धीरे बढ़ रही है।

भारत में कोचिंग का फैलता कारोबार

पिछले छह वर्षों के दौरान भारत में ट्यूशन/कोचिंग बाजार की विकास दर लगभग 30-35 प्रतिशत रही है। आंकड़ों की मानें तो वर्ष 2018 में यहां इसका वार्षिक कारोबार लगभग 70 अरब डालर को छू गया। राजस्थान के सिर्फ कोटा शहर के कोचिंग संस्थानों का वार्षिक कारोबार लगभग 1,500-

[1] **बी.डी.-7, डी.डी.ए.फ्लैट्स, मुनीरका, नई दिल्ली-110067**

1,800 करोड़ रुपये का बताया जाता है। सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि यह अत्यंत लाभदायक व्यवसाय है। कोचिंग संस्थान खोलने में बहुत अधिक निवेश की जरूरत नहीं पड़ती। शिक्षकों की नियुक्ति और भवन के किराए, मरम्मत, रखरखाव आदि के व्यय छात्रों की फीस से आसानी से पूरे किए जा सकते हैं। इस व्यवसाय में जोखिम बहुत कम है। यह अलग बात है कि बड़े-बड़े विज्ञापनों पर प्रचार व्यय होता है पर यह नौबत तब आती है जब कोचिंग संस्थान अत्यधिक लोकप्रियता पाने का प्रयास करें अन्यथा कम पूंजी निवेश से काम चल सकता है।

यदि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की बात करें तो देश में 35 प्रतिशत छात्र किसी न किसी रूप में ट्यूशन/कोचिंग का सहारा लेते हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार देश के अमीर और गरीब परिवार अपनी आय का 12 प्रतिशत हिस्सा अपने बच्चों की ट्यूशन/कोचिंग पर व्यय करते हैं। मध्य-वर्गीय परिवार अपने बच्चों की शिक्षा पर लगभग 35 प्रतिशत हिस्सा व्यय करते हैं। एसोचेम की रिपोर्ट के अनुसार शहरी प्राथमिक विद्यालयों के 87 प्रतिशत छात्र और माध्यमिक स्कूलों के 95 प्रतिशत छात्र किसी न किसी रूप में ट्यूशन/कोचिंग का सहारा लेते हैं। ये कोचिंग संस्थान अधिकांशतया दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद, बेंगलूरू और चेन्नई में हैं जो सिविल सेवा से लेकर कानून, सी.ए., और मेडिकल की प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करवाते हैं। जबकि कोटा, जयपुर, चंडीगढ़ की ख्याति इंजीनियरिंग में कोचिंग की है। पुणे डिजाइनिंग और प्रबंधन की कोचिंग के लिए प्रसिद्ध है। पिछले कुछ वर्षों में इन कोचिंग संस्थानों में पंजीकरण में भारी वृद्धि हुई है। एक सर्वेक्षण ने यह भी दर्शाया है कि कुछ प्रतिष्ठित स्कूलों और कॉलेजों के निपुण शिक्षक अधिक वित्तीय लाभ हेतु अपनी नौकरी छोड़ कर निजी ट्यूशन/कोचिंग का धंधा चला रहे हैं।

देश में बड़े पैमाने पर निजी कोचिंग संस्थानों के प्रारंभ की एक दिलचस्प कहानी है। लगभग चार दशक पहले दो कोचिंग संस्थानों ने पहले पत्राचार पाठ्यक्रम का धंधा आरंभ किया और पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराते थे। फिर धीरे-धीरे कक्षा में कोचिंग देने का सिलसिला आरंभ हुआ और यह जल्दी ही लोकप्रिय हो गया। इस सफलता से प्रेरित होकर अनेक निजी कोचिंग संस्थान इस धंधे में कूद पड़े। उन्होंने अन्य शहरों में अपना विस्तार किया और शाखाएं खोलीं या फ्रैंचाइजी दीं। इन कोचिंग संस्थानों की वित्तीय स्थिति इतनी मजबूत होती गई है कि वे समाचार पत्र-पत्रिकाओं और टी.वी. में विज्ञापनों पर लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करने लगे हैं। कुछ कोचिंग संस्थान आकर्षक वेतन पर प्रबंधकों को भी नौकरियां देते हैं।

जो कोचिंग संस्थान पहले जिन विषयों के पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाते थे वे अब उनकी भी कोचिंग दे रहे हैं। जैसे- इंजीनियरिंग की कोचिंग देने वाले संस्थान जी.एम.ए.टी., जी.आर.ई. टॉफेल आदि की भी कोचिंग दे रहे हैं। मेडिकल की कोचिंग वाले संस्थान इंजीनियरिंग की कोचिंग भी देने लगे हैं। कुछ कोचिंग संस्थानों ने विविधीकरण कर अन्य संबद्ध क्षेत्र- डे केयर और कॉरपोरेट प्रशिक्षण का व्यवसाय शुरू किया है। ये संस्थान मानते हैं कि जब कभी कोचिंग के व्यवसाय में प्रगति कमजोर होगी, तब नए क्षेत्र के द्वार में एकाएक प्रवेश कठिन होगा। इसलिए अभी से क्यों न कोचिंग से संबद्ध अन्य क्षेत्रों में प्रवेश कर लिया जाए।

कुछ अन्य कोचिंग संस्थानों ने प्रतियोगी और प्रवेश परीक्षाओं के अलावा रिटेल प्रबंधन, आयात-निर्यात प्रबंधन, वेल्थ प्रबंधन, निवेश बैंकिंग, बीमा प्रबंधन, रियल इस्टेट आदि जैसे विषयों पर लघुकालिक पाठ्यक्रम प्रारंभ किए हैं। इसी प्रकार कुछ कोचिंग संस्थानों ने विभिन्न विषयो से संबंधित पुस्तकों के प्रकाशन का धंधा शुरू किया है। कुछ संस्थान नामी विद्यालय या महाविद्यालय में प्रवेश संबंधी कोचिंग दे रहे हैं जबकि कुछ अन्य संस्थान विदेश के महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों में प्रवेश संबंधी परामर्श और कोचिंग देते हैं।

विद्यालयों/महाविद्यालयों में उन सवालों के बारे में विशेष बल दिया जाता है, जो बोर्ड/कॉलेज/विश्वविद्यालय की परीक्षा में पूछे जाते हैं। जबकि कोचिंग संस्थान प्रतियोगी परीक्षाओं में अच्छे अंक लाने की दृष्टि से तैयारी करवाते हैं। यहां न्यूयॉर्क में आयोजित पी.ए.एन. आइ.आइ.टी. सम्मेलन में इन्फोसिस कंपनी के संस्थापक श्री एन.आर. नारायण मूर्ति की विद्यालयों-कॉलेजों की शिक्षा के संदर्भ में इस टिप्पणी का उल्लेख अत्यंत प्रासांगिक है- "पिछले कुछ वर्षों में कोचिंग संस्कृति और उसके संकीर्ण दायरे के कारण आइ.आइ.टी. में छात्रों का स्तर गिर गया है। ये किसी तरह संयुक्त प्रवेश परीक्षा पास कर लेते हैं पर जब नौकरी में आते हैं या उच्च शिक्षा के लिए अमेरिकी शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश लेते हैं तो कार्य-प्रदर्शन उतना अच्छा नहीं रहता, जो एक जमाने में होता था।"

शिक्षा-ढांचे की कमज़ोरियां

शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि भारतीय विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली छात्रों की बढ़ती संख्या के साथ तादात्म्य नहीं बिठा पा रही जिससे कोचिंग उद्योग का दबदबा बढ़ता गया। कक्षा में छात्रों की अधिक संख्या के कारण शिक्षक उन पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे पाते और दुष्परिणाम पूरी कक्षा के पिछड़ने के रूप में सामने आता है। शिक्षकों पर वर्ष के निश्चित घंटों में पाठ्यक्रम को पूरा करने का

दबाव रहता है। पहले माता-पिता बच्चों के साथ बैठ कर उनकी पढ़ाई में मदद करते थे पर अब दोनों के नौकरी करने से ऐसा नहीं कर पाते। ऐसे में वे वैकल्पिक तरीके ढूंढ़ते हैं और इसमें कोचिंग को चुनते हैं, भले ही महंगी फीस क्यों न चुकानी पड़े। अधिक धन कमाने के लालच में कुछ शिक्षक अपनी नौकरी के अलावा कोचिंग संस्थानों में पढ़ाते हैं जबकि नियमों के अंतर्गत इसकी अनुमति नहीं होनी चाहिए।

अनेक शिक्षक शिक्षण को सिर्फ नौकरी मानते हैं!

शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू होने के बाद स्कूलों में ढांचागत सुविधाओं के निर्माण पर बहुत-सारी धनराशि व्यय की गई। ये सुविधाएं महत्वपूर्ण हैं पर इसमें शिक्षा प्रणाली की रीढ़ माने जाने वाले शिक्षकों की गुणवत्ता को भुला दिया गया। 1970 के दशक से लेकर 2009 तक शिक्षक की नौकरी पाने के लिए शैक्षणिक डिग्रियां पर्याप्त होती थीं। शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत शिक्षकों के लिए पात्रता परीक्षा का प्रावधान किया गया जो एक तरह से गुणवत्ता नियंत्रण का एक प्रयास था। लेकिन अभी भी ऐसे अनेक पुराने शिक्षक हैं, जो गुणवत्ता पर खरे नहीं उतरते। अनेक शिक्षक शिक्षण को सिर्फ एक नौकरी मानते हैं!

शिक्षकों को सेवा के दौरान प्रशिक्षण दिया जाता है जिसमें उनकी व्यक्तिगत और विद्यालय-विशिष्ट आवश्यकताओं पर ध्यान देने के बजाय सभी के लिए एकल प्रशिक्षण व्यवस्था है। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य छात्र-केंद्रित शिक्षण प्रक्रियाओं में शिक्षकों के ज्ञान-स्तर और कौशल में वृद्धि है पर अनेक शिक्षकों के अनुसार यह शिक्षण, परीक्षा प्रणाली और विद्यालयों की शिक्षा के अन्य पहलुओं के समग्र परिवेश के संदर्भ में मूल्य-संवर्धन नहीं करता। अतएव यह विचारणीय है कि क्या छात्रों को प्रतिस्पर्धी बना कर अग्रिम पंक्ति में लाने का वायदा करने वाले कोचिंग संस्थान आवश्यक हैं या छात्र स्व-अध्ययन कर अच्छे अंक पा सकते हैं।

कोचिंग के लाभ

अनेक अभिभावकों और छात्रों का मानना है कि वर्तमान प्रतिस्पर्धा के दौर में निजी ट्यूशन या कोचिंग के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं-

1. **सही दिशा:** कोचिंग संस्थान कक्षा- 9 से 12 तक की बोर्ड परीक्षाओं, प्रतियोगी परीक्षाओं, प्रवेश परीक्षाओं आदि के बारे में सही मार्गदर्शन देते हैं। छात्र न सिर्फ अकादमिक मार्गदर्शन पाते हैं बल्कि

उन्हें अपनी रुचि के हिसाब से कॅरियर-विकल्पों की जानकारी भी मिलती है। इसलिए आगे प्रवेश और कॅरियर के मार्गदर्शन की दृष्टि से कोचिंग संस्थान सहायक हैं।

2. **व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना:** विद्यालयों या महाविद्यालयों में एक ही सेक्शन में 40-60 छात्र होने से शिक्षक उन पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे पाते और आवंटित समय के भीतर पाठ्यक्रम पूरा कराने की हड़बड़ी में रहते हैं। लेकिन कोचिंग संस्थान छात्र की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार पढ़ाते हैं।

3. **नई तकनीक से शिक्षण के प्रतिस्पर्धात्मक लाभ:** कोचिंग संस्थान नई तकनीक से विभिन्न प्रकार के छात्रों को पढ़ाते हैं, जिससे छात्रों को विषय समझने में आसानी होती है। जबकि विद्यालयों और महाविद्यालयों में एक ही पैटर्न से पढ़ाया जाता है जो प्रत्येक छात्र की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करता।

4. **अतिरिक्त समय का सदुपयोग:** कक्षा-9-12 के छात्र विद्यालय समय के बाद के खाली समय व्यतीत करते हैं, उसका सदुपयोग होना चाहिए। ट्यूशन या कोचिंग संस्थान इस अतिरिक्त समय में छात्रों के अकादमिक कौशल में सुधार लाने में सहायक साबित होते हैं। वे छात्रों की दिनचर्या भी अनुशासित करते हैं।

5. **जटिल मसलों को समझने में सहायता:** प्रत्यक्ष कर जैसे कुछ जटिल विषय हैं जिनमें अवधारणाओं और तकनीकी पहलुओं को समझना कठिन है। कोचिंग संस्थान इसमें सहायता करते हैं। न सिर्फ निपुण और पेशेवर शिक्षक मदद करते हैं बल्कि छात्रों को एक बड़े समूह के साथ विचारों के आदान-प्रदान का अवसर भी मिलता है।

कोचिंग की हानियां

अनेक शिक्षाशास्त्रियों और अभिभावकों का कहना है कि कोचिंग संस्थानों से भले ही प्रतियोगी परीक्षाओं में थोड़ी-बहुत मदद मिलती हो लेकिन यह एक मृग-तृष्णा है जिसकी लालसा में अभिभावक और छात्र धन का अपव्यय कर रहे हैं। उनके अनुसार इसके प्रमुख हानियां इस प्रकार हैं-

1. **शिक्षा पर अतिरिक्त व्यय:** पिछले कई वर्षों से शिक्षा लागत में लगातार वृद्धि हुई है। जो छात्र पढ़ाई में कमजोर हैं या कोचिंग संस्थानों की मदद से बेहतर अंक पाना चाहते हैं, उनके

अभिभावकों पर शिक्षा की लागत का बोझ बढ़ जाता है। प्रत्येक अभिभावक यह बोझ सहन नहीं कर सकता। लेकिन वे अन्य छात्रों के साथ बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण अपने बच्चों को कोचिंग संस्थान में पढ़ाने को विवश हैं।

2. **छात्रों पर होमवर्क का अतिरिक्त बोझः** विद्यालय की तरह ट्यूशन या कोचिंग संस्थान छात्रों को ढेर-सारा होमवर्क देते हैं जिसका अभ्यास आवश्यक होता है। विद्यालय के अलावा कोचिंग संस्थानों के होमवर्क से उन पर बोझ अत्यधिक बढ़ जाता है जो उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों के प्रतिकूल है।

3. **अलग पद्धति से छात्रों की दुविधाः** स्कूलों और कॉलेजों में अलग पद्धति से पढ़ाया जाता है जबकि कोचिंग संस्थानों के शिक्षण का पैटर्न उससे अलग होता है। इससे छात्रों के सामने यह दुविधा पैदा हो जाती है कि वे किस पैटर्न से पढ़ाई करें।

4. **अत्यधिक प्रतिस्पर्धा से छात्रों में तनावः** कोचिंग संस्थानों का उद्देश्य छात्रों को परीक्षाओं में अधिकतम प्रतिस्पर्धी बना कर आगे ले जाना होता है। लेकिन इस अंधी प्रतिस्पर्धा के चक्कर में अनेक छात्र अनावश्यक तनाव और दुश्चिंताओं के शिकार होते हैं। पिछले कुछ वर्षों में कोटा, चेन्नई आदि शहरों में कोचिंग संस्थानों के छात्रों की आत्महत्या का एक प्रमुख कारण परीक्षा का तनाव था।

5. **भिन्न-भिन्न बोर्डों के लिए एक कोचिंग संस्थान अनुपयुक्तः** विभिन्न बोर्डों में पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न होता है। छात्र जब कोचिंग संस्थान में पढ़ते हैं तो वे अपने से भिन्न पैटर्न पाते हैं। इसलिए कोचिंग संस्थान में सभी छात्रों की पढ़ाई संबंधी समस्याओं का निवारण नहीं होता।

6. **मानव-पूंजी के संवर्धन का खोखला दावाः** कोचिंग संस्थान मानव पूंजी का संवर्धन नहीं करते। असल में वे समाज पर भारी भावनात्मक लागत थोप रहे हैं। वे छात्र को परीक्षा उत्तीर्ण करने से आसान छोटे रास्तों के माध्यम से परीक्षोन्मुखी तैयारी करवाते हैं ताकि उच्च अंक प्राप्त हों। इसको योग्यता का एकमात्र पैमाना मानना गलत है- यह एक छोटा लाभ है जिससे मानव-पूंजी का संवर्धन नहीं होता।

स्पष्ट है कि कोचिंग संस्थानों के लाभ न्यून हानि अत्यधिक हैं। स्वयं तैयारी करने वाले बुद्धिमान छात्रों को कोचिंग संस्थानों की इतनी जरूरत नहीं जितनी कि कमजोर अकादमिक रिकॉर्ड

वाले छात्रों को। वस्तुतः कोचिंग संस्थानों ने अपने बारे में एक भारी उन्माद पैदा कर रखा है कि उनके यहां परीक्षाओं की बेहतर तैयारी करवाई जाती है। कोचिंग संस्थान एक सीमा तक ही छात्र की मदद करते हैं- वह भी तब जब छात्र में स्वयं अध्ययन की उच्च लगन और आकांक्षा हो। इस प्रकार कोई भी कोचिंग संस्थान छात्रों के स्व-अध्ययन के बिना सफलता नहीं दिला सकता। स्व-अध्ययन का एक सबसे बड़ा लाभ समय, धन और ऊर्जा की बचत है। इससे छात्रों का आत्मविश्वास बढ़ता है। लेकिन स्व-अध्ययन के लिए आत्म विश्वास, स्वप्रेरणा और लगन अत्यावश्यक है।

स्व-अध्ययन बनाम कोचिंग कक्षाएं :

स्व-अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिए एक अच्छा विकल्प है क्योंकि इसके बिना कोई भी परीक्षा पास नहीं की जा सकती। कोचिंग में भी स्व-अध्ययन एक बड़ी सीमा तक आवश्यक है। स्व-अध्ययन से आत्मविश्वास बढ़ता है। लेकिन यह भी समझना होगा कि स्व-अध्ययन या कोचिंग कक्षाएं पेशेवर सफलता में एकमात्र निर्णायक तत्व नहीं होता। परीक्षा में उत्कृष्ट स्थान पाने वाले छात्रों के ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे, जो पेशेवर जीवन में सफल नहीं रहे। इसलिए मुख्य निर्णायक तत्व परीक्षा में तैयारी के लिए ईमानदारी से प्रयास है। स्व-अध्ययन की कतिपय आवश्यक पूर्व-शर्तें इस प्रकार हैं-

1. **स्व-अध्ययन में शिक्षकों और वरिष्ठ छात्रों की उपयोगी भूमिका:** स्व-अध्ययन शुरू करने के बारे में अपने शिक्षकों और वरिष्ठ छात्रों से समुचित मार्गदर्शन पाना उपयोगी रहता है। पाठ्यक्रम की सैद्धांतिक विषयवस्तु और संदर्भ पुस्तकों में कुछ ऐसी सामग्री होती है जो परीक्षा की दृष्टि से अप्रासंगिक होती है। इस बारे में शिक्षकों और वरिष्ठ छात्रों का मार्गदर्शन महत्वपूर्ण साबित होगा।

2. **परीक्षोन्मुखी विषयों पर मित्रों या वरिष्ठ छात्रों से नियमित चर्चा:** स्व-अध्ययन के दौरान छात्र अकेले अध्ययन करते हैं। इससे उसको याद रखना कठिन होता है। छात्र विषय के जिन विभिन्न पहलुओं, विशेषकर परीक्षोन्मुखी बातों को समझ न पाएं उन पर मित्रों या वरिष्ठ छात्रों से नियमित चर्चा करें। इससे अन्य की समझ को जानने का सुनहरा अवसर मिलेगा।

3. **उपयोगी संदर्भ पुस्तकों का सही चयन:** स्व-अध्ययन के लिए सभी उपयोगी संदर्भ पुस्तकों को अग्रिम रूप से जुटा लेना चाहिए। उनसे नोट्स बनाएं ताकि छात्र याद रख पाएं।

4. **तकनीकी पहलुओं पर शिक्षकों और वरिष्ठ छात्रों से मदद:** कुछ विषयों में सैद्धांतिक पहलू या अवधारणाएं होती हैं जिनको स्व-अध्ययन में समझना कठिन है। इस बारे में शिक्षकों और वरिष्ठ छात्रों की सहायता उपयोगी होगी।

5. **समय का समुचित प्रबंधन और अनुशासन:** स्व-अध्ययन के दौरान छात्रों को पाठ्यक्रम का विशद अध्ययन करना पड़ता है और संभव है कि वे नौकरी के साथ कोई परीक्षा दे रहे हों जिससे उन्हें समय कम मिलता है। इसलिए अपने समय का समुचित प्रबंधन और अनुशासन अति-महत्वपूर्ण है।

6. **ध्यान केंद्रित करना अत्यावश्यक:** कोचिंग में स्व-अध्ययन अभिन्न अंग है जबकि स्व-अध्ययन में कोचिंग आवश्यक नहीं होती। इसलिए विषय के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करना होगा। स्वयं अपनी पहल से सिद्धांतों और अवधारणाओं को समझने के लिए पर्याप्त ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। छात्रों को परीक्षा की दृष्टि से प्रासंगिक और अप्रासंगिक पहलुओं को अलग-अलग छांटना होगा।

7. **अपनी ताकत और कमजोरियों का विश्लेषण:** यदि छात्रों को आत्मविश्वास है कि वे सैद्धांतिक भाग की तुलना में व्यावहारिक भाग में अधिक आसानी महसूस करते हैं तो उन्हें सैद्धांतिक पहलूओं को समझने के लिए अधिक समय देना पड़ेगा।

दर असल कोचिंग व्यवसाय असंगठित और अविनियमित है। इससे जहां ये संस्थान ट्यूशन/कोचिंग के लिए मनमानी (महंगी) फीस वसूलते हैं वहीं कई संस्थानों के शिक्षकों की गुणवत्ता संदेह के घेरे में है।

विनियमन की आवश्यकता

इन ट्यूशन/कोचिंग संस्थानों का विनियमन बहुत आवश्यक है क्योंकि वे मुख्यधारा की शिक्षा को प्रभावित कर रहे हैं, समाज पर भावनात्मक लागत का बोझ थोप रहे हैं और अनधिकृत तरीके से संचालित हो रहे हैं। कुछ राज्यों ने इनके विनियमन के कानून बनाए लेकिन उन्हें यथोचित ढंग से लागू नहीं किया गया। उदाहरणार्थ गोवा ने कोचिंग कक्षाएं (विनियमन), अधिनियम 2001 बनाया जिसके अंतर्गत प्रत्येक कोचिंग संस्थान के लिए राज्य शिक्षा विभाग में पंजीकरण कराना आवश्यक है। राज्य सरकार ने फीस के ढांचे के कुछ नियम निर्धारित किए हैं। 2007 में जारी एक सरकारी अधिसूचना के

अनुसार छात्र से कक्षा-10 के लिए प्रतिवर्ष, प्रति विषय अधिकतम 2,500 रु. फीस वसूली जा सकती है जबकि कक्षा- 12 के लिए यह राशि 6,000 निर्धारित की गई। निजी कोचिंग संस्थान की स्थापना के लिए ढांचागत सुविधाओं के बारे में भी आवश्यकता प्रावधान किए गए हैं।

उल्लेखनीय है कि 1.30 अरब की जनसंख्या वाले भारत की 22 आइ.आइ.टी. में सिर्फ 11,00 सीटें हैं, जबकि इनमें प्रतिवर्ष 12 लाख छात्र आवेदन करते हैं। इंजीनियरिंग, मेडिकल और प्रबंधन जैसे रोजगार के सर्वाधिक अवसर पैदा करने वाले विषयों के अच्छे सरकारी शिक्षा संस्थानों की भारी कमी है। कोचिंग के कारण समाज में सुविधा-प्राप्त और सुविधाहीन छात्रों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के शिक्षकों में उत्तरदायित्व की भावना घटती गई है। इसलिए शिक्षा में ठोस एवं सार्थक सुधार शीघ्र किए जाने चाहिए।

अमेरिका, ब्रिटेन और जापान जैसे विकसित देशों में ट्यूशन/कोचिंग का प्रचलन सामान्य बात नहीं है क्योंकि वहां पढ़ाई में कमजोर छात्र इसका सहारा लेते हैं। जबकि भारत में स्थिति उलटी है। अब 1960 और 1970 के दशक का युग नहीं रहा, जब 70-75 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्र आइ.आइ.टी. और मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश पा लेते थे- वह भी बिना ट्यूशन और कोचिंग के। अब इतनी गलाकाट प्रतिस्पर्धा है कि नामी कोचिंग संस्थानों में प्रवेश के लिए भी प्रवेश परीक्षाएं हो रही हैं। यह सिलसिला कहां समाप्त होगा, कहना तब तक कठिन है जब तक कि शिक्षा व्यवस्था में समुचित सुधार नहीं किए जाते।

शिक्षण अभ्यास में नवाचार

डॉ. जयशंकर शुक्ल[1]

सांराश

दस दिन दस प्रयोग मूलतः फलागम (ontcome) को छात्रों / छात्राओं द्वारा हासिल किए गए हिन्दी एवं गणित के तत्वों का एक प्रक्रियागत प्रयत्न है। साक्षरता का गणित एवं हिन्दी विषय को लेकर निश्चित बिन्दुओं / स्तरों के आधार पर प्रक्रिया का पालन करके परिणाम तक पहुँचाने का एक संक्रियागत प्रयोग इस आलेख का मूल है। प्रथम दिन विद्यार्थियों का चयन (छात्र/छात्राओं में से यादृच्छिक रूप से 22 को) पूर्व परीक्षण के द्वारा चिह्नित किया गया। इस चयन का उपकरण हिन्दी में अक्षर, शब्द, वाक्य, कहानी, उच्च स्तरीय कहानी तथा गणित में इकाई अंक, दहाई अंक, घटाना तथा भाग अपनाया गया। दूसरे दिन विद्यार्थियों द्वारा अंकों के आकार, उच्चारण करवाकर एक दूसरे को अंकों से संबोधित करके तथा हिन्दी भाषा में आस-पास के परिवेश से अनुभव की गई जानकारी को शब्दों के द्वारा व्यक्त करने व सभी को उससे परिचय कराया गया। तीसरे दिन कुछ उपलब्ध प्रकाशित सामग्री (यथा सहायक पुस्तक व अन्य सामग्री) द्वारा बिना हासिल के व हासिल के साथ अभ्यास कराया। विद्यार्थियों को समूह में शामिल करके, निकाल करके इस क्रिया को स्पष्ट किया। इसी प्रकार हिन्दी में भी शब्दों के द्वारा वाक्यों का अभ्यास कराया। चौथे दिन यातायात के साधनों के नामों को छात्रों के साथ जोडकर उसके बारे में जानकारी दी गई। घर के दैनिक जीवन की जरूरी वस्तुओं को जोड़कर/ घटाकर विद्यार्थियों की जानकारी समृद्ध कराना। पाँचवें दिन वृत्तों की संक्रिया के द्वारा हिन्दी/ गणित विषयों के क्रिया-कलाप करवाया। छठा दिन क्यू कार्ड के द्वारा शिक्षण का रहा जिसमें कहानी/ कविता बनवाना तथा गिनती / पहाड़ा का अभ्यास कराना प्रमुख था।

सातवें दिन व्यक्तिगत भिन्नताओं का ध्यान रखते हुए उनकी कमियों के लिए जानकारी साझा करने का कार्य किया गया। आठवें दिन हिन्दी में अनुच्छेद तथा शब्द लेखन तथा आपसी आदान-प्रदान द्वारा शिक्षण रखा गया। गणित में मौसम, तापमान व यातायात के समयकाल की जानकारी साझा की गई। नवें दिन विद्यार्थियों के अध्ययन अभ्यास का मौखिक जायजा लिया गया। दसवां दिन बच्चों की वास्तविक स्थिति अधिगम सम्प्राप्ति की कितनी उपलब्धि हुई यह जानने का रहा।

[1] **कोर अकादमिक यूनिट, परीक्षा अनुभाग (शिक्षा विभाग), राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली – 110054**

प्रथम सोपान (छात्र चयन प्रक्रिया)

विद्यालय चयन के उपरान्त विभाग द्वारा प्रदत्त प्रकाशित गणित एवं भाषा (हिंदी) की सामग्री के आधार पर 6ठी कक्षा के छात्रों में से क्रमशः एक अंकीय पहचान पद्धति एवं द्विअंकीय पहचान पद्धति के साथ घटाना (सामान्य व हासिल वाला) के बाद की संक्रियाओं के माध्यम से गणित में छात्रों को उनके अनुसार सूचीबद्ध किया तथा इसी के साथ हिंदी भाषा शिक्षण के वर्ण, अक्षर, शब्द, वाक्य, अनुच्छेद, कहानी तथा उच्च स्तरीय कहानी के खाचों में छात्रों की योग्यता के आधार पर उन्हें शिक्षण अभ्यास के लिए एवं परीक्षण उपकरण द्वारा चयनित किया।

पूर्व परीक्षण के साधन के माध्यम से छात्रों की जानकारी को पूर्वज्ञान परीक्षण के बाद इन्हें सूचीबद्ध करके उनको उसी के अनुरूप शिक्षण के लिए चयनित करके पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण पद्धति को सुनिश्चित किया। छात्रों की सीखने की प्रक्रिया में सहयोगी उपादान कार्यप्रणाली को लेकर फलागम को नियत किया गया।

क्रिया-कलापः

हिंदी – अक्षर, शब्द, पद, वाक्य, अनुच्छेद, कहानी तथा उच्चस्तरीय कहानी

इनमें से किस स्तर तक छात्र / छात्राएं अपनी जानकारी के आधार पर आते हैं यह जांच करके सूचीबद्ध करना ।

गणित – इकाई अंक, दहाई अंक, जोड़ना घटाना, गुणा, भाग।

इनमें छात्र / छात्रा का स्तर जानकारी के आधार पर कहाँ तक है यह जांच सूचीबद्ध करना।

द्वितीय सोपानः

छात्रों की चयन प्रक्रिया के उपरांत उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं के माध्यम से उनकी पहचान सुनिश्चित की गई। गणित के विद्यार्थियों की कक्षा में छात्रों के साथ शुरुआत में गिनती की पर्ची बनाकर विद्यार्थियों में वितरित कर दिया। विविध रूप में बोर्ड पर लिखकर एकल अंकीय आकार पद्धति से छात्रों की पहचान सुनिश्चित की गई। 1,2,3,4,5,6,7,8,9 और 0 के आकार बनाकर, उनसे बनवाकर, उच्चारण करवाकर तथा एक दूसरे को दी गई पर्ची पर अंकित अंकों के साथ नाम जोड़कर,

पुकार कर अभ्यास को प्रेरित किया गया। अंकीय समझ का विकास छात्र/छात्राओं में किए जाने का यह उपक्रम प्रत्येक छात्र के साथ गणित की मान्य प्रक्रियाओं द्वारा करने का प्रयास गणित शिक्षण में प्रमुख रहा। दिवस के दूसरे कालांश में हिंदी के शिक्षण में वर्णों का बोध कराने का कार्य इसी तरह से पर्ची में अक्षरों/शब्दों को लिखकर बीच में रख दिया गया। और विद्यार्थियों से उन पर्चियों को उठाने को कहा गया। विद्यार्थियों के पास पर्ची में लिखे हुए शब्दों के आधार पर भाषा शिक्षण में मानक उच्चारण तथा अनुकरण उच्चारण कराया जाना प्रमुख रहा । वर्णों से परिचित होने की प्रक्रिया में यह महत्वपूर्ण है।

हिंदी भाषा शिक्षण में परिवेश तथा उससे प्राप्त आनुभूतिक जानकारी को केंद्र में रखकर छात्रों के पूर्वज्ञान को देखते हुए नए अनुभव को रखकर उनकी अभिव्यक्ति के लिए अवसर दिए गए जिसका परिणाम उनकी समझ के रूप में उन्हें आंकने के लिए किया गया।

क्रिया-कलापः

गणित – संख्याओं को पर्ची में लिखकर इकाई और दहाई संख्याओं के द्वारा छात्रों से पहचान सुनिश्चित करके उन्हें उसी संबोधन से पुकारा जाना इस तरह से पहचान उच्चारण परक होगी।

हिंदी – इसी तरह से हिंदी के वर्णों को पर्ची पर लिखकर उन्हीं वर्णों द्वारा छात्रों को पहचान देकर पुकारना तथा समझ विकसित करने हेतु सभी छात्रों में चर्चा करवाना।

तृतीय सोपानः

छात्रों की रुचि एवं उत्साह को बरकरार रखते हुए विद्यालय परिसर में कुछ अलग विधान का पालन करते हुए खेल के माध्यम से शिक्षण को क्रियान्वित करने के लिए बाहर मैदान में लाकर उनके पहचान के माध्यम से शिक्षण को आगे बढ़ाया गया। छात्रों एवं छात्राओं को गणित की विविध जानकारी देने के क्रम में घटा के दोनों ही विधियों (बिना हासिल के तथा हासिल के साथ) अभ्यास कराया गया। विद्यार्थियों ने स्वयं को समूह से जोड़कर तथा उन में से कुछ को निकाल कर शेष को बोलकर घटाने से अभिप्राय को प्रदर्शित किया। इसी प्रकार हिंदी शिक्षण कालांश में छात्रों की रुचि व योग्यता का ध्यान रखते हुए अलग चित्रों के आधार पर विद्यार्थियों द्वारा उनकी जानकारी सामने लाकर तथा अन्य विद्यार्थियों से चर्चा करवाकर क्रियान्वयन प्रारम्भ किया गया। जिसकी परिणति छात्रों

द्वारा मौखिक व लिखित ढंग से प्रकटन द्वारा सामने आई। छात्र/छात्राएं अपने घर परिवार से बहुत कुछ लेकर आते हैं। शिक्षक उनका समन्वय करके शिक्षण कार्य को आगे बढ़ता है शिक्षण प्रणाली, पाठ्य वस्तु, उपकरण, सहायक सामग्री का निर्धारण इन्हीं चीजों के आधार पर होता है।

क्रिया-कलाप:

गणित – मैदान में छात्रों को इकट्ठा करके उनके समूह में से कुछ को मिलाकर तथा कुछ को घटाकर जोड़ एवं घटाव की संकल्पना को बताना।

हिंदी – शब्दों से छात्रों का समूह बनाकर उनके नाम लेखकों एवं कवियों के नाम पर रखकर तथा बच्चों को पुकारने के लिए कहना।

चतुर्थ सोपान:

शिक्षण सदैव देशकाल – वातावरण के साथ – साथ पात्र को केंद्र में मानकर गतिमान होता है। हमारी जरूरतें हमें सीखने की ओर अभिप्रेरित करती हैं। यही सीखना शिक्षण का मूल है। उक्त विवेचन में हमने आवश्यकता एवं परिवेश का जिक्र किया है। इन दोनों ही बिंदुओं के आधार पर चयनित छात्रों/छात्राओं के लिए आहूत अभ्यास शिक्षण को आगे बढ़ाया गया। चौथे दिन दैनिक जरूरत की चीजों के नाम को अभ्यास शिक्षण के प्रमुख बिंदु के रूप में अपनाया। यातायात के साधनों से लेकर पठन-पाठन में काम आने वाली वस्तुओं के नामकरण/लेखन को विशेष प्रोत्साहन दिया। क्रमश: प्रत्येक छात्र को एक-एक अक्षर लिखकर प्ले कार्ड उपलब्ध करवाए गए तथा दिखाए गए चित्र के आधार पर उन अक्षर वाले बच्चों को एक साथ जुड़कर सही वर्ण संयोजन बनाने को कहा गया। नए शब्द व नई जानकारी छात्रों/छात्राओं को नए अवसर या नई उपलब्धि के रूप में मिलते है। वे अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार उनमें रम जाते हैं परिणामस्वरूप पठन-पाठन का एक माहौल बनता है।

क्रिया-कलाप

यातायात के साधनों के नाम के संबधित प्ले-कार्ड विद्यार्थियों को उपलब्ध करवाए गए तथा उन्हें दिखाए गए चित्रों के अनुसार सही वर्ण संयोजन में खड़े होने को कहा गया।

गणित - घर की जरूरत की चीजों को जोड़कर घटाकर उनके द्वारा छात्रों/छात्राओं को समूहबद्ध करना, अवधारणा के स्तर पर छात्रों/छात्राओं की जानकारी बढ़ाना।

पंचम सोपानः

पूर्व के अभ्यास शिक्षण से अलग पहले भाषा शिक्षण (हिंदी) क्रियान्वयन रखा गया। छात्रों के साथ शब्द निर्माण के लिए एक क्रिया-कलाप किया गया। विद्यार्थियों के दो वृत्त बनाए गए आंतरिक तथा एक बाह्य वृत्त में छात्रों को व्यवस्थित किया गया। क्रमशः बाह्य वृत्त के छात्रों को गतिमान किया गया तथा आन्तरिक वृत्त के छात्रों को स्थिर रखा गया। चलते हुए पंक्ति को रोका गया एवं जिसके सामने जो आया उस छात्र के नाम के प्रथम अक्षर से दूसरे शब्द बनाना एवं उसे लिखा जाना। यही क्रिया अंतः वृत्त को गतिमान रखकर बाह्य वृत्त को स्थिर रखकर आमने-सामने के छात्रों द्वारा अभ्यास कराया गया। यही क्रियात्मक प्रारूप गणित के अंक (एकल एवं दो अंकीय) तथा पहाड़े एवं गिनती के लिए किया गया।

क्रिया-कलापः

शिक्षण छात्रों / छात्राओं के पठन-पाठन में बेहद उत्साह परक हो जाता है, छात्रों की अपनी जानकारी भी उन्हें अपनी आवश्यकताओं से जोड़ती है।

हिंदी – दो वृत्त बनाए गए एक बाह्य वृत्त तथा दूसरा अंतः वृत्त दोनों के बच्चों में से एक को स्थिर तथा एक को गतिमान रखा गया। गतिमान वृत्त के जो छात्र स्थिर वृत्त के छात्र के सामने आया उस छात्र के नाम के प्रथम अक्षर से दूसरे शब्द बनाना। यही प्रक्रिया बार – बार दुहराई गई।

गणित – इसी तरह से गणित में गिनती एवं पहाड़ा का अभ्यास करके छात्रों की जानकारी बढ़ाई जा सकती है।

पष्ठ सोपानः

अभ्यास शिक्षण के छठवें दिन क्यू-कार्ड के माध्यम से विद्यार्थियों को पठन-पाठन के अभियान से जोड़ा गया। कार्ड में बने चित्रों तथा उसके विभिन्न तरह के अभिप्राय केंद्रित वक्तव्य द्वारा प्रारंभ तथा छात्रों को उसे पूरा करने का अवसर देकर एक कहानी या एक -एक कविता का निर्माण करवाया गया। छात्रों ने इस कार्य में आगे बढ़-चढ़कर भाग लेकर अपनी रुचि के अनुसार प्रयास किया। छात्रों ने अपने अध्ययन के दौरान पाठ्य विषय की प्रस्तुति में क्यू कार्ड के संकेतों को सहयोगी माना। कहानी व कविता को चित्र देखकर बनाने की क्रिया में छात्रों ने नई-नई कहानियों को बनाया तथा कविताएं भी उसी तरह से बनाने का प्रयास किया। अभ्यास शिक्षण में गणित में पहाड़े एवं गिनती का नियमित अभ्यास जारी रखा गया तथा उसी के साथ बारह खड़ी का वाचन भी बनाए रखा गया ।

क्रिया-कलापः

हिंदी – क्यू कार्ड के द्वारा प्रस्तुति, अलग-अलग चित्रों, संवादों के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया को गतिमान रखना।

गणित – क्यू कार्ड के माध्यम से पाठ्य प्रस्तुति, अंकों के अलग-अलग क्रम के आधार पर उनका मूल्यांकन, जोड़, घटा के साथ गुणा भाग की संक्रियाएँ करना।

सप्तम सोपानः

विद्यार्थियों की आवश्यकता, उनकी रुचि तथा योग्यता के साथ सीधी संबंधित होती है। वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुसार बालक के सीखने की प्रक्रिया एवं सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है। आवश्यकताएँ आविष्कार की जननी होती हैं। आविष्कार के लिए समूहगत प्रक्रिया के द्वारा एक परिवेश विनिर्मित किया जाता है तथा उसके द्वारा छात्र-छात्राएँ स्वयं को क्षमता सम्पन्न बनाने की कोशिश करते हैं। यहाँ शिक्षक एक अवसर प्रदाता के रूप में अपनी भूमिका निभाता है। सातवें दिन छात्रों को व्यक्तिगत रूप से जान कर उनकी कमी के अनुसार उनके साथ सुधारात्मक सामग्री को साझा करने की कोशिश की गई। विद्यार्थियों ने उक्त कार्य में अपनी सहभागिता और आवश्यकता दोनों को रेखांकित करते हुए स्वयं को लाभान्वित किया।

क्रिया-कलाप:

हिंदी – परिवेश देकर छात्रों से कहानी एवं अनुभव बताने / लिखने को कहना।

गणित- समय, स्थान, परिस्थिति के अनुसार अपना आकलन प्रस्तुत करना।

अष्टम सोपान:

आठवें दिन विद्यार्थियों से उनके अभ्यास शिक्षण में प्राप्त जानकारियों को कदम दर कदम परखना आवश्यक होता है। इसी प्रक्रिया से उनके द्वारा ग्राह्य जानकारियों का महत्व एवं मूल्यांकन किया जाना संभव होता है। हिन्दी शिक्षण में अनुच्छेद एवं शब्द लेखन के साथ-साथ खेल-खेल में छात्रों द्वारा नए-नए शब्दों के आदान-प्रदान द्वारा शिक्षण अभ्यास का क्रम आगे बढ़ाया गया। हर विद्यार्थी जहाँ व्यक्तिगत रूप से अलग है, विभिन्नताओं के साथ है; वहीं विशिष्ट भी है उसकी यह विशेषता उसकी भाषिक पृष्ठभूमि को लेकर है । छात्र अपनी जानकारी के अधिकतम शब्दों को वहीं से ग्रहण करता है और सार्वजनिक जीवन में प्रयोग में लाता है। शिक्षक छात्रों की सामूहिक संक्रियाओं के माध्यम से इन चीजों को निकलवाता तथा एक दूसरे तक पहुँचाता है। भाषा शिक्षण में इस तरह की क्रियाएँ करके अभ्यास शिक्षण किया गया। इसका अच्छा परिणाम रहा तथा कुछ इसी तरह की क्रियाओं द्वारा गणित शिक्षण को भी गिनती, पहाड़ा तथा अन्य गणितीय संक्रियाओं में किया गया।

क्रिया-कलाप:

हिंदी – नए शब्दों को जानकर तथा अपने आंचलिक शब्दों के साथ उनकी तुलना एवं समन्वय करने के साथ जानकारी।

गणित – तापमान, मौसम, यातायात आदि के समयबद्धता तथा इनके आने-जाने के समयकाल की जानकारी।

नवम सोपान:

नौवाँ दिन गणित शिक्षण अभ्यास में मील का पत्थर साबित हुआ। विद्यार्थियों से मौखिक रूप से उनकी संप्राप्ति का जायजा लिया गया। छात्रों/ छात्राओं के अध्ययन-अभ्यास में सीखे गए नए

अनुभवों को पता करने के लिए गणित विषय के अंतर्गत विद्यालय के गणित शिक्षक का सहयोग लेकर तथा प्रति छात्र अच्छी तरह से उनके ज्ञान एवं व्यवहार से स्तर को जानकर रेखांकित किया गया । उसी तरह से हिंदी विषय के अध्ययन अभ्यास में छात्रों द्वारा सीखे गए विषयवस्तु को जानने के लिए विद्यालय के एक ही विषय शिक्षक का सहयोग दूसरे भाषा शिक्षण के कालांश में लिया गया।

क्रिया-कलापः

जानकारी लेने तथा प्रयोग में लाने की प्रक्रिया में आसपास के पादप व वनस्पतियों, सड़कों, चौराहे, अस्पताल आदि का प्रयोग।

दशम सोपानः

दसवाँ दिन मूलतः छात्रों की उपलब्धि को आँकने का रहा। साक्षरता के इस दस दिन के शिक्षण में विद्यार्थियों की क्या कुछ उपलब्धि रही उनकी जानकारी में कितनी वृद्धि हुई, यह देखने का समय रहा। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में विद्यार्थियों के फलागम के स्तर को अंकित करने का कार्य मुख्य रहा। गणित तथा हिंदी में छात्र कितनी प्रगति कर सके वह देखा गया।

क्रिया-कलापः

हिंदी तथा गणित में छात्रों की स्थिति को चिह्नित किया गया छात्रों में सुधार को रेखांकित किया गया। इस तरह से दस दिनों का यह दविकालांशीय भाषा गणित विषय का शिक्षण अभ्यास का सत्र संपन्न हुआ। जिसके माध्यम से शिक्षा में नवाचार तथा उसके प्रायोगिक प्रकार्य का सीधा कार्यान्वयन देखा गया। इस कार्य की सफलता का सारा श्रेय विभाग एवं नीति निर्धारकों को है।

पहले दिन के असमंजस में शुरू किए गए गणित एवं भाषा के अभ्यास शिक्षण की परिणति इतना सुखद एवं संतोषजनक रही। इस विशेष कार्य में छात्रों की प्रतिभागिता मूल रूप में रही बाकी सब गौण। उन्हीं छात्रों की आँखों में आँसू थे। जिनमे तिर रहे सपनें इस संक्रिया के पुनर्स्थापन क्रियान्वयन की अपेक्षा कर रहे थे। अधिकतर छात्रों ने अधिकतम जानकारी, पाठ्य ज्ञान अर्जित किया तथा बीच में न आ पाने वाले (अनुपस्थित) छात्रों ने अफसोस जाहिर किया।

दशम सोपान post test के द्वारा अधिगम फलाफल (learning outcomes) को जांचा किन गया किछात्रों/छात्राओं ने कितना कुछ हासिल किया pre test और post test में छात्रों की उपलब्धि कितनी रही कितने छात्रों ने आगे प्रगति की, निदानात्मक शिक्षण के साथ उपचारात्मक शिक्षण के द्वारा कितने छात्रों/छात्राओं का उन्नयन किया जा सकता है। इसे प्रयोग की उपलब्धि के रूप में चिह्नित किया जा सकता है।

उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश – क्रियान्वयन का व्यावहारिक प्रस्ताव

डॉ. सरोज कुमार वर्मा[1]

"आज का दौर बाजार का दौर है इसलिए इसमें मौजूदा शिक्षा-पद्धति की सामाजिक भूमिका कम हो जाती है। आज ज्यादातर लोग सिर्फ नौकरी के लिए पढ़ाई करते हैं, विश्वविद्यालयों की यह जिम्मेदारी होती है कि वह छात्रों के अंदर छिपी प्रतिभा तलाश कर उसके हिसाब से ज्ञानार्जन के लिए सही मार्गदर्शन करें। विश्वविद्यालय और शिक्षण संस्थान के अध्यापकों को चाहिए कि वे छात्रों को किताबों के साथ-साथ नैतिक ज्ञान भी दें। हर शिक्षण संस्थान को कोशिश करना चाहिए कि वह छात्रों की शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश कर अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह करें। कोई भी शिक्षण संस्थान यदि अपनी सामाजिक भूमिका के बिना चलता है तो यह न सिर्फ छात्रों के लिए बल्कि हमारी सामाजिक व्यवस्था के लिए भी नुकसानदायक है।" **--के सच्चिदानंदन**

समय कभी स्थिर नहीं रहता। इसलिए समय के साँचे में बँधी जिन्दगी भी सदैव परिवर्तित होती रहती है। इस परिवर्तन का नतीजा कभी शुभ होता है कभी अशुभ। शिक्षा के क्षेत्र में आनुपातिक तौर पर यह नतीजा शुभ नहीं रहा है। सूचना-तकनीक अथवा व्यापार-प्रबंधन जैसी जिन्दगी की बाह्य जानकारियां शिक्षा के दायरे में आ गई हैं। परंतु आत्मज्ञान तथा नैतिक बोध जैसे विषय शिक्षा की परिधि से बाहर निकल गए हैं। जबकि इनका अहसास ही जीवन के केंद्रीय मूल्य हैं, बाकी सब परिधिगत है। इसीलिए आत्यंतिक स्वतंत्रता प्रदान करने वाली शिक्षा आज हर तरफ से बंधन में जकड़ने का कारण बन गई है। इसी कारण ओशो इस शिक्षा से अत्यंत दुखी होकर कहते हैं-" शिक्षा की स्थिति देखकर हृदय में बहुत पीड़ा होती है। शिक्षा के नाम पर जिन परतंत्रताओं का पोषण किया जाता है, उनसे एक स्वतंत्र और स्वस्थ मनुष्य का जन्म संभव नहीं है। मनुष्य जाति जिस कुरूपता और अपंगता में फँसी है, उसके मूलभूत कारण शिक्षा में ही छिपे हैं। शिक्षा ने प्रकृति से तो मनुष्य को तोड़ दिया है, लेकिन संस्कृति उससे पैदा नहीं हो सकी है।" निश्चित ही शिक्षा के इस तरह घातक होने का मूल कारण उसका मूल्यों से स्खलित और नैतिकता से रहित हो जाना है। यह स्थिति प्राथमिक शिक्षा से लेकर

[1] **06, व्याख्याता आवास, खबड़ा रोड, विश्वविद्यालय परिसर, मुजफ्फरपूर-842001 (बिहार)**

उच्च शिक्षा तक है। अतः उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों के समावेश के प्रावधानों पर चर्चा करने के पूर्व यह देखना आवश्यक है कि आज की शिक्षा, नीति और मूल्यों से हीन कैसे और क्यों हो गई है।

यह विचार इस विश्लेषण से शुरू किया जा सकता है कि शिक्षा के दो पहलू होते हैं – एक आंतरिक और दूसरा बाह्य। आंतरिक पहलू के अंतर्गत् उसका पाठ्यक्रम आता है तो बाह्य पहलू के अंतर्गत उसकी पद्धति। यह बाह्य पहलू उसके आंतरिक पहलू से तय होता है अर्थात् शिक्षा के पाठ्यक्रम से शिक्षा की पद्धति निर्धारित होती है। अतः क्या पढ़ना है, इसी पर यह निर्भर करता है कि उसे कैसे पढ़ाया जाए? इसलिए जिस विधि से विज्ञान पढ़ाया जाता है, उसी विधि से कला नहीं पढ़ाई जा सकती; ठीक वैसे ही जैसे जिस तरीके से तर्क किया जाता है, उसी तरीके से प्रेम नहीं किया जा सकता। विषय के हिसाब से विधि बदल जाती है। इसलिए शिक्षा पर विचार करने के क्रम में सबसे जरूरी इस पर विचार करना है कि पढ़ाया क्या जाए? यानी पाठ्यक्रम क्या हो? चूकीं यह सवाल शिक्षा का उद्देश्य तय करता है इसलिए उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों के समावेश विषयक इस विमर्श में इसका जवाब दिया जाना जरूरी है कि आखिर अभी जैसी शिक्षा दी जा रही है, यह शिक्षा लेकर हम करेंगे क्या? क्या केवल तकनीकी-कुशलता अथवा प्रबंधन-क्षमता प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य है? निश्चित रूप से नहीं! शिक्षा का उद्देश्य इससे बहुत अधिक व्यापक, गहन और मूल्यपरक है जे कृष्णमूर्ति के शब्दों में – "शिक्षा को स्थाई जीवन-मूल्यों की खोज में हमारी सहायता करनी चाहिए, जिससे कि हम फार्मूलों से ही न चिपके रहें अथवा नारों को ही न दुहराते रहें; उसे राष्ट्रीय और सामाजिक अवरोधों को, गौरव देने के स्थान पर, उन्हें तोड़ने में हमारी सहायता करनी चाहिए क्योंकि वे मानव-मानव के बीच विरोध उत्पन्न करते हैं। दुर्भाग्य से शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था हमें अधीनस्थ, यंत्रवत् और विचारहीन बना रही है।"

इसके मूल में भौतिक विकास की वर्तमान अवधारणा है जिसके मुताबिक भौतिक समृद्धि ही विकसित होने का एकमात्र पैमाना है। इस पैमाने के कारण ही आज उपभोक्तावाद की वह संस्कृति पैदा हुई है जो बेतहाशा भोग को महिमामंडित करती है। अब चूकिं भौतिक वस्तुओं की खरीद-बिक्री बाजार में होती है जिससे कि अत्यधिक मुनाफा भी कमाया जाता है इसलिए आज बाजार जीवन के केंद्र में आ गया है और शिक्षा भी अपने मूल उद्देश्य से भटक कर इस बाजार की चाकरी में ही लग गई है। वह ज्ञान, सूचना, प्रौद्योगिकी आदि भिन्न-भिन्न नामों से इसी की सेवा में संलग्न है। अनिल सद्गोपाल इसे स्वीकार करते हुए लिखते हैं- "यह कहने की जरूरत नहीं कि प्राचीन काल से ही शिक्षा सामाजिक,

सांस्कृतिक विकास से जुड़ी रही है लेकिन आज बुनियाद को मजबूत करने की बात नहीं हो रही है। उदारीकरण और नव उदारवाद के दौर से देशहित नहीं बल्कि बाजार का हित प्रमुख हो गया है।... आज जो सूचना व ज्ञान बांटा जा रहा है उसमें देशहित या समाजहित कहीं से नहीं दिखता। ज्ञान या शिक्षा का उद्देश्य बदलाव या परिवर्तन तथा मूल्य का निर्माण होना चाहिए।"

लेकिन वर्तमान शिक्षा ऐसे मूल्यों का निर्माण नहीं कर पा रही है क्योंकि वह उन प्रक्रियाओं में संलग्न हो गई है जिनसे भौतिक विकास संभव होता है, आर्थिक समृद्धि पैदा होती है। अभी शिक्षा के नाम पर तकनीकी, औद्योगिक, व्यापारिक और प्रबंधात्मक शिक्षा इसी कारण दी जा रही है। सूचना-तकनीक, व्यापार-प्रबंधन, कंप्यूटर-इंजीनियरिंग अथवा विज्ञापन-व्यवस्था आदि शिक्षा के मुख्य विषय हो गए हैं, इसी वजह से अभी के पाठ्यक्रम में इन सारे विषयों को प्रमुखता से शामिल किया गया है और उसी के अनुरूप शिक्षण-पद्धति निर्मित की गई है। इन सारे विषयों की शिक्षा रोजगारपरक शिक्षा के नाम पर दी जाती है, जबकि सिर्फ रोजगार प्राप्त करना शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य नहीं है, उसका केन्द्रीय उद्देश्य तो नैतिक मूल्यबोध से युक्त उस मनुष्य का निर्माण करना है जो स्वयं के साथ-साथ दूसरे का भी कल्याण करने वाला हो; लेकिन आज शिक्षा को केवल रोजगार से जोड़ दिया गया है, उसे अर्थोपार्जन का जरिया मात्र मान लिया गया है, इसलिए ये सारे विषय रोजगारपरक हो गए हैं। फिर यह मामला केवल रोजगार का नहीं रह गया है बल्कि आर्थिक प्रचुरता से जुड़ गया है। इन क्षेत्रों में असीम आय है इसलिए ये विषय इतने प्रमुख बन गए हैं। कल जब शिक्षा का उद्देश्य केवल अर्थोपार्जन नहीं होकर चरित्र-निर्माण था तब ये विषय इतने प्रमुख नहीं थे क्योंकि तब रोजगार के नाम पर अकूत संपदा प्राप्त करने की होड़ नहीं थी। तब अन्य कई विषय भी रोजगारपरक थे। अतः आज यदि ये विषय रोजगारपरक और प्रचुर आय के साधन बन गए हैं तो सिर्फ इसलिए कि इसके पीछे भौतिकवादी विकास की अवधारणा है, उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार है, बाजार का वर्चस्व है।

इस प्रकार वर्तमान शिक्षा केवल भौतिक विकास, बाह्य समृद्धि, सुख आदि संसारिक उद्देश्यों की प्राप्ति में संलग्न है। इसमें आत्मिक विकास, नैतिक उत्थान तथा मूल्यपरक जीवन के लिए कोई जगह नहीं है। इसीलिए दर्शन, साहित्य, संगीत, कला, नैतिकता आदि विषय जो मनुष्य को भीतर से विकसित करते हैं, उसे मूल्यों से जोड़ते हैं, हाशिए पर चले गए हैं, जबकि इनके अभाव में मनुष्यता सही मायने में विकसित ही नहीं हो सकती। इसीलिए तो स्वामी विवेकानंद ने कहा है- " शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जिसे तुम्हारे मस्तिष्क में ठूंस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना

वहां आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता हो। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों । यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रंथालय को कंठस्थ करनेवाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े संत हो जाते और विश्वकोश महान ऋषि बन जाते।.... सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य मनुष्य निर्माण ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा। ... हम मनुंष्य बनाने वाला धर्म ही चाहते हैं, हम मनुष्य बनाने वालें सिद्धांत ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में मनुंष्य बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं।"

यह तभी हो सकता है जब हम उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में न फंसें, भौतिक विकास की अंधी दौड़ में शामिल न हों। इसके लिए जरूरी है कि न्यूनतम सुविधाओं के साथ जीया जाए। यह काम बेहद कठिन है परन्तु इसके बिना शिक्षा के किसी स्तर पर चाहे वह प्राथमिक हो अथवा उच्च नैतिकता का पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता, मूल्यबोध की शिक्षा नहीं दी जा सकती। लेकिन यह काम सिर्फ सदाचार का उपदेश देने से नहीं होगा, सादा जीवन जीने की नसीहत देने से नहीं होगा। सदाचार और सादगी को जीवन में उतारना भी होगा; इसके लिए कुछ प्रायोगिक कार्यक्रम भी करने होंगे। यह प्रायोगिक कार्यक्रम ध्यान-साधना का होगा। ध्यान-साधना के द्वारा आत्मबोध को प्राप्त किया जा सकता है, जो कि आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है; और आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति भौतिक विकास की दौड़ में शामिल नहीं होता। वह भीतर से इतना समृद्ध होता है कि बाहर की समृद्धि की उसे कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। इससे आंतरिक मजबूती बढ़ती है और वह धन, पद, सत्ता, सम्मान और यश आदि बाहरी हमलों से विचलित नहीं होता, बल्कि जरूरत के मुताबिक न्यूनतम सुविधाओं के साथ जीने में समर्थ होता है, नैतिक मूल्यबोध से युक्त सादगी और सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अतः उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों के समावेश के लिए महाविद्यालय, विश्वविद्यालय जैसे उच्च शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम में ध्यान-साधना की पद्धतियों को शामिल करना होगा, उनके नियमित अभ्यास की व्यवस्था करनी होगी। यह व्यवस्था शिक्षण-पद्धति का अनिवार्य अंग होगी, उसका आवश्यक प्रायोगिक कार्यक्रम होगी। इस ध्यान-साधना के अभ्यास से जब

छात्र-शिक्षक आत्मबोध से समृद्ध हो जाएंगे तब नैतिक मूल्य सहज ही उनके जीवन में उतर आएगा, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सूरज के निकलने से प्रकाश फैल जाता है। बेहतर होगा कि यदि इसे प्राथमिक, माध्यमिक स्तर से शामिल किया जाए।

इसके साथ-साथ विकास की वर्तमान अवधारणा को बदलना पड़ेगा। विकास की वर्तमान अवधारणा उद्योग आधारित है। इसके बदले कृषि आधारित विकास की अवधारणा विकसित करनी होगी। यद्यपि यह अवधारणा पहले से मौजूद रही है लेकिन अभी यह बिल्कुल हाशिए पर चली गई है। इसे पुनर्जीवित करके केंद्र में लाना होगा। यह एक ऐसा विकास होगा जिसके केंद्र में उद्योग और व्यापार नहीं होगा, बल्कि कृषि होगी। यद्यपि इसमें यंत्र, तकनीक और उद्योग से बिल्कुल परहेज नहीं होगा परन्तु ये केंद्र में नहीं होंगे। केंद्र में कृषि होगी। यही हमारी आय का मुख्य स्रोत होगी। व्यापार और उद्योग का स्थान इसके बाद होगा। ये अतिरिक्त आय के स्रोत होंगे, लेकिन कृषि की कीमत पर नहीं। ये उसके सहयोगी भर रहेंगे। मगर इसमें कठिनाई यह होगी कि कृषि से उतनी आय नहीं होगी, जितनी उद्योग अथवा व्यापार से होती है। तब जीवन भी उतना विलासितापूर्ण नहीं हो पाएगा, जितना औद्योगिक, व्यापारिक व्यवस्था में होता है। वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति केलिए कृषि आधारित विकास में जगह नहीं बच पाएगी। इसके लिए हमें तैयार होना पड़ेगा। यह एक दिन में होने वाला नहीं है। यह लंबें समय तक निरंतर चलने वाली कठिन प्रक्रिया है।

परन्तु इस प्रक्रिया के शुरू करने में सबसे बड़ा भय पिछड़ जाने का है जबकि जिसे अभी विकास कहा जा रहा है वही वास्तव में पिछड़ापन है। आखिर देह के विकासका दायरा भी कितना और क्या हो सकता है। कोल्हू के बैल की तरह एक सीमित दायरा है उसका। असीम और अनंत विकास तो चेतना का ही हो सकता है। अनंत आकाश में उड़ते पंछियों की तरह। इसलिए घबड़ाने की जरूरत नहीं है। किसी लंबी पंक्ति का आखिरी व्यक्ति यदि अपना रूख बदल ले तो वही पहला हो जाता है। उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों के समावेश के लिए यह रुख बदलना जरूरी है। यह बदलाव नई यात्रा की शुरुआत बन सकती है, शिक्षा की नई इमारत खड़ी कर सकती है। इस इमारत की नींव "श्री अरबिन्द जैसे दार्शनिकों ने पहले ही रख दी है। डॉ. सुनीति मुखर्जी 'श्री अरबिन्द का शिक्षा-दर्शन 'में लिखती हैं"... श्री अरबिन्द के मत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नैतिक शिक्षा की पूर्णता के पश्चात् ही अर्थात् अंतरात्मा की उपलब्धि के बाद ही एक नई शिक्षा का आंरभ होगा जिसके फलस्वरूप केवल मानव प्रकृति का उत्तरोत्तर विकास ही नहीं होगा और बल्कि उससे सुप्त शक्तियाँ ही दिनों दिन बढ़ती

जाएंगी और प्रकृति का अपना और साथ ही साथ संपूर्ण सत्ता का भी रूपान्तरण हो जाएगा। प्रणियों की एक जाति का नया आरोहण होगा और दिव्य ज्योति का अवतरण होगा।" इसके लिए यह आवश्यक है कि ठोस संकल्प लेकर काम शुरू किया जाए। इसी से नैतिक मूल्यों से युक्त होकर उच्च शिक्षा मनुष्यता के कल्याण में समर्थ हो सकती है, सक्षम हो सकती है।

संदर्भ-

1. ओशो (भगवान श्री रजनीश); शिक्षा में क्रांति, पृ.5-6 रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड, श्री रजनीश आश्रम, 17 कोरेगांव पार्क, पुणे - 411001 (महाराष्ट्र); 1979
2. जे. कृष्णमूर्ति; शिक्षा एवं जीवन का महत्व, पृ.-5-6, कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इंडिया, राजघाट शिक्षा संस्थान, राजघाट फोर्ट, वाराणसी मई, 1993
3. अनिल सद्गोपाल; "देश हित नहीं बाजार हित प्रमुख है", 'प्रभात खबर' दीपावली विशेषांक 2011, पृ.-14; प्रभात खबर, 15 पी, कोकर इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची-834001
4. स्वामी विवेकानंद; शिक्षा, पृ-50 श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर, 1975
5. डॉ. सुनीति मुखर्जी; श्री अरबिन्द का शिक्षा –दर्शन, पृ-7 रामकृष्ण प्रकाशन, 103, गौशाला नगर, वृन्दावन (मथुरा), अप्रैल 2001

शिक्षण अधिगम एवं सूचना प्रौद्योगिकी

डॉ.अमित कुमार[1]
आकांक्षा तिवारी[2]

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण अधिगम अर्थात् पढ़ाने और सीखने-समझने की प्रक्रिया उसकी रीढ़ है। ज्ञानार्जन की प्रक्रिया शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावकारिता व रोचकता पर निर्भर करती है। एक अनुभवी शिक्षक अपनी कक्षा में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक रुचिकर तथा प्रभावी बनाने हेतु विभिन्न प्रकार कि विधियों तथा सामग्री का उपयोग करता है, फिर भी कई बार विभिन्न संसाधनों से सूचना प्राप्त करने व छात्रों की कक्षा में सहभागिता के बीच कठिनाई आती है। ऐसे में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी (आइ.सी.टी.) महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आइ. सी.टी. ने शिक्षक और छात्र दोनों के लिए बहुत सी संभावनाएं प्रस्तुत की हैं। आइ सी टी शिक्षण को अधिक अन्तःक्रिया पूर्ण तथा शिक्षार्थी केंद्रित अधिगम को बढ़ावा देने में सहायक साबित हो रही है। आइ सी टी का उपयोग प्रचलित शैक्षणिक पद्धतियों के सुदृढ़ीकरण के साथ-साथ शिक्षकों व छात्रों के बीच संवाद के तरीके को भी सुदृढ़, रोचक व प्रभावकारी बना रही है। आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली विभिन्न समस्याओं के समाधान के विशिष्ट साधन के रूप में आइ सी टी का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है। शिक्षा के अभियंत्रण व प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में तो इसका भरपूर प्रयोग किया जा रहा है। हालांकि देश कि आवश्यकताओं व शैक्षणिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए यह कहना जरूरी है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आइ सी टी का और अधिक इस्तेमाल किये जाने की आवश्यकता है।

आज के प्रतिस्पर्धी दौर में जब शिक्षा, विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में नित्य नए परिवर्तन हो रहे हों तो अपने ज्ञान को अद्यतन करना प्रत्येक छात्र व शिक्षक की पहली आवश्यकता है। ऐसे में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यही वह साधन है जिसके माध्यम से अतिशीघ्र सही व प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। शिक्षक आइ सी टी के माध्यम से विद्यालय में तकनीक का इस्तेमाल करके समय-समय पर आने वाली कठिनाइयों को एक ओर जहाँ दूर करता है, वहीं दूसरी ओर अपनी शिक्षण तकनीक का मूल्यांकन करके अपने शिक्षण में भी

[1] **सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, आर्यकन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज,उ.प्र.**

[2] **शोध छात्रा, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

गुणात्मक परिवर्तन लाता है। जब से सूचना व संचार प्रौद्योगिकी को शिक्षण में भी गुणात्मक परिवर्तन लाता है। जबसे सूचना व संचार प्रौद्योगिकी को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के उपयोग में लाया गया है, इसने एक त्रुटिहीन प्रेरक के रूप में कार्य किया है। आइ सी टी के साधनों, वीडियो, टेलीविजन, मल्टीमीडिया, कंप्यूटर, इन्टरनेट, सॉफ्टवेयर व एप्लिकेशन्स के उपयोग से छात्र सीखने की प्रक्रिया में अत्यंत गहराई से जुड़ते हैं। शिक्षा के सभी क्षेत्रों में नवाचारों के समावेश हो, के लिए एन.सी.ई.आर.टी. व सी. आइ.ई.टी. जैसे संस्थानों द्वारा लगातार नई-नई शिक्षण तकनीकी सामग्रियों व शैक्षिक तकनीकी संसाधनों का विकास किया जा रहा है। समय-समय पर इन संस्थानों द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुगम, रोचक व गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए संगोष्ठियाँ व कार्यशालाएं आयोजित कर शिक्षकों, शोधार्थियों व छात्रों को जागरूक किया जा रहा है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया - शिक्षण की प्रक्रिया एक सोद्देश्य प्रक्रिया है एवं शिक्षण अधिगम के उद्देश्य ही शिक्षा प्रक्रिया में संलग्न शिक्षकों व छात्रों को क्रियाशील बनाते हैं। शिक्षण उद्देश्यों के निर्धारण के अभाव में शिक्षक द्वारा शिक्षण की कोई भी योजना न तो तैयार की जा सकती है और न ही उसका क्रियान्वयन किया जा सकता है। शिक्षण से तात्पर्य सिखाने की क्रिया से और अधिगम का तात्पर्य सीखने से है। अन्य शब्दों में शिक्षण का तात्पर्य कक्षा में शिक्षक के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न क्रियाकलापों की श्रृंखला से है, जिन्हें वह अपने छात्रों के व्यवहार का परिमार्जन करने एवं ज्ञान, बोध, कौशल आदि अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नियोजित ढग से संम्पादित करता है। यह शिक्षण व छात्र के बीच की अन्तर्क्रियात्मक प्रक्रिया होती है। शिक्षण उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षण को ज्ञानात्मक शिक्षण, और भावात्मक शिक्षण में बांटा जा सकता है, जबकि मानसिक क्रिया की प्रकृति के अनुरूप शिक्षण को स्मृति शिक्षण, बोध शिक्षण तथा चिन्तन शिक्षण भी कहा जा सकता है। शिक्षण सदैव अधिगम में फलीभूत होता है एवं सदैव उद्देश्य अथवा पाठ्यक्रम केंद्रित रहता है।

एच.सी. मौरीसन के अनुसार- " शिक्षण अधिक परिपक्व व्यक्तित्व तथा कम परिपक्व व्यक्तित्व के बीच एक अन्तरंग सम्पर्क है, जिसे बाद वाले की शिक्षा को अग्रसर करने के लिए प्रारूपित किया जाता है।" शिक्षण एक क्रमिक, व्यवस्थित व सप्रयास प्रक्रिया है। इससे पूर्व निश्चित व अपेक्षित परिणाम सुपरिभाषित होते हैं। इसका संबंध शिक्षार्थी के व्यवहार परिवर्तन अर्थात् अधिगम से होता है। शिक्षण की प्रक्रिया शिक्षारूपी विशद प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग होती है। शिक्षण प्रक्रिया के दौरान शिक्षक व शिक्षार्थी, शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए परस्पर अन्तर्क्रिया करते हैं जिसकी

परिणति अधिगम रूपी प्रतिफल के रूप में होती है और इस पूरी प्रक्रिया को ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया कहते हैं। शिक्षण व अधिगम का घनिष्ठ व अन्तर्निहित संबंध है। शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं के फलस्वरूप ही छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन होता है। इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर ही हम छात्रों का मूल्यांक कर पाते हैं। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सफल क्रियान्वयन के बिना हम एक अच्छी व बेहतर शिक्षा व्यवस्था विकसित नहीं कर सकते हैं। आइ सी टी दो प्रमुख प्रणालियों का समुच्चय है- सूचना प्रौद्योगिकी व संचार प्रौद्योगिकी। शिक्षा में इन दोनों प्रणालियों के स्वतंत्र अस्तित्व के साथ एकता भी है। सूचना प्रौद्योगिकी में सूचना, तथ्य, ज्ञान तथा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में संरचनात्मक संबंधों के प्रेषण या प्रसार पर जोर दिया जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षण सामग्री या पाठ्यक्रम से जुड़ी है। जबकि संचार तकनीक अध्यापन की विधि या निर्देश प्रणाली से जुड़ी है।

सूचना का अर्थ एक विचार या संदेश है जो एक व्यक्ति दूसरों तक पहुँचाना चाहता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई न कोई तकनीक या उपाय हमेशा प्रयोग किया जाता रहा है। अगर हम इतिहास पर दृष्टि डालें तो बहुत पुराने समय में संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान तक पक्षियों की सहायता से पहुंचते थे। धीरे-धीरे डाक प्रणाली अस्तित्व में आई और संदेश भेजने के तरीके में परिवर्तन हुआ। फिर विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ नई तकनीक विकसित हुई और टेलीग्राफ प्रणाली ने संदेश भेजने की गति को तीव्र कर दिया। समय के परिवर्तन के साथ रेडियो की खोज ने जनसमूह तक सूचनाओं को तेजी से पहुँचाने में सहायता की। टेलीफोन, इंटरनेट, ई-मेल और अब मोबाइल तथा व्हाट्सएप, फेसबुक जैसे ऐप्लीकेशन्स, प्लेटफार्म व साफ्टवेयर ने तो संचार प्रक्रिया के क्षेत्र में क्रांति ही फैला दी। आज संचार व सूचना प्रौद्योगिकी का अध्ययन प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक हो गया है। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की क्रियाशील जानकारी के बिना शिक्षित व्यक्ति भी अपने आपको पिछड़ा हुआ समझता है। आज के संसार में सूचना व संप्रेषण तकनीक प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक अनिवार्य विषय बन गई है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता में आइ सी टी के उपकरण – शिक्षा के क्षेत्र में सूचना व संचार की क्रांति के इस प्रतिस्पर्धी दौर में अधिगम की सफलता हेतु भारत सरकार के प्रयास से शिक्षण संस्थाओं ने तकनीकों के आधार पर बहुत से उपकरणों का विकास और प्रयोग किया है। श्रव्य उपकरण, दृश्य उपकरण, श्रव्य-दृश्य साधन, एपिडाइस्कोप, फिल्म व स्लाइड प्रोजेक्टर,

एल.सी.डी., कंप्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल, इंटरनेट जैसे साधनों का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता में बड़ा योगदान है। इसके अलावा विभिन्न शैक्षिक साफ्टवेयर व व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर जैसे ऐप्लीकेशन्स से शिक्षण अधिगम के मामले में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। इन साधनों की सहायता से कक्षाओं के अलावा विद्यालय से बाहर भी अधिगम की प्रक्रिया अच्छी तरह से संचालित हो पा रही है। इंटरनेट की सहायता से शिक्षक, शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया सफलता के लिए कम समय में महत्तवपुर्ण सूचनाएं प्राप्त कर पाठ्य योजना तैयार कर सकता है। यू-ट्यूब, वीडियो क्लिप्स के माध्यम से कक्षाओं में छात्रों को वास्तविक परिस्थिति का कृत्रिम रूप से निर्मित मॉडल का अवलोकन तथा अभ्यास करा कर सीधा अनुभव प्राप्त कराया जा सकता है।

भारत सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में सूचना व संचार तकनीकों के प्रयोग हेतु कुछ अभिनव प्रयास किए गए हैं जो इस प्रकार हैं-'ई-पाठशाला' नाम के एप्लीकेशन की मदद से शिक्षकों, शिक्षार्थियों व अभिभावकों के लिए शिक्षा सामग्री को ऑनलाइन उपलब्ध कराया गया है। ई-शिक्षा, ई-बस्ता, नंद घर आदि इंटरनेट आधारित एप्लीकेशन हैं जो उन दूर-दराज के इलाकों में शिक्षा सामग्री पहुँचाएंगे, जहाँ कुशल शिक्षकों का अभाव है। ई-बस्ता के अन्तर्गत सभी स्कूली किताबों को डिजिटल करके उसे इंटरनेट पर उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है जिससे कंप्यूटर, लैपटॉप व मोबाइल फोन आदि पर आसानी, से पढ़ा जा सके। इसके लिए इन्टरनेट की उपलब्धता हेतु भी सरकार प्रयासरत है। डिजिटल साक्षरता सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। स्कूल के मानकों और मूल्यांकन के ढाँचे को पारदर्शी तरीके से लागू करने के लिए 'शाला सिद्धि' नाम का प्लेटफार्म बनाया गया है। सस्ती व सुलभ शिक्षा के लिए स्कूली किताबों को डिजिटल स्वरूप में बदलकर जन सुलभ बनाया जा रहा है। सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में आइ सी टी से संबंधित ऐसे नवीन प्रयासों को इंटरनेट के माध्यम से सरकार की वेबसाइटों का अवलोकन कर जाना व समझा जा सकता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आइ सी टी की भूमिका - शिक्षा की गुणवत्ता पाठ्यक्रम और कुशल शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर निर्भर करती है। आज सूचना व संचार प्रौद्योगिकी में आई क्रांति से मोबाइल एप्लीकेशन और इंटरनेट के माध्यम से लिखित पाठ, आवाज व वीडियो तीनों माध्यमों में शिक्षा सामग्री तैयार कर सुलभ कराई जा रही है। कुशल प्रशिक्षकों द्वारा तैयार की गई स्तरीय व आसानी से समझ में आने वाली शैक्षिक सामग्रियों को इन्टरनेट के माध्यम से सुदूर क्षेत्रों में भी उपलब्ध

कराने का प्रयास हो रहा है। इसके लिए स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग ने नेशनल रिपोजिटरी ऑफ ओपन एजुकेशन रिसोर्सेज (NROER) को विकसित किया है। यहाँ शिक्षा सामग्री जैसे मानचित्र, ऑडियो क्लिप, ऑडियो बुक्स, विडियो मल्टीमीडिया, विकीपीडिया के पृष्ठ, चार्ट, तस्वीरें व लेख उपलब्ध कराए जा रहे हैं। आइ सी टी के माध्यम से कुशल शिक्षक अपने विचारों व संसाधनों को ऑनलाइन साझा कर रहे हैं जो शिक्षार्थियों के लिए बहुमूल्य सामग्री साबित हो रही हैं। आज नोट्स, परिचर्चा, ब्लॉग, ई-बुक व वीडियो जैसी शैक्षिक सामग्रियों को डिजिटली संकलित कर उंगलियों पर उपलब्ध कराया जा रहा है, जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में रचनात्मक परिवर्तन हुए हैं और यह सब आइ सी टी की शैक्षिक तकनीकियों से ही संभव हो पाया है।

सूचना व संप्रेषण प्रौद्योगिकी सीखने की प्रभावपूर्ण विधियों तथा सिद्धांतों का ज्ञान प्रदान करती है। सीखी हुई विषय वस्तु को स्थाई करने की विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन करती है और छात्रों में सीखने के प्रति प्रेरणा जागृत करने व उनकी रुचि बनाए रखने में सहायता करती है। यह सीखने के क्षेत्र में छात्रों को उनकी गति के अनुसार ही सीखने के सिद्धांत का पालन करती है। आइ सी टी सीखने और सिखाने दोनों ही प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक विवेचन कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रचनात्मक व सार्थक बनाए रखती है। शिक्षण के नए प्रतिमान आइ सी टी की ही देन हैं जो हमें अधिगम और शिक्षण के स्वरूप को भली-भांति समझाते हैं। इस प्रकार सूचना व संचार प्रौद्योगिकी सीखने व सिखाने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली व सार्थक बनाने में शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

विज्ञान व तकनीकी के युग में जब हमारे सामने नित्य नई एवं कठिन चुनौतियाँ आ रही हों, तो ऐसे समय में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का समावेश अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। आज आइ सी टी के प्रयोग से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों में पर्याप्त अभिरुचि आसानी से उत्पन्न की जा सकती है। शिक्षार्थियों में उत्साह, सर्जनात्मकता का विकास, अभिवृत्ति निर्माण व उनके अन्दर कौशल अभिवृद्धि सुगमता से की जा सकती है। आइ सी टी से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक जीवन्त, रोचक, प्रेरक तथा सक्रिय बनाकर शिक्षण में सुधार लाया जा सकता है, जिससे शिक्षण की गुणवत्ता में वृद्धि हो सके। आइ सी टी के आधुनिक संसाधन टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाइल फोन, शैक्षिक एप्लीकेशन व साफ्टवेयर के माध्यम से सेवारत शिक्षकों व कर्मचारियों के अनवरत शिक्षा का द्वार खुल रहा है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता

व सार्थकता के लिए आइ सी टी आज अप्रतिम आवश्यकता बन गई है। ज्ञानवर्धन व ध्यान धारण क्षमता के विकास तथा शिक्षार्थियों के मध्य सूचनाओं के प्रभावी संचरण हेतु सूचना व संचार तकनीकी की महत्ता सर्वविदित है।

संदर्भ सूची –

- शर्मा, आर.ए. (2011), टीचर एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग टेक्नोलॉजी, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- सचदेवा, डॉ. एम.एस. व शर्मा, डॉ.के.के. (2010), सूचना, संचार एवं शैक्षिक तकनीकी, टी.एफ.सी. पब्लिकेशन, पटियाला।
- रुहेला, एस.पी. (2009), एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- कुलश्रेष्ठ, एस.पी. व सिंघल, अनुपमा (2013-14), शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- योजना (2016-2017), सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- www.digitalindia.gov.in
- www.mhrd.gov.in
- www.ncert.nic.in
- www.ciet.nic.in
- En.wikipedia.org

टैगोर और गांधी के शिक्षा संबंधी विचार

डॉ. कमलेश सिंह[1]

सच्ची शिक्षा वही है जिससे भौतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों में सामंजस्य और समन्वय स्थापित हो तथा जो विद्यार्थियों को चरित्रवान, कर्मठ बनाने के साथ स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा मिले। भारत में शिक्षा-दीक्षा की एक प्राचीन समृद्ध परंपरा रही है, जो आज विलुप्त-प्राय हो जाने पर भी हमारी स्मृति में सुरक्षित है। गुरूकुलों या आश्रमों में प्रवेश लेते ही विद्यार्थियों में राजा-रंक का भेद मिट जाया करता था। हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की सबसे बड़ी कमी यह है कि वह विशिष्ट वर्गवादी है। इससे पढ़े लिखे लोगों के मध्य खाई पैदा हुई है। आज छात्रों के बीच व्याप्त असंतोष, अनुशासन हीनता, उच्छृखंलता और अशिष्टता के लिए प्रचलित शिक्षा पद्धति ही उत्तरदायी है।

आज संपूर्ण शिक्षा-प्रणाली, परीक्षा-प्रणाली, मूल्यांकन पद्धति में दोष आ गए हैं जो छात्रों में बढ़ती असुरक्षा की भावना के लिए जिम्मेदार हैं, शिक्षा-प्रणाली में व्याप्त विसंगतियों के कारण ही हम संविधान के अनुच्छेद 45 में वर्णित प्रावधानों को प्राप्त करने में बुरी तरह असफल हुए हैं। आचार्य विनोबा भावे ने एक बार कहा था कि- मैं मानता हूँ कि सरकार बदलती है तो झंडा बदलता है, सो शिक्षा बदलनी चाहिए। परन्तु अनेक शिक्षा समितियों की सिफारिशों के बावजूद क्या हम शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन ला पाए हैं? वर्तमान भारतीय शिक्षा का यह दुर्भाग्य रहा है कि शिक्षा में परिवर्तन की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज साबित हुई है। आज शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन और शिक्षा-व्यवस्था को मजबूत करने की आवश्यकता है।

इस चर्चा से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। रबीन्द्रनाथ टैगोर तथा महात्मा गाँधी के शिक्षा संबंधी विचारों को आधुनिक संदर्भ में विवेचित करना होगा I इस लिए टैगोर तथा गाँधी के शिक्षा संबंधी विचारों पर चर्चा अति आवश्यक है।

टैगोर एक महान कवि, सुधारक तथा सामाजिक और राजनैतिक चिन्तक होने के अतिरिक्त एक महान शिक्षा-विद् थे। इस संबंध में उनके विचार इस प्रकार है :- "शिक्षा का महत्व सार्वभौमिक है और

[1] **7/5, ई.डब्लू.एस. कॉलोनी, अल्लापुर, प्रयागराज-211006**

इसका सीधा संबंध मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय से है। शिक्षा व्यक्ति की गरिमा की पोषक तथा मानवता के आत्मिक पक्ष की परिचायक है। शिक्षा द्वारा हम किसी व्यक्ति या समाज की उन्नति या अवनति पहचान सकते हैं। कोई देश कितना स्वतंत्र है, इसका अन्दाजा इसी बात से लग सकता है कि उस देश के लोग शिक्षित हैं कि नहीं और अगर साधारण अर्थ में शिक्षित हैं तो क्या वास्तव में वे मानव संस्कृति के वाहक के रूप में अपने को प्रस्तुत कर सकते हैं ।"

टैगोर के शिक्षा संबंधी विचारों का श्री गणेश 1892 से माना जाता है। इसी वर्ष उन्होंने 'शिक्षार हेर फेर' नामक पुस्तक लिखकर समकालीन शिक्षा-प्रणाली के दोषों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था। सन् 1901 में उन्होंने 'शान्ति निकेतन' नामक विद्यालय की स्थापना कर नई शिक्षा पद्धति की नींव डाली। 1921 में विश्व- भारती विश्वविद्यालय की नींव पड़ी और आज यह विश्वविद्यालय देश में ही नहीं विदेशों में भी प्रसिद्ध है। टैगोर ने यह महसूस किया कि विद्यालय प्रणाली (जो उस जमाने में प्रचलित थी) छात्रों को समाज और प्रकृति से पृथक् करती है तथा असामान्य स्कूली वातावरण तैयार करती है। अतः उन्होंने शांति निकेतन में एक विद्यालय खोलने का निर्णय लिया। जिसका उद्देश्य शिक्षा को एक प्रभावशाली साधन बनाना तथा आनन्दायक अनुभवों में परिणत करना था। टैगोर ने शिक्षण संस्थाओं की ग्रामीण-पद्धति पर जोर दिया जो प्राचीन काल की तपोवन शिक्षा का ही एक रूप थी।

टैगोर ने यह भी महसूस किया कि विकासशील बच्चों के लिए बनावटी शहरी वातावरण, जो मूल्यों के प्रति दुश्चिंता का परिणाम है, शत्रु के समान है। यह आध्यात्मिक उन्नति में बाधक है। इस प्रकार की खुली हवा में बच्चों को पढ़ाना प्रकृति के साथ गहरे संपर्क को बढ़ावा देना तथा शिक्षा को अनौपचारिकता प्रदान कर उसे ज्यादा आनंदायक बनाना है। सबसे बढ़कर यह शिक्षा को सस्ती बनाता है । टैगोर चाहते थे कि स्कूलों में कुछ ऐसा प्रावधान हो जिससे चरित्र का निर्माण करने में मदद मिले।

टैगोर यह भी चाहते थे कि शिक्षण की प्रक्रिया में कुछ सुधार हो तथा इसको इस ढंग से साकार किया जाए कि यह ज्यादा आनंददायक और रुचिकर हो। ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता को महसूस किया जहाँ शिक्षक छात्र साथ-साथ रह सकें तथा अपने बीच वैयक्तिक संबंध स्थापित कर सकें। टैगोर ने ब्रह्मचर्य व्यवस्था को फिर से बहाल करना चाहा ताकि छात्रों को अनुशासन की शिक्षा दी जा सके और शिक्षा के लिए पुष्ट आधार तैयार किया जाए। टैगोर की योजना में अनुशासन और आवासीय

प्रणाली एक दूसरे के पूरक हैं । उन्होंने यह अनुभव किया कि नैतिक शिक्षा को तभी आत्मसात् किया जा सकता है जब साथ रह रहे शिक्षकों का भी नैतिक चरित्र उच्च हो।

उन्होंने यह भी अनुभव किया कि जीवन के प्रांरभिक काल में छात्रों को जीवन की साधारण परेशानियों के बारे में नहीं बताया जाना चाहिए। क्योंकि, निम्न चरित्र वाले व्यक्तियों के क्रिया-कलापों से उनके मस्तिष्क पर अवांछित प्रभाव पड़ सकता है। उन्होंने छात्रों को ऐसी शिक्षा देने पर जोर दिया जो उनमें आंतरिक बल उत्पन्न करे।

टैगोर ने शिक्षण संस्थाओं को चलाने में छात्रों की सक्रिय भागीदारी का समर्थन किया। यह सक्रिय भागीदारी छात्रों की अधिशेष ऊर्जा की निकासी एवं उनके चरित्र के बहुमुखी विकास में सहायक हो सकती है।उन्होंने परिसर में एक स्वस्थ और सुन्दर वातावरण का निर्माण करने में योगदान देकर छात्रोंकी सक्रिय भागीदारी का महत्व रेखांकित किया। छात्रावास चलाने की जिम्मेदारी छात्रों में अपनेपन का भाव और जिम्मेदारी का अहसास कराती है तथा संस्थान की सेवा के लिए सहकारी प्रयास अपनाना भी सिखाती है। विद्यालय शिक्षा के इन आदर्शों को साकार करने के लिए टैगोर ने शांति निकेतन में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की। यही शांति निकेतन कालांतर में विश्वविद्यालय बन गया।

टैगोर के शिक्षा संबंधी मन्तव्यों को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है-

1. मनुष्य की संपूर्ण प्रकृति को सुस्पष्ट बनाना।

2. छात्रों को अपने आपको अभिव्यक्त करने में समर्थ बनाना।

टैगोर ने सोचा कि इसे एक ऐसा शिक्षा प्रणाली द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जहाँ छात्रों को भावों, विचारों को ध्वनि तथा शरीर के क्रिया-कलापों द्वारा व्यक्त करने का अवसर मिलता हो। जैसे- चित्रकला, संगीत और नाट्य ।

ललित कला का प्रशिक्षण न सिर्फ भावात्मक क्षमता को विकसित करता है बल्कि छात्रों को शब्दों के अतिरिक्त अन्य माध्यमों द्वारा भी अभिव्यक्त के अवसर प्रदान करता है।

शिक्षा की सार्थकता सिर्फ पाथ्यों को एकत्र करने मात्र में नहीं बल्कि मनुष्य को समझने तथा खुद को दूसरे मनुष्य के समझने योग्य बना है। टैगोर ने ललित कला और संगीत को राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा स्रोत माना।

3. छात्रों को इस लायक बना सकें जो खुद ज्ञान की उत्पत्ति कर सकें।

4. स्थानीय लोगों की सामाजिक आर्थिक समस्याओं के लिए ज्ञान का प्रयोग करना।

इसके लिए उन्होंने कहा कि शिक्षण संस्थाओं को स्थानीय लोगों की सामाजिक, आर्थिक प्रगति से स्वाभाविक रूप से जुड़ा होना चाहिए।

टैगोर इन सब विचारों को व्यावहारिक रूप देना आसान कार्य नहीं है किन्तु उनके आदर्शों को शिक्षा के क्षेत्र में लाना महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार शिक्षा का महत्व सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के अलावा और कुछ नहीं हो सकता और जो वास्तव में सांस्कृतिक मूल्य हैं, शाश्वत हैं उनको राष्ट्र की सीमाओं में कैद करके नहीं रखा जा सकता। स्पष्ट है कि उनकी शिक्षा संबंधी मान्यताएं उनकी विशद आस्थाओं पर आधारित हैं।

शिक्षा के संबंध में महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण बुनियादी रूप से राष्ट्रीय था। वह शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीयता के प्रमुख पक्षधर थे। उनके विचार में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का उद्देश्य ऐसे शिक्षित वर्ग को तैयार करना था जो केवल अंग्रेजों की सेवा कर सकें। गाँधीजी के अनुसार इस शिक्षा पद्धति ने लगभग उन सभी बातों की उपेक्षा की जो भारत को अपने शिक्षा क्षेत्र के अनुभव से प्राप्त हुई थी। जैसे पर्यावरण से बच्चों की समरूपता, विद्यार्थी और शिक्षक का संबंध, जनता के साथ मेल-जोल और भारतीय संस्कृति से प्रेम। यह एक विडम्बना है कि गाँधीजी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से जिन सामाजिक और सांस्कृतिक खतरों की पूर्व कल्पना की थी कमो-वेश वही खतरे हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति से उत्पन्न हो गए हैं।

गाँधीजी व्यक्ति को केवल साक्षर कर देने में ही शिक्षा की सार्थकता नहीं मानते थे बल्कि वह एक ऐसी शिक्षा पद्धति के पक्ष में थे जो व्यक्ति में बुद्धि और आत्मा का विकास कर सके। उसमें कथनी और करनी एक होने की प्रेरणा जगा सके। उसे आत्मनिर्भर भी बना सके।

गाँधीजी प्रारम्भिक शिक्षा को बुनियादी शिक्षा मानते हुए उसे एक सहज और स्वाभाविक वातावरण का विस्तार मानते थे। वह बच्चों की बुनियादी अच्छाई में विश्वास करते थे और यह भी मानते थे कि शिक्षा से बच्चों की संस्कृति का सहज और उत्तरोत्तर विकास ही होना चाहिए। गाँधीजी की प्रारम्भिक शिक्षा खेल के वातावरण में शुरू होती है, और वह बाल केंद्रित होती है।

बच्चों की नि:शुल्क शिक्षा के बारे में भी गाँधीजी के विचार नितान्त मौलिक हैं। वह मानते थे कि बुनियादी शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होनी चाहिए। बच्चों को अपनी शिक्षा का पूरा या थोड़ा खर्च उठाने के लिए काम करना चाहिए। गाँधीजी ने कहा है "मैं कल्पना कर सकता हूँ कि स्कूल अपना खर्च खुद पूरा करें। अगर अपने चारों ओर के वातावरण के अनुसार बच्चों को व्यावासायिक शिक्षा दी जाए तो वे स्कूल में अपने ऊपर होने वाले खर्च को पूरा कर सकेंगे। साथ ही आगे चलकर अपनी जिन्दगी में इसका उपयोग भी कर सकेगें।"

गाँधीजी का विचार था कि बुनियादी शिक्षा से जुड़ा व्यावसायिक अनुभव विद्यार्थी शिक्षा का साधन और जीविका का स्रोत दोनों बन सकता है। वे मानते थे कि स्वतंत्र रहने के लिए दूसरों की दया या सहायता के बजाय प्रत्येक व्यकति व समाज को आत्म निर्भर होना चाहिए।

गाँधीजी का विचार था कि जब तक सभी शिक्षा संस्थानों में सभी स्तरों पर कुछ न कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण शुरू नहीं किया जाता तब तक 'श्रम व रोटी ' की अवधारणा को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। वस्तुत: बच्चों की आरम्भिक शिक्षा के बारे में गाँधीजी ने बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव दिया था। उन्होंने कहा था कि मैं जो रूप रेखा बना रहा हूँ उससे साहित्य का प्रशिक्षण अलग नहीं है, इसमें व्यावसयिक प्रशिक्षण है जो स्कूल के अधिकांश समय में दिया जाएगा। साथ ही बच्चों को मौखिक रूप से आरंभिक इतिहास, भूगोल, गणित, शिष्टाचार भी सिखाया जाएगा। जब वे इतना सीख जाएंगे तब वे अपने घर में भी इस शिक्षा का उपयोग कर सकेंगे और मौन क्रांतिकारी बन जाएंगे।

प्रचलित शिक्षा में शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा की गई थी। केवल मस्तिष्क को शिक्षित करने का प्रयत्न था, गाँधीजी इससे असहमत थे, उनके मतानुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें केवल बौद्धिक विकास हो। यदि पाठ्यक्रम में किसी क्राफ्ट को केंद्रीय स्थान दिया जाए तो प्रचलित शिक्षा के दोष दूर हो सकते हैं। अत: उन्होंने क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम की नींव बनाई। क्राफ्ट

कोई भी हो सकता है। भारतीय समाज की दृष्टि से कृषि, कताई-बुनाई, गत्ते का कार्य, लकड़ी का काम, धातु का काम आदि में से क्राफ्ट को चुना जा सकता है। पाठ्यक्रम में मातृभाषा को प्रमुख स्थान देना चाहिए। गणित, सामाजिक अध्ययन, ड्राइंग, तथा संगीत भी पाठ्यक्रम में अवश्य होने चाहिए। सामान्य विज्ञान को भी रखा गया है। सामान्य विज्ञान के साथ-साथ नक्षत्र ज्ञान के सामान्य तत्व भी रखे गए। कहने का आशय यह है कि गाँधीजी का पाठ्यक्रम भी बेसिक एवं माध्यमिक स्तर तक सीमित है। गाँधीजी शिक्षण प्रक्रिया में एक ऐसा सुधार चाहते थे जिससे छात्रों एवं अध्यापकों के बीच खाई कम हो। उनके मुख्य परिवर्तन इस प्रकार थे –

1. शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो,
2. शिक्षण पुस्तकीय न होकर क्राफ्ट केंद्रित हो
3. वह शिल्प के द्वारा बालकों को गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग के महत्व से परिचित कराना चाहते थे।

जिस प्रकार गाँधीजी ने राजनीति, सामाजिक क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की। यह बात अलग है कि उनके सामाजिक, राजनैतिक प्रभामंडल में शिक्षा का क्षेत्र गौण हो जाता है। उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य के रूप में वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों का प्रतिपादन किया है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं न कि विरोधी। वह बालकों में नैतिक गुणों का विकास करना चाहते थे। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं है। बच्चे का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, विकास ही शिक्षा है। जीवन में श्रम का अत्यधिक महत्व है। शिक्षा शिल्प केंद्रित होनी चाहिए। विद्यालय में इस प्रकार का वातावरण होना चाहिए कि बालक प्रयोग कर सकें। उपर्युक्त सभी विचार प्रगतिशील हैं। इनमें मनोवैज्ञानिकता और दर्शन सम्मतता भी है। गाँधीजी ग्रामीण भारत की नब्ज पहचान गए थे। भारत गाँवों में बसा है और किसी भी शिक्षा पद्धति की सफलता ग्रामीण शिक्षा के परिणामों पर ही निर्भर है। भारतीय समाज के लिए उन्होंने बेसिक शिक्षा को सर्वोत्तम शिक्षा कहा है किन्तु बेसिक शिक्षा के महान स्तम्भ डॉ. जाकिर हुसेन के अनुसार जिस प्रकार से राज्यों में बेसिक शिक्षा व्यवहार में लाई गई है वह प्रवंचना मात्र रही है। गाँधीजी के शिक्षा संबंधी विचार कोरी कल्पना मात्र नहीं हैं और उनके विचार शिक्षा संबंधी प्रयोगों पर आधारित हैं। गाँधीजी जब अफ्रीका में थे तब सत्याग्रह आंदोलन चलाने के लिए उन्होंने जोहान्सबर्ग से कुछ मील दूर पर एक

फार्म किराए पर ले लिया था। इस टालस्टॉय फार्म में सत्याग्रही सपरिवार रहते थे जिसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि सभी थे। इन सत्याग्रहियों के बच्चों को पढ़ाने के लिए एक स्कूल खोला गया। गाँधीजी स्वंय इन बच्चों को पढ़ाते थे। शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाती थी। पुस्तकों का सहारा बहुत कम लिया जाता था। इससे स्पष्ट है कि गाँधीजी के शिक्षा संबंधी विचार उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित हैं। अक्टूबर 1937 में वर्धा में नवीन शिक्षा पर विचार शिक्षा शास्त्रियों का एक 'अखिल भारतीय सम्मेलन' आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के सभापति गाँधीजी थे। सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव रखे गए जो बेसिक शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत हैं-

1. प्रथम सात वर्ष तक देश के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से नि:शुल्क शिक्षा दी जाए,
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए,
3. बच्चे की संपूर्ण शिक्षा का केंद्र कोई शिल्प (हाथ का काम) हो,
4. सम्मेलन यह आशा करता है कि शिक्षा की इस प्रणाली से शनैः शनैः शिक्षकों का वेतन भी निकल आएगा।

इन्हीं आधार-भूत नियमों पर भारतीय शिक्षा की बुनियाद खड़ी हुई है जिसे गाँधीजी 'नई तालीम' या 'बुनियादी शिक्षा ' कहते थे। इस शिक्षा को और भी कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे- वर्धा योजना, आधारभूत शिक्षा, नेशनल एजुकेशन, मौलिक शिक्षा, बेसिक एजुकेशन।

वास्तव में गाँधीजी के शिक्षा संबंधी विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे।

संदर्भ-सूची-

1. 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोष एवं निराकरण' – राधा कृष्ण मिश्र, पृ -132
2. वही, पृ.-137
3. वही, पृ.-138
4. वही, पृ.-139
5. 'गाँधी, नेहरू, टैगोर और अम्बेडकर' – डॉ. एम.सी. जोशी पृ-93,94
6. 'आधुनिक भारतीय इतिहास एवं संस्कृति –विजयराय पृ.-135'
7. 'वही, पृ.-136

8. 'गाँधी, नेहरू, टैगोर और अम्बेडकर' – डॉ. एम.सी. जोशी पृ-96

9. 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन – ए. के. महाजन पृ.-4

10. 'वही, पृ.-4

11. 'वही, पृ.-5

12. 'मोहनदास करमचन्द गाँधी' –डॉ. अरूण कुमार मिश्र, पृ.-39

13. 'वही, पृ.-40

14. 'वही, पृ.-41

15. 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन – ए. के. महाजन से उद्धृत, पृ.-5

समावेशी शिक्षा:वर्तमान समय की आवश्यकता

डॉ विभा दुबे[1]
डॉ. मनीष कुमार दुबे[2]

समावेशी शिक्षा अथवा '**सब के लिए सामान्य स्कूल में शिक्षा**' का आशय विश्वासों का एक ऐसा प्रतिमान है जो एक सार्वभौमिक समाज के निर्माण एवं विकास का उद्देश्य रखता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए जगह हो।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार 'समावेशी शिक्षा का अर्थ है कि सभी सीखने वाले, बालक हों अथवा युवा, अक्षम हो या सक्षम, सामान्य विद्यालय-पूर्व एवं सामुदायिक शिक्षा केंद्रों में उपयुक्त सहयोगी सेवाओं के साथ आपस में मिल जुल कर सीखने में समर्थ हों। इसमें स्पष्ट किया गया है- मुख्य धारा के विद्यालयों में विशिष्ट आवश्यकताओं के बच्चे का अपने अन्य सहपाठियों के साथ शिक्षा ग्रहण करने के अवसर की उपलब्धता।

यूनेस्को ने अपने अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक सम्मेलन, जेनेवा (2008) में स्पष्ट किया कि "समावेशी शिक्षा अधिगमकर्ताओं के गुणात्मक शिक्षा के मौलिक अधिकार पर आधारित है जो आधारभूत शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर जीवन को समृद्ध बनाती है। अतिसंवेदनशील एवं सीमांत समूहों को दृष्टिगत रखते हुए यह प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता का पूर्ण विकास करती है। समावेशी गुणात्मक शिक्षा का परम ध्येय सभी प्रकार के विभेदीकरण को समाप्त करके सामाजिक संगठन का पोषण करना है।"

समावेशी शिक्षा या एकीकरण के सिद्धांत की ऐतिहासक जड़ें कनाडा और अमेरिका से जुड़ी हैं। प्राचीन शिक्षा पद्धति की जगह आधुनिक समय में नई शिक्षा नीति का प्रयोग होने लगा है। समावेशी शिक्षा विशेष विद्यालय या कक्षा को स्वीकार नहीं करती। अशक्त बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग करना अब मान्य नहीं है। दिव्यांग बच्चों को भी सामान्य बच्चों की तरह ही शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है।

[1] **सहायक आचार्य, दयानंद महिला प्रशिक्षण कॉलेज, कानपुर**

[2] **उपाचार्य, एस.एस.डी.पी.जी. कॉलेज, कानपुर**

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता

समावेशी शिक्षा समाज की एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गई है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह विविध प्रकार के विभेदन एवं असमानताओं के कारण हुई रिक्तियों को भरने में सहायक है। समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है:

1. **शिक्षा की सर्वव्यापकता:** शिक्षा - विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा को तभी सार्वभौमिक बनाया जा सकता है जब प्रत्येक बालक के गुणों, स्तर तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा का विस्तार किया जाए।
2. **संवैधानिक उत्तरदायित्व का निर्वहन** - भारत एक प्रजातांत्रिक गणराज्य है । यहां शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है, जहां जाति, रंग-भेद, धर्म, लिंग भेद के लिए कोई स्थान नहीं है।
3. **शिक्षा का स्तर बढ़ाना** - समवेशी शिक्षा न केवल 'सबके लिए शिक्षा' बल्कि' सबके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर आधारित है। इस शिक्षा प्रणाली में सभी बच्चों की शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के मूलभूत सिद्धांत पर पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों को लचीला बनाने पर विशेष बल दिया गया है। स्पष्ट है कि ऐसी शिक्षा प्रणाली से गुणात्मक शिक्षा का विकास होगा।
4. **सामाजिक समानता** - सामाजिक समानता का पहला पाठ स्कूलों में पढ़ाया जाता है। समावेशी शिक्षा इसके लिए यह अत्यंत उपयुक्त स्थल है।
5. **समाज के विकास एवं सशक्तिकरण के लिए** - समाज का विकास एवं सशक्तिकरण उसके सुयोग्य एवं शिक्षित नागरिकों पर निर्भर करता है। समावेशी शिक्षा इस दिशा में एक दूरदर्शितापूर्ण उपयोगी प्रयास है।

साधारणत: छात्र एक कक्षा में अपनी आयु के हिसाब से रखे जाते हैं चाहे उनका अकादमिक स्तर ऊँचा या नीचा ही क्यों न हो। शिक्षक सामान्य और अशक्तया दिव्यांग सभी बच्चों से एक जैसा बर्ताव करते हैं। दिव्यांग बच्चों की मित्रता अक्सर सामान्य बच्चों के साथ करवाई जाती है औंर यह

दिखाया जाता है कि एक समूह दूसरे समूह से श्रेष्ठ नहीं है। ऐसे बर्ताव से सहयोग की भावना बढ़ती है। शिक्षक कक्षा में सहयोग की भावना बढ़ाने के लिए कुछ तरीकों का उपयोग करते हैं:

- समुदाय भावना को बढ़ाने के लिए खेलों का आयोजन,
- विद्यार्थियों को समस्या के समाधान में शामिल करना,
- किताबों और गीतों का आदान-प्रदान,
- कक्षा में विचारों का आदान-प्रदान,
- छात्रों में समुदाय- भावना बढ़ाने के लिए कार्यक्रम तैयार करना,
- छात्रों को शिक्षक की भूमिका निभाने का अवसर ना,
- विभिन्न क्रिया-कलापों के लिए छात्रों का दल बनाना,
- प्रिय वातावरण का निर्माण करना,
- बच्चों के लिए लक्ष्य-निर्धारण,
- अभिभावकों का सहयोग लेना एवं
- विशेष प्रशिक्षित शिक्षकों की सेवा लेना।

समावेशी शिक्षा सही मायनों में शिक्षा का अधिकार जैसे शब्दों का वास्तविक रूप है जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों को एक समतामूलक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना। समावेशी शिक्षा समाज के सभी बालकों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने का समर्थन करती है ।

समावेशी शिक्षा हेतु कार्यनीतियाँ -

समावेशी शिक्षा हेतु कुछ कार्यनीतियाँ इस प्रकार हो सकती हैं-

1. समावेशी विद्यालय वातावरण :- बालकों की शिक्षा चाहे वह किसी भी स्तर की हो, उसमें विद्यालय के वातावरण का बहुत योगदान होता है। विद्यालय का वातावरण स्वयं भी कुछ शिक्षा बालकों को दे देता है। समावेशी शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विदयालय का वातावरण सुखद और अनुकुल हो। इसके अतिरिक्त विद्यालय में विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शैक्षिक एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक शैक्षिक सामग्री, उपकरणों,संसाधनों, भवन आदि का समुचित प्रबंध आवश्यक है। इनके बिना विद्यालय में समावेशी पर्यावरण बनाने में कठिनाई हो सकती है ।

2. सबके लिए विद्यालयः- समावेशी शिक्षा की मूल भावना है एक ऐसा विद्यालय जहाँ सभी बालक एक साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं परन्तु आज भी इस तरह की बातें देखने और सुनने में आती रहती हैं कि किसी बालक को उसकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं के कारण विद्यालय में प्रवेश देने से मना कर दिया गया या किसी विशेष विद्यालय में उसके दाखिले के लिए सुझाव देकर लौटा दिया गया। समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों को सभी बालकों तक पहुंचाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में दाखिले की नीति में परिवर्तन किया जाए। हालाँकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 इस संन्दर्भ में एक प्रभावी कदम कहा जा सकता है परन्तु लक्ष्य के अनुरूप सफलता हासिल नहीं हो पा रही है।

3. बालकों के अनुरूप पाठ्यक्रम :- बालकों को शिक्षित करने का सबसे असरदार तरीका है कि उन्हें खेलने के तरीकों तथा गतिविधियों के माध्यम से सिखाने का प्रयास किया जाए। समावेशी शिक्षा व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि विद्यालय पाठ्क्रम, बालकों की अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों, आकांक्षाओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में विविधता तथा पर्याप्त लचीलापन होना चाहिए ताकि उसे प्रत्येक बालक की क्षमताओं, आवश्यकताओं, तथा रुचि के अनुसार अनुकूल बनाया जा सके। बालकों में विभिन्न योग्यताओं व क्षमताओं का विकास हो सके, उसे विद्यालय से बाहर सामाजिक जीवन से जो जोड़ा जा सके,बालकों को सामाजिक रूप से एक सफल नागरिक बनाने में योगदान दे सके।

4. मार्गदर्शन व निर्देशन की व्यवस्थाः

समावेशी शिक्षा व्यवस्था के अंर्तगत नए विद्यालय में आरम्भ में नए परिवेश में अपने आपको समायोजित करने में कुछ असुविधा हो सकती है । जैसे आरम्भ में कक्षा के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई होना, दोस्तों का अभाव, नामकरण आदि के करण बालक के आत्मविश्वास में कमी होना। इसके अतिरिक्त किशोरावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक,सामाजिक परिवर्तनों के कठिनाई के दौर में मार्गदर्शन एवं निर्देशन से बालक को इस संक्रमण काल में काफी सहायता मिलती है। उचित मार्गदर्शन व निर्देशन से बालक और उसके माता-पिता दोनों ही इन परिवर्तनों के लिए मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से तैयार किए जा सकते हैं।

5. सहायक तकनीकी उपकरणों का उपयोगः-

आज के युग में तकनीकी उपायों से मानव जीवन काफी हद तक सुगम हो गया है । मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर आज तकनीक का प्रभाव देखा जा सकता है। समावेशी शिक्षा की सफलता और उसके प्रचार प्रसार के लिए शिक्षा व्यवस्था में तकनीक का उपयोग किए जाने की आवश्यकता है। कार्यक्रमों, कंप्यूटर, मोबाइल फोन व शैक्षिक तकनीकी उपकरणों का उपयोग करके बालकों की शिक्षा को सरल, सुगम, रोचक व मनोरंजन, बनाने में प्रभावशाली भूमिका निभाई जा सकती है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि समावेशी शिक्षा वातावरण हेतु बालकों, अभिभावकों तथा शिक्षकों को इसकी नवीन तकनीकी विधियों से परिचित करवाया जाए तथा उनके प्रयोग पर बल दिया जाए।

समुदाय की सक्रिय भागीदारी -विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों की शिक्षा की पूरी बुनियाद प्रतिभागिता निर्मित करने पर टिकी हुई है। एक अकेले व्यक्ति के प्रयासों से उन्हें शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा हेतु यह आवश्यक है कि विद्यालयों को सामुदायिक जीवन का केंद्र बनाया जाए जिससे बालक की सामुदायिक जीवन की भावना को बल मिले क्योंकि उसे कुछ निश्चित समय के पश्चात उसी समुदाय के एक सक्रिय सदस्य के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समय-समय पर विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम वाद-विवाद, खेलकूद, देशाटन, जैसे मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए और उनमें बालकों के अभिभावकों और समाज के अन्य सम्मानित व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाना चाहिए जिससे उन्हें इन बालकों के एक समावेशी वातावरण में शिक्षा ग्रहण करने के संबध में फैली भ्रांतियों को दूर कर बालकों की योग्यता व प्रतिभा से परिचित करवाया जा सके ।

6. शिक्षकों का पर्याप्त प्रशिक्षण :-

शिक्षक को ही शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति तथा शैक्षिक संस्थानों की आधारशिला माना गया है। यद्यपि यह बात सत्य भी है कि विद्यालय भवन, पाठ्यक्रम, पाठ्य सहगामी क्रियाएं, सहायक शिक्षण सामग्री, आदि सभी वस्तुएं व क्रिया-कलापों का भी शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान होता है, परन्तु शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सबसे अधिक प्रभावित करता है ।

समावेशी शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षकों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है क्योंकि समावेशी शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक केवल शिक्षण कार्य तक ही अपने आपको सीमित नहीं रखता, अपितु विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों का कक्षा में उचित ढंग से समायोजन करना, उनके लिए विशिष्ट प्रकार की शैक्षिक सामग्री का निर्माण करना, विद्यालय के अन्य कर्मचारियों, अध्यापकों तथा विशिष्ट अध्यापक से बालक की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहयोग व उचित व्यवहार करना, बालक को मिलने वाली आर्थिक सुविधाओं का वितरण आदि कार्य भी करने पड़ते हैं। इसलिए अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्णतः निपुण हो, उसे विशिष्ट सामग्री की जानकारी हो, बालकों के प्रति स्वस्थ व सकारात्मक अभिवृत्तियाँ रखता हो, उनके मनोविज्ञान को समझता हो ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा नीति को संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की ज़रूरत है। जीवन के हर क्षेत्र में वह चाहे स्कूल में हो या बाहर, सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की ज़रूरत है। स्कूलों को ऐसे केंद्र बनाए जाने की आवश्यकता है जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चों, मुख्य रूप से शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र का अधिक लाभ मिल सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

एजुकेशन फॉर ऑलः टूवर्ड्स क्वालिटी विथ इक्विटी (2016). एम.एच.आर.डी. नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन. (http://www.nuepa.org)

जोशी, प्रमोद (मार्च 2017). कुरुक्षेत्रः समावेशी शिक्षा की दिशा में प्रयास. मेइजर, सी. जे. डब्ल्यू (2001). इंक्लूसिव एजुकेशन एंड इफेक्टिव क्लासरूम प्रेक्टिसेस. यूरोपियन एजेंसी फॉर डेवलपमेंट इन स्पेशल नीड्स एजुकेशन. (Webः http://www.european- agency.org).

शिक्षा और संस्कृति : एक दार्शनिक उपादेयता

डॉ. अमिता पाण्डेय[1]

'शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस शिक्षा से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दे।'- **महात्मा गाँधी**

शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन मनुष्य के भीतर निहित सभी प्रकार की क्षमताओं का सम्यक् विकास है। ये क्षमताएँ हैं शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। इन सब क्षमताओं के मध्य आज की शिक्षा केवल मानसिक शिक्षा के ऊपर बल देती है । शिक्षा एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया है जिसका निर्मल प्रवाह जीवनदायिनी धारा है। जिस समाज और सभ्यता में शिक्षा के इस महत्व को समझ लिया जाता है उसकी प्रगति की राह के प्रत्येक अवरोध दूर हो जाते हैं। ज्ञान और कौशल से युक्त उस समाज के लोग आगे बढ़ते रहते हैं। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मनुष्य पुनर्जन्म लेता है, पूर्णता की ओर अग्रसर होता है और अपने चतुर्दिक् वातावरण को भी परिष्कृत करता है, विश्व को रहने योग्य बनाता है। शिक्षा का यह कार्य कुछ अभिकरणों के माध्यम से संपन्न होता है। परिवार प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण अभिकरण है; समाज और राज्य भी शक्तिशाली अभिकरण हैं। आज शिक्षा पद्धति का तात्पर्य स्कूली शिक्षा पद्धति से ही लगाया जाता है जिसमें प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालय तक आ जाते हैं।

क्या विद्यालय यह कार्य करने में समर्थ हैं? क्या विद्यालय शिक्षा प्रदान करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए इवान इलिच जैसे पश्चिमी विचारक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विद्यालय न केवल असमर्थ हैं वरन् वे व्यक्ति के समक्ष शिक्षित बनने में बाधा भी उपस्थित करते हैं। विद्यालयों ने आज समूचे समाज को अपने जाल में फँसा लिया है और हम स्कूल या विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लेने वहाँ पर कुछ समय व्यतीत करने, परीक्षा देने और उपाधि प्राप्त करने को ही शिक्षा समझने लगे हैं; जबकि शिक्षा का इनसे कोई लेना देना नहीं है। शिक्षा का तात्पर्य डिग्री लेना नहीं है। इसका तात्पर्य प्रवेश परीक्षा या कक्षा में उपस्थिति भी नहीं है। शिक्षा केवल साक्षरता भी नहीं है। यह तो व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रकाशन है, समाज की समूचे आकांक्षाओं की सीमा है, व्यक्ति की पूर्णता की

[1] **विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र, आई.एस.पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

अभिव्यक्ति है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में शिक्षा मानव की अन्तर्निहित पूर्णता का प्रकाशन है। वस्तुतः शिक्षा द्वारा मानव-मस्तिष्क का मंथन किया जाता है।

भारत में अगर शिक्षा का इतिहास देखें तो प्राचीन समय में धार्मिक शिक्षा का ऐसा ताना-बाना नजर आता है जिसके चलते भारत विश्व पटल पर प्रतिष्ठित था। यहाँ के तक्षशिला (अब पाकिस्तान में) और नालंदा जैसे शिक्षा केंद्रों का संपूर्ण विश्व में सम्मान था। शिक्षा एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। यह जीवन पर्यंत अबाध गति से चलती रहती है। जीवन में सफलता प्राप्त करने और कुछ अलग करने के लिए शिक्षा सभी के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधन है। यह हमें जीवन के कठिन समय में चुनौतियों से सामना करने में सहायता करती है। पूरी शिक्षण प्रक्रिया के दौरान प्राप्त ज्ञान हम सभी को अपने जीवन के प्रति आत्मनिर्भर बनाता है। यह जीवन में बेहतर संभावनाओं को प्राप्त करने के अवसरों के लिए विभिन्न दरवाजे खोलती है जिससे कैरियर में उन्नति को बढ़ावा मिलता है।

अब प्रश्न है शिक्षा एवं ज्ञान का उद्देश्य क्या है? शिक्षा किस प्रकार की विद्या से दी जानी चाहिए ताकि मानवता के विकास के साथ-साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास हो सके; यह केवल वर्तमान की ही नहीं वरन् प्राचीन काल की भी जिज्ञासा रही है। विश्व के दार्शनिक-चिंतक इस पर बराबर तर्क-वितर्क करते रहे जो आज भी जारी है। आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व यूनान के एथेन्स में कुछ चिन्तकों की राय थी कि शिक्षा कुछ ऐसी हो कि जिससे युवा वर्ग अनेक प्रकार की सामाजिक एवं सार्वजनिक क्षेत्रों की सेवाओं में सफलता प्राप्त कर सके। प्रख्यात दार्शनिक सुकरात का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना तथा नैतिक गुणों में विकासमूलक होना चाहिए न कि मात्र नौकरी प्राप्त करना। इससे अलग प्लेटो, अरस्तू तथा यूनान के अन्य दार्शनिकों का विचार था कि शिक्षा को कौशल या हुनर के साथ जोड़ने के बजाय इसे मौलिक विज्ञान, दर्शन तथा नैतिकता से जोड़ा जाना चाहिए। फिलहाल वर्तमान युग की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा को सर्वांगीण विकास की कड़ी से जोड़ा जाना ही उचित प्रतीत होता है जिसमें कि ज्ञान विज्ञान दर्शन, नैतिकता इत्यादि के साथ-साथ सामाजिक, राष्ट्रीय विकास आदि भी समाहित हों।

उच्च शिक्षा न केवल ज्ञान-विज्ञान की कड़ियों को जोड़कर प्रकृति के तमाम गुह्यतम मानवीय सरोकारों के रहस्यों को उजागर करने में सफल हुई है वरन् सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक विद्याओं के विकास से मानव सभ्यता को भी चरम लक्ष्य तक ले जाने में सफल रही है लेकिन ज्ञान-विज्ञान की कोई सीमा नहीं है। निरंतारता प्रगति साधक है। निरंतर प्रवहमान रहना ही जीवन है। ये सब

कुछ गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा के बिना संभव नहीं है। यही कारण है कि संसार के सभी देश शिक्षा के उन्नयन के प्रति न केवल दृठ संकल्पित हैं वरन् एक दूसरे से कहीं अधिक दूर निकल जाने को आतुर एवं प्रयत्नशील हैं। विज्ञान एवं अधुनातन तकनीकी शिक्षा ने उन्हें प्रगति की ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया है। यहाँ तक कि विश्व के प्रगतिशील देशों की पहुँच असंभव नही तो कठिन अवश्य है। लेकिन यह भी सत्य है कि आज शिक्षा की उपादेयता एवं अनिवार्यता के प्रति शिथिलता बरतनेवाले देश निरंतर पीछे छूटते जागे। विशेषकर विकासशील उच्च शिक्षा में न केवल देश में नामांकन प्रतिशतता बढ़ाने की चुनौती है वरन् गलाकाट प्रतिस्पर्धा के बीच पूरे संसार के विकसित देशों की कतार में शामिल होने की भी चुनौती है। इसी क्रम में अब भारत सरकार की सूचना संचार तकनीकी पर आधारित शिक्षा व्यवस्था को गुणवत्ता प्रदान कर पूरा देश शिक्षा के विकास के प्रति संकल्पित है।

शिक्षा संस्कृति की पूरक एवं उद्‌बोधक है। एक अच्छे तथा प्रगतिशील मानव समाज की आधारशिला अच्छी शिक्षा ही है। शिक्षा सांस्कृतिक परम्पराओं की पोषक है तथा यह कुरीतियों के निराकरण में भी अत्यधिक सहायक हो सकती है। शिक्षा में किसी संस्कृति को जीवंत प्रक्रिया द्‌वारा ऐतिहासिक रूप से परंपरागत बनाने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दायित्व विद्‌यमान है। शिक्षा का यह व्यापक स्वरूप ही यहाँ हमारा मन्तव्य है। इस प्रकार संस्कृति और शिक्षा एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्‌ध है। संस्कृति बहुत कुछ दृढ़ता से प्रभावित करती है कि एक व्यक्ति शिक्षा की ओर कैसे पहुँचता है और समाज की संस्कृति यह निर्धारित करती है कि यह समाज अपने नागरिकों को कैसे शिक्षित करता है क्योंकि संस्कृति में मूल्य और मान्यताएँ हैं जो प्रथाओं को प्रभावित करती हैं। शिक्षा बौद्‌धिक विकास के साथ-साथ अन्तश्चेतना के विकास का भी सशक्त माध्यम है। ऐसी शिक्षा ही जीवन को चरितार्थ करती है। माना जाता है कि शिक्षा संपूर्ण जीवन व्यवस्था का आधार है। शिक्षा के बिना न व्यवस्था तंत्र का निर्माण संभव है और न ही व्यक्तिव का विकास यह सब संस्कृति के अवगाहन से ही संभव है। अब प्रश्न है कि संस्कृति क्या है। जिसका अर्थ है अच्छी कृति अर्थात् संस्कृति वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता के परिचायक उदात्त तत्त्वों का नाम है। संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ न होकर समष्टिनिष्ठ होती है। संस्कृति वैचारिक, मानसिक एवं भावात्मक उपलब्धियों का समुचय होती है। इसमें धर्म, दर्शन, कला, संगीत इत्यादि का समावेश होता है। इसी की अपरिहार्यता की ओर संकेत करते हुए भर्तृहरि ने लिखा है कि इसके बिना मनुष्य पशु ही होता है "साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः

पुच्छविषाणहीनः ।।" स्पष्ट है संस्कृति से ही जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण विकसित और व्यंजित होता है।

उपनिषद् के शब्दों में कहें तो संस्कृति में जीवन के दो आयाम श्रेय एवं प्रेय का सामंजस्य होता है। इसी आधार पर आध्यात्मिक वैचारिक एवं मानसिक विकास होता है और इसी के आधार पर जीवन मूल्यों एवं संस्कारों का निर्धारण होता है और यही जीवन के समग्र उत्थान के सूचक होते हैं। शिक्षा तंत्र में इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों का शिक्षण-प्रशिक्षण होता है। वर्तमान में शिक्षा-व्यवस्था संस्कृति की अपेक्षा सभ्यतानिष्ठ अधिक है। तात्पर्य है कि वर्तमान शिक्षा विचार प्रधान, चिन्तन प्रधान एवं मूल्य प्रधान की अपेक्षा ज्ञानार्जनप्रधान है। हमारी शिक्षा में सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर पश्चिमी सभ्यता-मूलक तत्त्वों को उपादान के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। तभी तो शिक्षा तथा समृद्धि के पश्चात्य मानदण्डों को आधार मान लिया गया है, जो संस्कृति विरोधी हैं और उनमें नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का विशेष स्थान नहीं है। इसी का परिणाम है कि बुद्धिमान और निर्धन नैतिक व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से हाशिये पर रहता है और नैतिकता विहीन, संवेदनहीन, भ्रष्टाचारी एवं अपराधी भी संपन्न, सभ्य, सम्मानित, तथा प्रतिष्ठित होता है। इसी संस्कृति विहीन व्यवस्था के कारण शोषण प्रधान पूँजीवादी व्यवस्था ही ग्राह्य हो गई है, जिसने रहन सहन के स्तर को तो उठाया, पर इस भोग एवं बाजारवादी अर्थव्यवस्था के कारण अर्थशास्त्र एवं तकनीकी विज्ञान के सामने नैतिकता तथा मानवीयता गौण हो गई है जबकि राधाकृष्णन् एवं कोठारी आयोग की मान्यता थी कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रभावी माध्यम बन सके। इस दृष्टि से भारतीय प्रकृति और संस्कृति के अनुरूप शिक्षा से ही मूल्यपरक उदात्त गुणों का संप्रेषण और समग्र व्यक्ति का निर्माण संभव है। इसमें पुराने और नए का बिना विचार किए जो देश की अस्मिता तथा समाज के हितकर हैं, उसीको प्रमुखता देनी चाहिए। जैसा कि कालिदास ने काव्य के माध्यम से कहा है-

पुराणमित्येव न साधु सर्वं

न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते

मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ।।

अर्थात् पुरानी सभी चीजें श्रेष्ठ नहीं होतीं और न नया सब निन्दनीय होता हैं। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति परीक्षा करके जो हितकर होता है उसी को ग्रहण कर लेते हैं; जबकि मूर्ख दूसरों का ही अंधानुकरण करते हैं।

भारतीय संस्कृति ने सदैव शैक्षिक और उससे संबंधित संस्थानों को विद्या मन्दिर का सम्माननीय स्थान दिया है। शिक्षा एक आजीवन चलनेवाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग कार्य और विचार की नई पद्धतियाँ सीखते रहते हैं। इससे व्यवहार में ऐसे बदलाव लाने को बढ़ावा मिलता है जिससे मनुष्य की स्थिति में सुधार आये। मनुष्य में एक सामाजिक भाव की संस्कृति पनपने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शैक्षणिक संस्थाएँ विचारपूर्वक सांस्कृतिक विरासत प्रसारित करती है। संस्कृति शिक्षा का अभिन्न अंग है।

शिक्षा के साथ चरित्र -निर्माण की बात सदा से जोड़कर समझी जाती रही है। जो विद्यार्थी पढ़-लिखकर किसी व्यवसाय में आगे बढ़ रहे हैं उनसे चरित्र संपन्न होने की अपेक्षा भी होती है और यह विद्यालय स्तर पर करना होता है। लेकिन इसमें परिवार और समाज की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इन सभी को मिलकर एक ऐसी ज्ञानसंपन्न, कौशल युक्त, सक्षम और मूल्यवान नागरिक का निर्माण करना है जो मानवता के मूल्यों की रक्षा कर सके। अरब एक ओर अंकों की प्रतिस्पर्धा है तो दूसरी ओर चरित्रवान बने रहने की चुनौती। इस प्रकार शिक्षा का महत्व एक ऐसा सत्य है जिसे हम कभी अस्वीकार नहीं कर सकते । शिक्षा हमारी संपूर्णता को प्रकाश में लाती है। हमारी संकीर्णता को सामाजिकता का विराट् रूप देती है और हमारी प्रसुप्त बौद्धिकता को जगाती है। इस दृष्टि से देखने पर शिक्षा का आदर्श रूप हमारे सामने प्रकट होता है। शिक्षा के क्षेत्र में हम कांट को आदर्शवादिता का हिमायती पाते हैं। उनके मतानुसार शिक्षा के माध्यम से हमें व्यक्ति के मानस में नैतिक व्यवहार की आधारशिला डालनी चाहिए उसे कर्तव्यशीलता का पाठ पढ़ाना चाहिए। वे स्वतंत्रता की भावना व्यक्ति में शिक्षा के माध्यम से चाहते थे। कांट के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति को आत्म नियंत्रण और स्वतंत्रता में सामंजस्य स्थापित करना सिखाना है। कब व्यक्ति को दूसरों की बात मानना जरूरी है और कब उसे अपने स्वतंत्र विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक है, यह बात शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में प्रतिष्ठित की जानी चाहिए। यदि शिक्षा यह सब नहीं करती तो वह एक यांत्रिक वस्तु बन जायेगी। हेगेल के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को एक स्वतंत्र इकाई बनाना है अर्थात् उसे एक ऐसा प्राणी बनाना है, जिसमें संकल्प को वरण करने की, निश्चय करने की स्वतंत्र वृत्ति हो।

हेगेल के पश्चात् फिक्टे ने माना कि राष्ट्र को शक्तिशाली तथा प्रगतिशील बनाने के लिए हमें मनुष्यता के लिए शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी के मानस में श्रेष्ठ सदिच्छा प्रतिष्ठित करना चाहिए। आज हमें सांस्कृतिक कार्यक्रमों को अपनी शिक्षा में विशेष महत्व देना चाहिए, जिससे शिक्षार्थी को अपनी संस्कृति का समुचित ज्ञान हो। सांस्कृतिक विकास को उचित दिशा देना तथा सांस्कृतिक एकता की जड़ें मजबूत करना शिक्षाविदों का ही काम है। शिक्षा और संस्कृति का विकास एक दिन में पूरा नहीं होता, वह तो निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। उत्तम शिक्षा उत्तम संस्कृति की आधार भूमि है। ये दोनों एक दूसरे की पूरक हैं।

हमारा समाज सांस्कृतिक रूप से बहुआयामी है इसलिए शिक्षा के द्वारा उन सार्वजनिक और शाश्वत मूल्यों का विकास होना चाहिए जो हमें एकता की ओर ले जा सकें। इन मूल्यों से धार्मिक अंधविश्वास, कट्टरता, असहिष्णुता, हिंसा और भाग्यवाद का अंत करने में सहायता मिलेगी। इस संघर्षात्मक भूमिका के साथ-साथ मूल्य शिक्षा का एक गंभीर सकारात्मक पहलू भी है जिसका आधार हमारी सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय लक्ष्य और सार्वभौम दृष्टि है जिस पर बल दिया जाना चाहिए। जिस दिन हम यह मान जाएंगे कि शिक्षा से ही समाज सुधरेगा उसी दिन से सारी व्यवस्थाएँ सुचारु रूप से कार्य करने लगेंगी। शिक्षा ही विश्व शांति स्थापित कर सकती है।

शिक्षा के उपयोग तो अनेक हैं परन्तु उसे नई दिशा देने की आवश्यकता है। शिक्षा ऐसी हो कि व्यक्ति अपने परिवेश से परिचित हो सके। शिक्षा में उन बातों का भी समावेश होना चाहिए जिससे मनुष्य का आत्मिक विकास हो सके। वर्तमान समय की शिक्षा व्यक्ति को धन लोलुप बना रही है। व्यक्ति आत्मकेंद्रित हो गया है और वह बेईमानी, भ्रष्टाचार और दिखावे को प्रश्रय देने लगा है। वर्तमान शिक्षा के बोझ तले मनुष्य की आत्मा दबती जा रही है। शिक्षा को जन-जन तक फैलाने के लिए अत्याधिक प्रयास की आवश्यकता है। इक्कीसवीं सदी में भारत का प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो इसके लिए सभी जरूरी कदम उठाने होंगे। सर्वशिक्षा को प्रभावी तरीके से लागू करने की आवश्यकता है।

शिक्षा को समाज के एक ऐसे संसाधन के रूप में देखा जा सकता है जिसके द्वारा न केवल समाज की परम्पराएँ सुरक्षित रहती हैं अपितु जिस संस्कृति से समाज का पोषण हो रहा हैउसके मूल्यों का संरक्षण भी होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा समाज का एक अभिन्न अंग है जो एक ओर समाज के इतिहास की जड़ों को देखती है तो दूसरी ओर समाज के भविष्य का निर्माण करती है। यदि हमें मानवीय समस्याओं का लोकतांत्रिक और स्थाई समाधान चाहिए तो शिक्षा ही इसका मार्ग है।

बुनियादी अंकगणितीय ज्ञान और साक्षरता कौशल

डॉ. सुषमा सिंह[1]

भारत सरकार द्वारा कराये गए नेशनल एचीवमेंन्ट सर्वे में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विद्यार्थियों की भाषा तथा अंकगणितीय कौशलों को सीखने और गुणवत्ता का सही स्तर प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए दिल्ली सरकार, शिक्षा निदेशालय ने कुछ उपाय सुझाए हैं, जैसे-मिशन बुनियाद परियोजना (भाषा तथा गणित के बुनियादी कौशल को मजबूत करने के लिए), स्तर उपयुक्त मूल्यांकन, शिक्षक क्षमता निर्माण, दिल्ली में रहनेवाले शिक्षा जगत् से जुड़े हुए सभी लोग तथा सभी हितधारकों की जागरूकता इत्यादि। शोध पत्र में मिशन बुनियाद के दौरान किए गए नमूना अध्ययन (sample Study) के बारे में भी बताया गया है। इस अध्ययन में मिशन बुनियाद परियोजना के दौरान विद्याथियों द्वारा प्राप्त साक्षारता संबंधी कौशल तथा अंकगणितीय कौशल को पुनः मूल्यांकित किया गया।

1. मिशन बुनियाद परियोजना :

शिक्षा निदेशालय, दिल्ली द्वारा चलाई गई मिशन बुनियाद परियोजना में विद्यार्थियों के भाषा एवं गणित के बुनियादी कौशलों को सुधारने का प्रयास किया गया। इस परियोजना में कक्षा तृतीय से नवीं तक के उन छात्रों का नामांकन किया गया जिन छात्रों का भाषा-कौशल एडवांस स्टोरी स्तर (Advance Story level) तथा गणित में भाग के स्तर पर नहीं था। परियोजना की अवधि 2 अप्रैल से 30 जून 2018 थी। पहला चरण 2 अप्रैल से 10 मई 2018 तथा दूसरा चरण 11 मई से 30 जून 2018 तक था। विद्यालय प्रमुखों तथा मिशन बुनियाद के दौरान विद्यार्थियों को शिक्षित करने वाले सभी अध्यापकों 11-04-2018 से 16-04-2018 तक प्रशिक्षण दिया गया। विद्यालय प्रमुख तथा अध्यापकों के लिए निर्देश पत्रिका तथा विद्यार्थियों के लिए पठन-सामग्री को प्रशिक्षण के दौरान अध्यापकों तथा विद्यालय प्रमुखों के साथ साझा किया गया। दिल्ली पाठ्य पुस्तक ब्यूरो द्वारा "कहानियों का खजाना" और "हमारा गणित" पुस्तकें, पाठ्य-सामग्री के रूप में मिशन बुनियाद परियोजना में नामांकित विदयार्थियों को वितरित भी की गई।

[1] **(प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली), कोर एकेडमिक यूनिट, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली**

क्रिया-कलाप की सूची:

'कमाल' (CAMaL - Combined Activities for Maximized Learning) दृष्टिकोण का प्रयोग विद्यार्थियों के सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने तथा क्रिया-कलाप करने के बुनियादी कौशल को बढ़ाने के लिए किया गया। परियोजना के दौरान सुनने, बोलने, पढ़ने तथा लिखने के कौशलों को प्राप्त करने के बाद यह देखा गया कि विद्यार्थी सामान्य कक्षा की गतिविधियों में भी अधिक से अधिक भाग लेने लगे। कमाल दृष्टिकोण में विद्यार्थियों को सरल से संयुक्त, आसान से कठिन, ज्ञात से अज्ञात तथा मूर्त से अमूर्त ज्ञान की तरफ ले जानेवाले क्रिया-कलापों द्वारा विषयों से संबंधित कौशलों को मजबूत करने के लिए कार्य किया जाता है। आधार भूत मूल्यांकन, मध्यावधि मूल्यांकन तथा अंतिम मूल्यांकन का प्रयोग समय - समय पर विद्यार्थियों के भाषाई तथा गणितीय कौशलों में प्राप्त प्रगति को आँकने के लिए किया गया तथा विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त उन्नति के स्तर को आँकने के लिए आंकड़े आनलाइन वेबसाइट www.edudel.nic.in पर इकट्ठे किए गए ।

मिशन बुनियाद में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त कौशलों का पुनः मूल्यांकन तथा विचलन की जाँच :

कोर एकेडमिक यूनिट/ असेसमेन्ट यूनिट, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली की 16 सदस्यों की एक टीम ने राजधानी दिल्ली क्षेत्र के विभिन्न जिलों के विद्यालयों का दौरा किया तथा 5 जुलाई 2018 को टीम ने मिशन बुनियाद परियोजना के दौरान विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त भाषा तथा गणितीय कौशलों के स्तर का पुनः अवलोकन भी किया गया। टीम ने विभाग की वेबसाइट www.edudel.nic.in पर विभिन्न विद्यालयों द्वारा 30 जून 2018 तक भरे हुए विद्याथियों के कौशल से सबंधित आंकड़ों का भी पुनः अवलोकन तथा मिलान भी किया ।

पुनरवलोकन का परिणामः

6 विद्यालयों के मिशन बुनियाद परियोजना में नामांकित विद्यार्थियों में से 2340 विद्याथियों का पुनः अवलोकन किया गया। पुनरावलोकन का कार्य जुलाई 2018 में विद्यार्थियों के भाषाई तथा गणितीय कौशलों में मिशन बुनियाद परियोजना के दौरान प्राप्त किए गए भाषाई तथा गणितीय कौशलों के स्तरों की जाँच की गई (उच्चतम स्तरः भाषा में एडवांस स्टोरी स्तर तथा गणित में भाग के सवाल का स्तर)। इन 6 विद्यालयों के मिशन बुनियाद परियोजना में नामांकित कुल 2340 विद्यार्थियों में से

8.7% विद्यार्थियों के स्तर की पुनः जाँच की गई। 1058 विद्यार्थियों ने हिन्दी भाषा में एडवांस स्टोरी का स्तर पार कर लिया था। जो कि मिशन बनियाद परियोजना मे 30-06-2018 को नामांकित कुल विद्यार्थियों का 45.12% था।

- विद्यार्थियों ने गणित में भाग के सवाल के स्तर को पार कर लिया था जो 30-06-2018 को मिशन बुनियाद परियोजना में नामांकित कुल विद्यार्थियों का 54.88 % था।

- 1202 विद्यार्थी गणितीय कौशल में भाग के सवालों को हल करने का स्तर पार नहीं कर पाए, जो कि 30-06-2018 को मिशन बुनियाद परियोजना में नामांकित कुल विद्यार्थियों का 51.4% था।

- 30 जून 2018 को मिशन बुनियाद परियोजना में विद्यार्थियों के गणितीय तथा भाषाई कौशलों के स्तरों के बारे में जानकारी विभाग की वेबसाइट www.edudel.nic.in पर अध्यापकों तथा विद्यालय प्रमुखोंद्वारा साझा की गई थी। विद्यार्थियों के मिशन बुनियाद परियोजना के दौरान प्राप्त कौशलों के स्तर के बारे में बताया गया था कि विदयार्थियों के भाषा तथा गणितीय स्तर की पुनः जाँच करने पर केवल 5 से 10% ऋणात्मक या धनात्मक विचलन पाया गया।

- विद्यार्थियों के भाषा तथा गणितीय कौशलों का स्तर मिशन बुनियाद परियोजना के दौरान किए गए अंतिम मूल्यांकन के परिणाम से प्राप्त आंकड़े कक्षा में शिक्षण प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं क्योंकि इस प्रकार के मूल्यांकन से विद्यार्थियों का कक्षा के विभिन्न विषयों में स्तर ज्ञात होने पर कक्षा अध्यापक/अध्यापिकाओं को विभिन्न क्रिया-कलापों में विद्यार्थी की मनःस्थिती समझने में मदद मिलती है तथा इसका प्रयोग विभिन्न कक्षा स्तरों पर मूल्यांकन के लिए प्रयोग किए जाने वाले प्रश्नपत्र बनाने में भी किया जा सकता है। इसी विचार से लेकर विद्यार्थियों के कौशलों के स्तर के अनुसार विद्यार्थियों को प्रतिभा तथा निष्ठा समूहों में बाँटा गया।

उपाय - 2

अधिगम संप्राप्ति (Learning Outcomes) के लिए विद्यार्थियों के कौशल स्तर के अनुसार कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों का संकलित मूल्यांकन (Summative Assessment) करना।

निष्कर्ष तथा सुझावः

- शोध जाँच परिणाम द्वारा निष्कर्ष निकला कि मिशन बुनियाद में नामांकित कुल विद्यार्थियों में से केवल 50% विदयार्थी ही भाषाई तथा गणितीय कौशल के वांछित उच्चतम स्तर को प्राप्त कर पाये।

- शिक्षा निदेशालय, दिल्ली द्वारा बाकी 50% विद्यार्थीयों को कौशल पूर्ण बनाने के लिए मिशन बुनियाद जैसी और पारियोजनाएँ चलाये जाने की आवश्यकता है।

- गुणात्मक शिक्षा की बढ़ोतरी के लिए विद्यार्थियों के कौशल स्तर के अनुसार मूल्यांकन तथा विद्याथियों के कौशल स्तर के अनुसार प्रश्नपत्र बनाने की लंबे समय तक आवश्यकता है ताकि जो विद्यार्थी अभी तक अपनी कक्षा के स्तर का मेल नहीं कर पा रहे हैं उनको भी ऐसी परियोजनाओं से मदद मिल सके।

- अधिगम संप्राप्ति के लिए सभी हितधारकों जैसे-अभिभावकगण, शिक्षकगण, शिक्षाविदों आदि के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाने की भी आवश्यकता है।

- अध्यापकों की क्षमता-निर्माण-प्रक्रिया को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए दिल्ली एस. सी.ई.आर.टी. को और अधिक प्रयास करने की भी आवश्यकता है।

- (स्टेट कौंसिल ऑफ ऐडुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग)

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में महिला संदर्भित अनुसंधान : एक प्रवृत्त्यात्मक अध्ययन

गौरव रानी[1]
अजय सुराणा[2]
प्रो. माथुर[3]

भूमिका :

शिक्षा राष्ट्र के विकास हेतु मानवीय संसाधनों को तैयार करने का एक प्रमुख साधन है। शिक्षा किसी भी [4]देश का आधार है, जिसका कार्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विकास की धुरी है, लेकिन देश का पूर्ण विकास तभी संभव है जब देश का प्रत्येक नागरिक शिक्षा प्राप्त करे। बालक एवं बालिकाओं दोनों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों तथा बालकों के साथ-साथ बालिकाओं को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो।

स्त्री शिक्षा के अध्ययन में अवरोधन की समस्या अधिक पाई जाती है, अतः इसे दूर किया जाना चाहिए। निर्धनता, माता-पिता की रूढ़िवादिता, लड़कियों की शिक्षा के प्रति संकुचित व नकारात्मक दृष्टिकोण, नीरस पाठ्यक्रम, अनाकप्रक विद्यालयी वातावरण, परामर्श व निर्देशन का अभाव, दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, छात्राध्यापिकाओं की कमी आदि लड़कियों की शिक्षा में अवरोधन के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी होते हैं। स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए अपव्यय व अवरोधन की समस्या को दूर करना होगा।

भारतीय संविधान में स्त्रियों को पुरुषों के समान सामाजिक एवं शैक्षिक अधिकार प्रदान किया गया है। इसमें कहा गया है कि किसी भी नागरिक के धर्म, कुल, वर्ण, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। प्रत्येक नागरिक को रोजगार या राज्य के किसी कार्यालय में नियुक्ति के लिए अवसरों की समानता प्रदान की जाएगी। किसी भी नागरिक को राज्य के शिक्षा कार्यालय में

[1] **शिक्षा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान)**

[2] **शिक्षा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान)**

[3] **शिक्षा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान)**

रोजगार के संबंध में कुल, वर्ण, लिंग, वंशानुक्रम या जन्मस्थान के आधार पर अयोग्य घोषित या विभेदित नहीं किया जायेगा।

विभिन्न आयोगों, विश्वविद्यालयों, शिक्षा आयोग (1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) संविधान के अनुच्छेद 15 (1), 16 (1), 16 (2) तथा इंदिरा गाँधी अध्यवसायी योजना वर्ष 2001 में राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति से स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन मिला और स्त्रियों का नामांकन तथा उच्च शिक्षा के प्रति स्त्रियों का रूझान बढ़ने लगा और स्त्रियं भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगीं।

स्त्रियों की शिक्षा के लिए सरकार अनेक तरह की योजनाएं चला रही है, जैसे- सरस्वती योजना, बालिका फाउंडेशन योजना, आश्रम व्यवस्था योजना तथा माध्यमिक स्तर की लड़कियों की निःशुल्क शिक्षा योजना। प्रत्येक स्तर पर उनकी शिक्षा के लिए अलग से प्रयास किए जा रहे हैं। प्रारम्भ में भारत में स्त्री शिक्षा की दशा बड़ी चिंतनीय थी। स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान देकर स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रकार की योजनाएं चलाई जा रही हैं जैसे- साईकिल वितरण योजना, तथा लैपटॉप वितरण योजना जिससे स्त्री शिक्षा को काफी प्रोत्साहन मिल रहा है।

समस्या का औचित्य :

वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए जो प्रयत्न किए जा रहे हैं, उनमें से प्रमुख है शिक्षा। स्त्रियों के लिए प्रत्येक क्षेत्र खुला है उनके लिए व्यावसायिक एवं प्रौद्योगिकी शिक्षण संस्थाएँ भी खुली हुई हैं। शिक्षा में प्रोत्साहन देने के लिए स्त्रियों को अनेक सुविधाएँ भी प्रदान की जा रही हैं। परन्तु इनके होते हुए भी महिलाओं को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं, जैसे- परिवार में समायोजन संबंधी समस्याएं, कार्यस्थल पर सहयोगियों, कर्मचारियों संबंधी समस्याएं, सह-शिक्षा संबंधी अभिभावकों का दृष्टिकोण, तथा कार्यक्षेत्र में उनके साथ अभद्रता आदि।

शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य भिन्न-भिन्न स्तर पर करवाए जा रहे हैं। महिलाओं की शिक्षा संबंधी समस्यायें तथा जागरूकता में कमी, व्यवसाय संबंधी समस्याएं, महिलाओं की व्यक्तिगत समस्याएं ; महिलाओं का अपने कार्य में दबावग्रस्तता जैसी समस्याओं का पता शोध कार्यों द्वारा ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार महिलाओं से सम्बन्धित भिन्न प्रकार के शोधकार्यों का अध्ययन करना आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित शोध प्रश्न निर्मित किए गए है-

- कि क्या परिवेश के आधार पर शोध अध्ययन में कोई अन्तर पाया जाता है?
- कि क्या शोध अध्ययन में प्रस्तुत जनसंख्या के स्थान के आधार पर कोई अन्तर पाया जाता है।
- कि क्या शोध अध्ययन में शोध कालांश के आधार पर कोई अंतर पाया जाता है?
- कि क्या शोध के स्तर के आधार पर महिला संदर्भित शोध अध्ययनों में कोई अंतर पाया जाता हैं?

अध्ययन के उद्देश्य :

1. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में महिला संबंधी शोधकार्यों का पता लगाना।

2. विभिन्न प्रकार के शोधों का निम्न संदर्भो में अध्ययन करना-

(A). पी.एच.

(B). एम.एड.

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रवृत्यात्मक अध्ययन विधि को शोध कार्य के लिए चुना है।

जनसंख्या :

प्रस्तुत आलेख में समग्र या जनसंख्या के रूप में वनस्थली विद्यापीठ के शिक्षा विभाग के एम.एड. एवं पी.एच. डी. स्तर के समस्त महिला संदर्भित अनुसंधानों (2005-2015) को सम्मिलित किया गया है।

इस समस्या को ध्यान में रखते हुए **सोद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श** विधि का चयन किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रतिदर्श चयन में वनस्थली विद्यापीठ के शिक्षा विभाग के महिला संदर्भित **51 अनुसंधानों** को शोध अध्ययन के लिए चयन किया गया है।

प्रदत्तों के स्रोत :

प्रस्तुत शोध कार्य में वर्ष 2005-2015 तक के महिला संदर्भित अनुसंधानों को शामिल किया गया है। अतः प्रदत्तों के स्रोत द्वितीयक स्रोत हैं।

प्रदत्तों की प्रकृति :

प्रवृत्यात्मक अध्ययन हेतु महिला संदर्भित अनुसंधानों (2005-2015) का विवरण वर्णनात्मक तथा संख्यात्मक रूप में प्राप्त किया गया तथा द्वितीयक, संख्यात्मक तथा गुणात्मक प्रकार के प्रदत्तों का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :

- अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में महिला संदर्भित शोध कार्यों का पता लगाने पर पाया गया कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में वनस्थली विद्यापीठ के शिक्षा विभाग में एम.एड. एवं पी.एच.डी. स्तर पर 2005 से 2015 तक कुल 51 महिला संदर्भित शोध कार्य किए गए हैं।
- महिला संबंधी शोधाकार्यों का पता लगाने पर निष्कर्षतः पाया गया कि कुल 51 महिला संदर्भित शोध कार्यों में से 2009 तथा 2013 में सर्वाधिक शोध अध्ययन किए गए हैं तथा 2005, 2006 एवं 2007 में अपेक्षाकृत बहुत कम शोध कार्य हुए हैं।
- चरों के आधार पर विश्लेषण करने पर पाया गया कि समस्त 51 महिला संदर्भित शोध कार्यों में सर्वाधिक शोध कार्य उच्च शिक्षा में महिलाओं की सहभागिता पर किए गए हैं एवं बालिका-परित्याग, निर्णय क्षमता, सामाजिक बुद्धि, कार्यदबावग्रस्तता तथा राजनैतिक और कानूनी जागरूकता पर सबसे कम शोध कार्य किए गए हैं।
- महिला संदर्भित अनुसंधानों का शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विश्लेषण करने पर पाया गया कि महिला संदर्भित कुल शोध अध्ययनों में से सर्वाधिक 19 शोध अध्ययन (37%) उच्चतर स्तर पर किए गए हैं तथा प्राथमिक स्तर पर सबसे कम शोध कार्य (केवल 8 शोध 16%) किए गए हैं।
- प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त जनसंख्या के स्थान का विश्लेषण करने पर पाया गया कि कुल 51 महिला संदर्भित शोध कार्यों में से सर्वाधिक शोध कार्य 32 अर्थात् 63% राजस्थान राज्य की जनसंख्या को आधार बनाकर किया गया है तथा सबसे कम शोध कार्य उत्तराखण्ड तथा गोवा की जनसंख्या को आधार बनाकर किया गया है जो अपेक्षाकृत बहुत कम पाया गया।
- प्रस्तुत अध्ययन में शोध कालांश के आधार पर विश्लेषण करने पर पाया गया कि 2005 से 2010 तक कुल 21 शोध कार्य (41%) हुए तथा 2011-2015 की अवधि में 30 महिला संदर्भित शोध

कार्य (59%)हुए। निष्कर्षतः 2005 से 2010 के बीच हुए महिला संदर्भित शोध कार्यों की अपेक्षा 2010 से 2015 में अधिक शोध अध्ययन पाए गए।

- अनुसंधान विधि के आधार पर विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि कुल 51 महिला संदर्भित अनुसंधानों में से 47 (92%) शोध कार्यों में सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया सिर्फ 2 महिला संदर्भित शोध कार्यों (4%) में ही प्रवृत्यात्मक अध्ययन को चयनित किया गया तथा केस स्टडी में भी केवल दो शोध कार्य संपादित किए गए।
- शोधों के प्रकार के आधार पर विश्लेषण करने पर पाया गया कि कुल 51 महिला संदर्भित अनुसंधानों में से एम. एड. स्तर पर 37 शोध कार्य (73%) हुए हैं तथा पी-एच. डी. स्तर पर 14 शोध कार्य (27%) हुए हैं। अतः कहा जा सकता है कि महिला संदर्भित शोधकार्य एम. एड. स्तर पर अधिक हुए हैं अर्थात् पी-एच.डी. स्तर पर बड़ी जनसंख्या पर कम शोध कार्य किए गए हैं।

संदर्भ सूची -

- कौल, लोकेश 1998 : "शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली का विकास", पब्लिशिंग हाउस, प्राथमिक लिखित, जंगपुरा, नई दिल्ली
- कपिल, एच.के. 2007: "अनुसंधान विधियाँ', एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा
- पचौरी, गिरीश 2008: "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", लायल बुक डिपो, मेरठ
- मिश्रा, उपमा 2009 : "राजस्थान राज्य की प्राथमिक कक्षाओं में बालिका शाला परित्याग (ड्रापआउट) दर एक प्रवृत्यात्मक विश्लेपण (2001-2006), पीएच.डी. शोध, वनस्थली
- श्रीवास्तव, डी. एन. 2016, "अनुसन्धान विधियाँ', साहित्य प्रकाशन, आगरा
- प्रसाद, लोकेश, के. 2008, अनुसंधान पठतिशास्त्र, कावेरी बुक्स, नई दिल्ली एचटीटीपीएस://एजूजरनल.ओ आर जी 7 पॉलिटी रिट्राइटड फ्रॉम राइट्स इन इण्डिया
- कांस्ट्यूशनल राइट्स लीगल राइट्स दिनांक – 1/3/2018
- डब्लूडब्लूडब्लूडब्लूसीडीएनआईसी इन स्कीम्स लिस्टिंग एम्पावरमेंट स्कीम्स दिनांक 3/3/2017

उच्च शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी एवं कौशल विकास का महत्व

डॉ. अविनाश पारीक[1]

प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत बहुत उन्नत देश था। इसे विश्वगुरु का गौरव प्राप्त था। यहाँ तक्षशिला और नालन्दा जेसे महान विश्वविद्यालय थे, जहाँ न केवल भारत बल्कि सुदूर देशों जेसे बेबीलोन, ग्रीस, सीरिया, अरब देश तथा चीन से विद्यार्थी विभिन्न विषयों-भाषा, व्याकरण, दर्शनशास्त्र, औषधि-विज्ञान, सर्जरी, धनुर्विधा, वाणिज्य, भविष्य विज्ञान, तंत्रविद्या, संगीत, नृत्य तथा छिपे हुए खजानों को खोजने की विद्या सीखने के लिए आते थे। उस समय अति योग्य शिक्षकों में चाणक्य, पाणिनि, जीवक, अभिनवगुप्त तथा महर्षि पंतजलि जैसे प्रसिद्ध आचार्य थे। भारत ने ही शून्य का अविष्कार किया जिसने गणना की दोहरी प्रणाली की आधारशिला रखी जिस पर वर्तमान कम्प्यूटर निर्भर हैं। प्रमुख वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन ने भी कहा था 'हम इसका श्रेय भारतीयों को देते हैं जिन्होंने हमें गणना करना सिखाया, जिसके बिना कोई भी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोज नहीं की जा सकती थी' वैदिक युग के हजारों वर्ष के बाद विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का पुनः अवतरण पश्चिम की धरती पर हुआ।

पश्चिम में औद्योगिक क्रान्ति के बाद विज्ञान का जीवन के हर क्षेत्र में अनुप्रयोग बढ़ गया। विज्ञान का आनुप्रायोगिक पक्ष ही प्रौद्योगिकी है। आज सूचना प्रौद्योगिकी व तकनीकी का युग है। शिक्षा और समाज की अन्योन्याश्रिता सर्वविदित है। सामाजिक सन्दर्भों में शिक्षा दो प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करती है, एक ओर जहाँ शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रभावशाली यंत्र का कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक परिवर्तन का अनुगमन करना इसके स्वभाव में समाहित है। विद्यमान परिवेश में कौशल विकास के लिए सूचना प्रौद्योगिकी की महता सहज ही अनुभूत होती है।

आज सूचना का इतना अधिक प्रसार है कि उसे यदि भूमि के किसी चौराहे पर रख दिया जाए तो उसका ढेर मीलों ऊपर तक पहुँच जाएगा और उस पर आ रहा खर्च अधिकांश विकासशील देशों के सालाना बजट से भी अधिक होगा। हम ऐसे विश्व में रह रहे है जहाँ सूचना न केवल व्यापक रूप से

[1] **अधिष्ठाता-मानविकी एवं सामाजिक, विज्ञान संकाय, आई.ए.एस.ई. मान्य विश्वविद्यालय, गांधी विद्या मन्दिर, सरदार शहर (राजस्थान)**

बल्कि तुरन्त ही उपलब्ध है। आज के प्रतियोगितावादी और परस्पर जुड़े हुए विश्व में सिर्फ नवीनतम सूचना और तकनीक तक पहुँच ही काफी नहीं है बल्कि उससे अधिक महत्वपूर्ण उनका चुनिंदा और व्यावहारिक प्रयोग है। आज हमें विद्यार्थियों को सूचना और प्रौद्योगिकी के उचित समय पर प्रयोग के लिए प्रशिक्षित करना है। आज केवल इतना ही काफी नही है कि हम उन्हें ऐसा ज्ञान दें जो शायद ही कभी प्रयोग में आए हो। हमें आवश्यकता है उन्हें ऐसा ज्ञान देने की जिसका वे तुरन्त नए और सर्जनात्मक रूप से प्रयोग कर सकें।

वर्तमान में 'ज्ञान-संचालित अर्थव्यवस्था' और 'प्रौद्योगिकी-संचालित' 'उच्चतर शिक्षा ' के दौर में सर्वथा अलग तरह की दक्षता, समझ और ज्ञान की आवश्यकता है। चूँकि ज्ञान और तकनीक ऐसे अवयव हैं जो जल्दी ही अनुपयोगी हो जाते हैं, अतः उसे निरन्तर अद्ययतन बनाए जाने अर्थात् नवीनीकरण किए जाने की आवश्यकता बराबर बनी रहती है। साथ ही सूचना और संचार तकनीक को दक्ष और तेज मस्तिष्क वाले व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। वर्तमान में नवीनतम सूचना और ज्ञान तक ही पहुँच काफी नहीं है अपितु आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति में विषय-आधारित भण्डार से संबद्ध सूचना को चुनने और उसका तत्काल व्यावहारिक प्रयोग करने की योग्यता भी हो। अतः रूढ़िवादी शिक्षण और रट लेने के स्थान पर विश्लेषण करने और समस्याओं के समाधान करने की कुशलता को विकसित करने की महती आवश्यकता है। अधिकांशतया औपचारिक और परम्परागत शिक्षा मौलिक ज्ञान पर जोर देती है, जिसकी प्रकृति स्थायी होती है, जबकि सूचना और संचार तकनीक को 'द्रुतगामी दक्षता' की आवश्यकता होती है।

सूचना और प्रौद्योगिकी को स्वयं अपने आप में अंत नहीं समझना चाहिए। इसे केवल एक साधन के रूप में देखा जाना चाहिए। यह उत्पादकता या उत्पाद की गुणवत्ता या समर्पित सेवा को बढ़ाने में सहायता कर सकता है बशर्ते कि हम 'धरातली अनुभव' 'तकनीकी विशेषज्ञताओं' और 'बाजार की नीतियों' के मध्य समन्वय स्थापित करने में समर्थ हो। अपने लक्ष्य में सफल होने के लिए सूचना और संचार कर्मियों को लगातार सीखने भूलने और पुनः सीखने की आवश्यकता है। अगर किसी भी प्रकार की शिक्षा का वास्तविक जीवन में कोई प्रयोग नहीं किया जा सकता तो मुक्त अधिगम (Open-Ended Learning) का कोई अर्थ नहीं है। अतः उच्चतर शिक्षा में कौशल विकास के अन्तर्गत समस्या आधारित सीख का मॉडल (Problem-Solving Mode) अपनाने में ही बुद्धिमत्ता है क्योंकि यह सीखने वालों को समस्या, मूल परिकल्पना और उसके समाधान के मध्य संबंध स्थापित करने के योग्य बनाता

है। इसके लिए गणित से अमूर्त (Abstract), भौतिक विज्ञान से उपकरण विज्ञान और प्रयोग सिद्ध नियम, उड्डयन विज्ञान से मॉडलिंग और स्वभाव निर्धारण, यांत्रिक इंजीनियरिंग से निरीक्षण और गुणवत्ता-नियंत्रण, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग से सुरक्षा के उपाय, वास्तुकला से सौन्दर्य-बोध और सांचा तथा साहित्य से लघुता और स्पष्टता जैसी मानसिक समझ को ग्रहण किया जा सकता है।

इस प्रकार सूचना और संचार तकनीक के लिए आवश्यक दक्षता भौतिक विज्ञान, मानव शास्त्र और वाणिज्य क्षेत्र के स्थापित विषयों से ली जा सकती है। बदलते दौर में उच्चतर शिक्षा को दोहरी भूमिका निभानी है। एक ओर इसे विद्यार्थियों में नवीन कौशल विकसित करने के लिए तैयार करना तथा दूसरी और इसे 'बाजार आधारित उद्योग- शैक्षिक वर्ग' के आम और शैक्षणिक प्रयोग के लिए नई-नई तकनीक को विकासित करने में भी सक्रिय भूमिका निभानी है। सूचना के इस युग में शिक्षा और सीख के लिए नई तकनीकें जैसे डिजिटल तकनीक और सर्जनात्मक सीख से तात्पर्य न तो सिर्फ पाठ्य पुस्तकों पर आधारित कक्षा-सीख से है और न ही शिक्षक की देख-रेख में सीख से है। सीखने के समय ही नई तकनीक विद्यार्थी को जरूरी आलोचनात्मक- दक्षताओं तथा समस्याओं के समाधान की क्षमता प्रदान करती है। इस तरह विद्यार्थी समझ की पड़ताल कर सूचना और आँकड़े प्राप्त कर अपने वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में अपनी परिकल्पना का निर्माण और परीक्षण कर अपनी शिक्षा और कौशल का व्यावहारिक लाभ उठा सकते है।

आज के बदलते परिवेश में जहाँ वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण, ज्ञान का प्रसार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रभाव, पाश्चात्य रंग में रंग रही किशोर और युवा पीढ़ी हमारे सामान है वहाँ वे अपने जीवन को जीने के लिए यर्थाथ से हटकर कल्पना में उड़ाने भर रहे हैं। जीवन की हकीकत सामने आने पर या तो वे भटक जाते हैं अथवा जीवन से निराश होकर जीवन ही समाप्त करने को तत्पर हो जाते हैं। शायद इसके मूल में एक बात दिखाई देती है और वह है हमारी पीढ़ी में उच्च शिक्षण संस्थानों का पाठ्यक्रम कौशल आधारित और व्यवहारिक न होकर सैद्धान्तिक ज्यादा हैं। इसी कारण प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने प्रोद्योगिकी के माध्यम से उच्च शिक्षा में कौशल विकास को प्रमुखता दी है। आज भी शिक्षा का पाठ्यक्रम रोजगारमूलक न होकर परम्परागत रूप से चल रहा है। पाठ्य सामग्री पुस्तक के रूप में, वही पारम्परिक कक्षा में शिक्षक का व्याख्यान, प्रश्न प्रतिप्रश्न, श्यामपट्ट पर सार-रूप में कुछ लेखन की शिक्षक-पद्धति, शिक्षा-शिक्षण क्रम हैं, जो लम्बे समय से चला आ रहा है। अतः युगानुरूप इस में परिवर्तन की महती आवश्यकता है।

उच्च शिक्षा में कौशल विकास में सूचना प्रौद्योगिकी एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें कम्प्यूटर, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और इण्टरनेट के माध्यम से सूचना प्रणालियों का डिजाइन तैयार करने, उन्हें विकसित करने तथा उनके संचालन या प्रबन्ध का काम इसी प्रौद्योगिकी के माध्यम से सम्भव हो पाया। सूचना प्रौद्योगिकी व संचार-साधनों ने उच्च शिक्षा के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में विकास, वैज्ञानिक अनुसंधानों, जनजागरण, स्वास्थ्य, राजकीय सेवाओं, कृषि, इंजीनियरिंग, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक विज्ञान व मानविकी के विविध क्षेत्रों में असीम व्यावसायिक संभावनाओं को जागृत किया है। बौद्धिक अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक रूपांतरण को साकार करने के लिए उच्च शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। इसलिए उच्च शिक्षा को राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इसके लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग ने 'रीच' (रेलिवेंस एक्सीलेंस इन अचीविंग न्यू हाइटस) के साथ एक मिशन बनाया जो औद्योगिक महत्व के क्षेत्रों को प्रोत्साहित करने तथा मिशन में भागीदार उद्योगों को प्रशिक्षित जन-शक्ति उपलब्ध कराने के लिए विद्यमान इंजीनियरिंग संस्थानों में 'सेंटर्स ऑफ एक्सीलेंस' की स्थापना की जाए। यह वर्ष 2020 तक विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई मिशनों में से एक है। इसका उद्देश्य समान शैक्षिक कार्यक्रम तथा संयुक्त अनुसंधान और श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए समर्पण की भावना वाले 80-100 शोध केन्द्रों की स्थापना है जो संकाय आदान-प्रदान के जरिए इलेक्ट्रॉनिक रूप से जुड़े होंगे। इससे हमें अत्यन्त आत्मविश्वास मिलता है कि हमारे उद्योग आपसी लाभदायक प्रौद्योगिकी विकास तथा शिक्षा प्रयासों में महत्वपूर्ण भागीदार होंगे।

आज कौशल विकास के लिए आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक और उद्योग जगत विभिन्न शिक्षण संस्थानों, प्रशिक्षण और व्यय में भागीदारी के आधार पर मात्रा और गुणवत्ता के रूप में आवश्यक मानव संसाधन का सर्जन करें जिससे कि विश्वस्तर पर मानव संसाधन संबंधी भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। इसके लिए शिक्षण संस्थानों द्वारा उनके पाठ्यक्रम से संबंधित नवीनतम सूचना और ज्ञान प्रदान करने और उन्हें संचार क्षमता, समूह-आधारित कार्य, संघर्ष प्रबंधन (Conflict Management), समय प्रबंधन, तकनीकी रिपोर्ट लिखना, विनिमय विश्लेषण, नैतिकता में विश्वास, अपनी संस्कृति के प्रति गर्व और विरासत जैसी प्रक्रिया दक्षताओं (Soft Skills) से लैस करने की आवश्यकता होगी। इससे विद्यार्थियों को भूमंडलीकरण के लिए तैयार किया जा सकता है। आम शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के मध्य उचित तालमेल विद्यार्थियों को रोजगार योग्य बनाने के लिए जरूरी है। देश के विश्वविद्यालयों में इस प्रकार का प्रयोग अपेक्षित है।

सुझाव:-

i. देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों को सर्वप्रथम वर्चुअल विश्वविद्यालयों का रूप दिया जाए जिससे विद्यार्थी नवीन प्रौद्योगिकी की सहायता से ज्ञान में वृद्धि एवं समन्वय कर सकें।

ii. विश्वविद्यालयों में तकनीकी पाठ्यक्रमों के साथ-साथ मानविकी पाठ्यक्रमों में आधारभूत परिवर्तन करते हुए उन्हें रोजगार मूलक बनाने के लिए स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षा में कम से कम एक विषय कौशल आधारित प्रक्रिया का अंग बने।

iii. मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा (Deemed) मानित विश्वविद्यालयों को कौशल आधारित पाठ्यक्रमों को लागू करने और उन्हें विकसित करने के लिए विशेष अनुदान दिया जाए।

iv. कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा में मास्टर की डिग्री के लिए नामांकन हेतु न तो प्रवेश परीक्षा और न ही न्यूनतम ग्रेड (योग्यता) की आवश्यकता होती है। अधिकांश विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम का आधा भाग पाँच सप्ताह के गर्मी के अवकाश में पूरा कर लेते हैं। उसी प्रकार स्नातक स्तर के छात्र यह कार्य छह महीने में पूरा करते हैं। अतिरिक्त समय में वे रोजगार मूलक पाठ्यक्रमों को भी साथ में पूरा करते हैं। वहाँ हर ग्रेड 'ए' है और कार्यक्रम को पूरा करने पर अधिकांश छात्रों को रोजगार तथा वेतन वृद्धि की गांरटी होती है। वर्तमान सरकार भारत में यदि शिक्षा के क्षेत्र में यह नवीन प्रयोग करती है तो शायद ही कोई विद्यार्थी रोजगार से वंचित रहे।

v. उच्च शिक्षा में कौशल विकास के लिए किसी विश्वविद्यालय के संकाय से जोड़ने के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा सकता है। संभवत: फाइबर ऑप्टिक लीज लाइन केबल या सेटेलाइट लाइन के संयोजन का प्रयोग किया जा सकता हे।

vi. प्रौद्योगिकी के माध्यम से हम विद्यार्थी को स्वयं सीखने के लिए प्रेरणा तथा उज्ज्वल भविष्य बनाने के लिए चुनौतियों का सामना करना सिखा सकते हैं। इसके लिए विश्वविद्यालयों में सर्जनात्मक एवं रचनात्मक वातावरण निर्मित करना आवश्यक है।

vii. आज भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने प्रमुख समस्या रोजगार सर्जन की है जिसके लिए सरकार ने मेक इन इण्डिया कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। जिसका उद्देश्य विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार के

नए अवसर सर्जन करना तब साकार होगा जब नवीन प्रौद्योगिकी के अनुसार उच्च शिक्षा का ढाँचा तैयार हो।

viii. एस्पाइरिंग माइंड्स नेशनल एम्प्लोयाबिलिटी संस्थान की रिपोर्ट का अवलोकन करने पर पता चलता है कि आज बड़ी संख्या में इंजीनियरिंग स्नातक बेरोजगार हैं। नौकरियाँ देने वाली कंपनियों की शिकायत है कि उनके कौशल व प्रतिभा का स्तर अच्छा नहीं है। अतः इसके लिए सरकार सर्वप्रथम इंजीनियरिंग शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता की जाँच और संकाय सदस्यों के प्रशिक्षण की नियमित व्यवस्था करें।

ix. वर्तमान सरकार की स्टार्ट-अप योजना के लिए टैलेंट की जरूरत होती है जो विश्वविद्यालयों से मिलता है। आज देश के 98 फीसदी छात्र सामान्य विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, जिनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अतः मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार सर्वप्रथम विश्वविद्यालयों पर ध्यान देकर उन्हें स्वायत्तता तथा नवीन प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत कौशल विकास के लिए अधिक से अधिक अनुदान प्रदान करे। चाहे वो सरकारी या गैर सरकारी विश्वविद्यालय ही क्यों न हों।

x. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को नए-नए उपायों से अपने विद्यार्थियों, शोधार्थियों और शिक्षकों को विदेशों की ओर पलायन को नवीनतम प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके रोकना चाहिए।

xi. उच्च शिक्षा में केवल विश्वविद्यालय ही अपने विद्यार्थियों को कौशल विकास के लिए विशेष ज्ञान और तकनीकी दक्षता अर्जित करने की सीख दे सकते हैं ।

xii. भारत के समस्त विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रमों में प्राचीन विवेक, दर्शन, योग और अध्यात्मवाद के माध्यम से विश्व को नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं और विश्व गुरु का गौरव पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

xiii. देश के प्राचीन शिक्षण संस्थान जो पिछड़े क्षेत्र में उच्च शिक्षा के लिए आज उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं, उन संस्थानों को मानव संसाधन विकास मंत्रालय तकनीकी एवं मानविकी शिक्षा में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर उत्पादन इकाई स्थापित करने के लिए आर्थिक अनुदान दे जिससे शिक्षा एवं प्रशिक्षण के साथ-साथ उन विद्यार्थियों को रोजगार सुलभ हो सके।

xiv. देश का एक प्रमुख आइ.ए,एस.इ. मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर आज उच्च शिक्षा से वंचित विद्यार्थियों को जो समाज की मुख्य धारा में नहीं जुड़ पाए हैं उनको नि:शुल्क तकनीकी शिक्षा, मुफ्त शिक्षा, आवास एवं भोजन की सुविधा देकर एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस तरह के अनेक मानित विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रोत्साहन देकर उनकी मदद करे ताकि एक आदर्श उदाहरण देश के सम्मुख प्रस्तुत हो। आज नवीन सूचना संचार और कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के जरिये स्थापित नेटवर्क से उपलब्ध ज्ञान एवं कौशल तक पहुँचने के असीम अवसर पैदा हो रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व मल्टीमीडिया के साधनों ने एक ओर जहाँ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को समुन्नत व आधुनिक बनाने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर संपूर्ण विश्व के देशों के लिए वैश्विक शिक्षा की संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान किया है। मेक इन इण्डिया कार्यक्रम के बाद नव उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिए स्टार्ट-अप इण्डिया को आज नई पीढ़ी के सपनों को परवाज देने वाला कार्यक्रम माना जा रहा है। स्वयं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की मंशा भी है कि स्टार्ट-अप इण्डिया के माध्यम से दक्ष युवक रोजगार की तलाश में भटकने के बजाय रोजगार देने वाले बनें। सूचना प्रौद्योगिकी की अद्यतन तकनीकों का शिक्षा में प्रयोग करके एक नवीन शैक्षिक क्रान्ति का सूत्रपात किया जा सकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. श्रीवास्तव के.सी., 2010 प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, प्रकाशक-युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृ.सं.-200
2. शर्मा डी. एल., 2008 शिक्षा तथा उदीयमान भारतीय समाज, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ, पृ.सं.542
3. भारतीय आधुनिक शिक्षा, अंक-04, प्रकाशक-एन. सी. ई. आर. टी. नई दिल्ली, अप्रैल, 2009, पृ.सं.68
4. नारायण आर और नीथि, 2005 'क्रीचिंग हयूमन रिसोसैज फॉर इन्फोमेशन टेक्नोलॉजी' नास्कॉम आइ. टी. वर्कशॉप, नई दिल्ली, पृ.सं.-06
5. वही, पृ.सं.-16

6. अरूलसामी और शिवकुमार, 'इंटरऐक्टिव मल्टी मीडिया इन टीचिंग एण्ड लर्निंग' यूनिवर्सिटी न्यूज, ए आइ यू, नई दिल्ली, 26 अगस्त 2004, पृ.सं.-38

7. सेनापति, एच.के., जर्नल ऑफ ऑल इण्डिया एसोसिएशन फॉर एज्यूकेशनल रिसर्च, सितम्बर और दिसम्बर 2004, पृ.सं.-58

8. राजस्थान शिक्षा बोर्ड शिक्षण पत्रिका, प्रकाशक-माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर, मार्च 2004, पृ.सं.-70

9. भारतीय आधुनिक शिक्षा, अंक-04, प्रकाशक-एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली, अप्रैल 2009, पृ.सं.70

10. कलाम ए.पी.जे., 2004 मेरे सपनों का भारत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-161

11. नरसिंहन आर, ह्ययूमन रिसोर्स डेवलपमेन्ट टु मीट दी चैलेन्जेस ऑफ इन्फारमेशन टेक्नोलॉजी एण्ड कम्यूनिकेशन चेक्नोलॉजीज, नई दिल्ली, अप्रेल, 2000 (www.nest.errnet.in)

शिक्षा और मानवाधिकार

डॉ. नावेद जमाल[1]

मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता के लिए शिक्षा सर्वाधिक उपयुक्त साधन है क्योंकि शिक्षा मीडिया से किए गए प्रचार प्रसार की तुलना में अधिक स्थायी और संस्थागत प्रभाव रखता है। हालाँकि, मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए समन्वित प्रयासों की आश्यकता है परन्तु यदि हम मीडिया सहित विभिन्न जागरूकता के साधनों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो पाएंगे कि शिक्षा के माध्यम से मानवाधिकारों की प्राप्ति अधिक गहरे और प्रभावी रूप से प्राप्त की जा सकती है। इस दृष्टि से शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत मानवाधिकारों की ऐसी शिक्षा शामिल है जो समाज में शोषण और उत्पीड़न पर रोक लगाने में कारगर सिद्ध हो तथा सहिष्णुता और शांति का मार्ग प्रशस्त कर सके। शिक्षा में इसके सैद्धांतिक पहलुओं के साथ-साथ व्यावहारिक पहलू पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र के 1948 सार्वभौमिक मानवाधिकार की उद्घोषणा में अनुच्छेद 26 में शिक्षा तक सबकी पहुंच, इसकी उपलब्धता और शिक्षा के उदेश्यों का उल्लेख किया गया है।

सार्वभौमिक मानवाधिकार की उद्घोषणा में अनुच्छेद 26 -

(1) सभी को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्रारंभिक और मौलिक शिक्षा मुफ्त होनी चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा आम तौर पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए और उच्च शिक्षा योग्यता के आधार पर सभी के लिए समान रूप से सुलभ होनी चाहिए।

(2) शिक्षा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास और मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता के सम्मान को मजबूत करने के लिए निर्देशित होनी चाहिए। शिक्षा सभी राष्ट्रों, नस्लीय या धार्मिक समूहों के बीच समझ, सहिष्णुता और मित्रता को बढ़ावा देनेवाली होनी चाहिए और शांति के लिए संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों को आगे बढ़ानेवाली होनी चाहिए।

(3) हम देख सकते है कि जहाँ अनुच्छेद 26 (1) में शिक्षा के मानवाधिकार की बात कही गई है वही अनुच्छेद 26 (2) में मानवाधिकारों के लिए शिक्षा की बात कही गई है।

[1] **एसो. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली.**

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी में 2012 में 'मानवाधिकार एवं शिक्षा' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए उस समय उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति डॉबी . एस चौहान ने कहा था। कि मानवाधिकार व शिक्षा एक दूसरे के पूरक हमें इन्हें आचरण और व्यवहार में लाना चाहिए। उन्होंने कहा कि हमें मानवाधिकारों के स्वरूप को जानने और समझने की जरूरत है जिसमें शिक्षा एक बड़ी भूमिका निभा पाने में सक्षम है।

मानव अधिकारों की शिक्षा, शिक्षा के अधिकार का एक अनिवार्य अंग है। शिक्षा कोमानव अधिकार के रूप में बड़े पैमाने पर मान्यता दी गई है। मानव अधिकारों की शिक्षा का मूल भाव यह है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रशिक्षित और व्यावसायिक कामगार तैयार करना ही नहीं है बल्कि समाज में परस्पर व्यवहार करने का कौशल रखने वाले व्यक्तियों का विकास करने में सहयोग देना भी है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो अच्छा नागरिक बना सके और जो सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए पूरी क्षमता के साथ जुड़ सके। शिक्षा लोगों को सशक्त करती है, उनके जीवनस्तर में सुधार लाती है साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक नीतियों की निर्णयात्मक प्रकिया में भागीदारी के लिए क्षमता में वृद्धि करती है। यही कारण है कि शिक्षा और मानवाधिकारों पर लगभग सभी अंतरराष्ट्रीय मंचों ने ऐसे समाज का निर्माण करने पर बल दिया है जिसमें शिक्षा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास तथा मानव अधिकारों और मुलभूत स्वंतत्रता के लिए आदर को सुदृढ़ करने पर केंद्रित हो।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 26 के अतिरिक्त, संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 16 दिसंबर 1966 में अपनाए गए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अभिसमय (कन्वेंशन) के अनुच्छेद 13 और 14 में भी शिक्षा के मानवाधिकार को विशद रूप से व्याख्यायित किया गया है। कन्वेंशन के अनुच्छेद 13 के अनुसार सभी को प्राथमिक स्तर पर मुफ्त शिक्षा और माध्यमिक तथा उच्च स्तर के लिए सभी को शिक्षा की समान उपलब्धता होनी चाहिए। इसके अनुसार शिक्षा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास और मानव गरिमा की भावना के लिए निर्देशित होनी चाहिए। शिक्षा सभी व्यक्तियों को समाज में प्रभावी रूप से भाग लेने के लिए सक्षम बनाने वाली होनी चाहिए। यह अनुच्छेद शिक्षा को एक मानव अधिकार के रूप में और अन्य मानवाधिकारों को साकार करने का एक अनिवार्य साधन के रूप में देखता है।

अनुच्छेद 13.2 के अनुसार शिक्षा के अधिकार को वास्तविकता में बदलने के लिए और शिक्षा - प्राप्ति की सुनिश्चितता के लिए यह अनिवार्य है कि प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिक और अनिवार्य हो,

माध्यमिक शिक्षा अपने विभिन्न रूपों – तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण सहित- आम तौर पर उपलब्ध और सुलभ हो तथा उच्च शिक्षा समान रूप से व बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए उपलब्ध हो। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि राष्ट्रों को एक स्कूल प्रणाली विकसित करनी चाहिए (हालाँकि यह सार्वजनिक, निजी या मिश्रित हो सकती है), वंचित समूहों के लिए छात्रवृत्त को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसी क्रम में अनुच्छेद 13.3 और 13.4 में माता-पिता की शैक्षिक स्वतंत्रता का सम्मान करने के लिए उन्हें अपने बच्चों के लिए निजी शैक्षणिक संस्थानों को चुनने और स्थापित करने की अनुमति देने की बात कही गई है जिन्हें हम शिक्षा की स्वतंत्रता भी कह सकते है। माता-पिता का यह अधिकार है कि वे स्वयं के विश्वास के अनुरूप अपने बच्चों की धार्मिक और नैतिक शिक्षा सुनिश्चित कर सकें। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की समिति स्कूलों में शारीरिक दंड को भी व्यक्ति की गरिमा के अंतर्निहित सिद्धांत से असंगत मानती है।

इस संदर्भ में देखा जाए तो, मानवाधिकार की शिक्षा की विषय-वस्तु में केवल मानवाधिकारों की सूचना देने वाली नहीं बल्कि इसमें मूल्यों का इसमें व्यापक मूल्यों का समावेश होना चाहिए। वस्तुतः मानवाधिकार-शिक्षा को एक ऐसी व्यापक जीवन-प्रक्रिया का निर्माण करना चाहिए जिससे समाज के सभी स्तरों में लोग दूसरों की गरिमा के लिए सम्मान सीखें।

वस्तुतः शिक्षा कोसाक्षरता तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षा में भेदभाव के खिलाफ 1960 के यूनेस्को अभिसमय (कन्वेंशन) के अनुच्छेद 1 (2) के अनुसार, व्यापक अर्थों में, शिक्षा उन सभी गतिविधियों का वर्णन करती है जिसके द्वारा एक मानव समूह अपने वंशजों को ज्ञान, कौशल और एक ऐसा नैतिक कोड प्रदान करता है जो समूह को निर्वाह करने में सक्षम बनाता है।

शिक्षा के व्यापक अर्थ को यूनेस्को की 1974 की अंतरराष्ट्रीय समझ, सहकारिता और शांति के लिए शिक्षा तथा मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता के लिए शिक्षा से संबंधित अनुशंसा के अनुच्छेद 1 (क) में भी मान्यता दी गई है। इसके अनुसार शिक्षा सामाजिक जीवन की पूरी प्रक्रिया को समाहित करती है जिसके माध्यम से व्यक्ति और समूह स्वयं में चेतना का विकास करना सीखते हैं। शिक्षा के अंतर्गत व्यक्ति तथा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समुदायों की क्षमता, दृष्टिकोण, योग्यता और ज्ञान भी शामिल है।

मानवाधिकारों पर वियना विश्व सम्मेलन (14 जून 1993 – 25 जून 1993), मानवाधिकार शिक्षा को राष्ट्रों द्वारा मुख्य मुद्दों के रूप में शामिल करने की अपील करता है। मानव अधिकार संबंधी विश्व सम्मेलन की वियना घोषणा में तथा कार्रवाई के कार्यक्रम में धारा 1 के पैरा 33 में उल्लेख है कि मानव अधिकार शिक्षा, प्रशिक्षण तथा जन-सूचना, समुदायों के बीच मजबूत और सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवर्धन एवं प्राप्ति के लिए और आपसी समझदारी, सहिष्णुता तथा शांति के लिए आवश्यक है। वियना अभिसमय (कन्वेंशन) मानता है कि शिक्षा को समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा देना चाहिए तथा राष्ट्रों और सभी नस्लीय या धार्मिक समूहों के बीच शांति और मैत्रीपूर्ण संबंध और विचारों को प्रोत्साहित करने वाली होना चाहिए।

अभिसमय (कन्वेंशन) मानता है कि राज्य को निरक्षरता उन्मूलन के प्रयास करने चाहिए और व्यक्तियों के पूर्ण विकास, मानव अधिकार तथा मूलभूत स्वंतत्रता के लिए आदर की भावना को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षा को निर्देशित करना चाहिए। अभिसमय सभी राज्यों एवं संस्थानों से अपील करता है कि वे मानव अधिकारों और लोकतंत्र एवं कानून के शासन को औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से सभी शैक्षणिक संस्थानों के पाठ्यक्रमों में विषयों के रूप में शामिल करें। इस विश्व सम्मेलन के सुझावों पर संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 23 दिसंबर, 1994 के संकल्प संख्या 49/1904 के द्वारा 1995से 2004 के दशक को मानव अधिकार शिक्षा के लिए **संयुक्त राष्ट्र दशक** के रूप में घोषित किया था।

वस्तुतः व्यक्तियों तथा समूहों को मानव अधिकार शिक्षा देने का उद्देश्य यह है कि इससे मानव अधिकारों की अवमानना करने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आये और समाज मानवाधिकारों के संरक्षण में सक्षम बन पाए। मानव अधिकारों के विषय में जानकारी प्राप्त करना ही अपने-आप में काफी नहीं है बल्कि मानव अधिकारों के हनन को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि स्वतंत्रता, अधिकार और लोकतंत्र तथा सहिष्णुता आधारित संस्कृति का निर्माण हो सके जिसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

भारत में शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद 29 और 30 में संस्कृति और शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया है। अनुच्छेद 29 जहाँ शिक्षा के भेदभाव रहित प्राप्ति की बात करता है, वहीं अनुच्छेद 30 धर्म और भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों को सुनिश्चित करता है।

संविधान में 86 वाँ संशोधन अधिनियम 2002 के द्वारा भारत के संविधान में अनुच्छेद 21-ए को छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए एक मौलिक अधिकार के रूप में जोड़ा गया। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई) अधिनियम, 2009, जो अनुच्छेद 21-ए के तहत परिकल्पित कानून को साकार करता है, का अर्थ है कि प्रत्येक बच्चे को औपचारिक शिक्षा में संतोषजनक और न्यायसंगत गुणवत्ता की पूर्णकालिक प्राथमिक शिक्षा का अधिकार है जो कुछ आवश्यक मानदंडों और मानकों को संतुष्ट करता है। इसी प्रकार संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 45 में 6 वर्ष से कम के बच्चों के लिए देख-भाल और शिक्षा की बात कही गई है।

संयुक्त राष्ट्र के एक सदस्य राष्ट्र के रूप में भारत मानव अधिकार संधियों का अनुसमर्थन कर चुका है। इन संधियों के अंतर्गत भारत जनता में मानव अधिकार शिक्षा, प्रशिक्षण और जन-सूचना का प्रसार करने के लिए वचनबद्ध है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार शिक्षा दशक के तत्वावधान में मानव अधिकार शिक्षा के संबंध में राष्ट्रीय कार्य-योजना का प्रारूप तैयार करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा एक प्रारूप समिति का गठन किया गया था।इस समिति ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से मानव अधिकार शिक्षा पर राष्ट्रीय कार्य-योजना का प्रारूप तैयार करने का अनुरोध किया। यह कार्य वर्ष 2001 में पूरा किया गया। यहराष्ट्रीय कार्य योजना मानव अधिकारों के प्रति जन-जागरूकता लाने के लिए कार्यनीति तैयार करने और मानसिक सोच में बदलाव लाकर एवं शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से मानव अधिकार को प्राप्त करने की बात करती है। यह विशिष्ट लक्षित समूहों के सामाजिक सशक्तीकरण के संवर्धन हेतु कार्यनीति तैयार करने पर बल देती है। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय, सरकारी अधिकारी जिनमें सेना और अन्य सशस्त्र बल, विशेष रूप से पुलिस, अर्ध - सैनिक बल, संसदीय सदस्यऔर न्यायिक अधिकारियोंको मानवाधिकार शिक्षा के प्रसार के लिए विशिष्ट लक्षित समूह के रूप में पहचान की गई है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की (छ) और (झ) राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को यह दायित्व सौंपता है कि वह मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंन्धान करे और उसको बढ़ावा दे तथा समाज के विभिन्न वर्गों में मानव अधिकार शिक्षा का प्रसार करे और प्रकाशन, मीडिया, सेमिनार और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध उपायों के प्रति

जागरूकता को बढ़ावा दे। इस कार्य के लिए संपूर्ण देश और इसके देशवासियों में मानव अधिकार की संस्कृति पैदा करने की जरूरत पर बल दिया गया है।

मानव अधिकार के समक्ष आज-भीगरीबी और वैश्विक असमानता मुख्य चुनौती बनी हुई है। आज भी दुनिया भर में विभिन्न भेद-भाव बने हुए हैं चाहे वे रंग के आधार पर हो या धर्म, भाषा, जाति, लिंग और आर्थिक आधार पर। दुनिया भर में हो रहे सशस्त्र संघर्ष और हिंसा, चाहे उसका कारण जो भी हो मानवाधिकारों को भारी नुक्सान पहुँचा रहे हैं, साथ ही शरणार्थी जैसी समस्याएं भी पैदा कर रहे है। मानव अधिकार के उल्लंघन के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उचित दण्ड व्यवस्था न होने के कारण भी इन्हें लागू करने में मुश्किलें आती है। लोकतंत्र की कमी, कमजोर संस्थाएं और कार्यान्वयन की ढिलाई के कारण मानवाधिकारों को आम आदमी तक पहुंचाने में चुनौतियां और बढ़ जाती हैं। मानवाधिकारों के समक्ष जमीनी स्तर पर और जिन मुख्य चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है वे हैं विभिन्न समाजों में व्याप्त ज्ञान की खाई, क्षमता का अंतराल, सरकारों की वचनबद्धता की कमी और सामाजिकसुरक्षा का भारी अभाव।- इनसे शिक्षा का महत्व और भी बढ़ जाता है।

संस्थागत स्तर पर जो भी राष्ट्रीय और अंरराष्टीय प्रयास हो रहे हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं। मानवाधिकारों के व्यापक प्रसार के लिए इन कदमों के अतिरिक्त सामाजिक वातावरण पर भी ध्यान देना होगा। वस्तुतः इन अधिकारों की प्राप्ति की कुछ पूर्व शर्तें हैंलोकतंत्र के मूल्य को सभी स्तरों पर - लागूकिए जाने चाहिए। इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए लोकतंत्र को सामाजिक और आर्थिक निर्णय क्षमता और भगीदारी के रूप में प्राप्त करना आवश्यक है। विभिन्न भेद भाव से निपटने के लिए सामाजिक एवं राजनीतिक जागरूकता का प्रसार अनवरत प्रक्रिया के रूप में होना चाहिए, साथ ही हर प्रकार के विशेषाधिकार भी समाप्त किए जाने चाहिए। इन सभी मूल्यों का समावेश समाज में तभी हो सकता है जब शिक्षा के मानवाधिकार को स्थापित किया जाए और शिक्षा में मानवाधिकारों के मूल्यों का समावेश किया जाए।

शिक्षा द्वारा लोगों में संयुक्त राष्ट्र की सार्वभौमिक घोषणाओं के लिए सम्मान जगाने के साथ-साथ देशज मानव अधिकार के दर्शनों को वैज्ञानिक सोच के साथ विकसित करने की आवश्यकता है ताकि लोगों में मानवाधिकारों के प्रति समझ बढ़े और इसके लिए समाज में लगातार रूढ़िवादिता, सामाजिक व धार्मिक कुप्रथाओं तथा पूर्वाग्रहों और प्रतिक्रियावादिता जैसे तत्वों की समाप्ति हो क्योंकि

मानवाधिकार स्वयं में प्रगतिशील है और गरिमापूर्ण मानव जीवन के लिए इनकी रक्षा और विकास सतत मानवीय प्रयास पर निर्भर है जिसमें शिक्षा को एक बड़ी भूमिका निभानी है।

संदर्भ-ग्रंथ

- 2014, फरवरी 19. मानवाधिकार व शिक्षा एक दूसरे के पूरक. *दैनिकजागरण.*
- स्प्रिंग, जोएल. द *यूनिवर्सल राइट टू एजुकेशन: जस्टिफिकेशन, डेफिनिशन, एंड गाइडलाइन्स.* लंदन; लॉरेंस एर्लबौम असोसिएट्स प्रेस, 2000.
- ऑफिस ऑफ़ द यूनाइटेडनेशंस हाईकमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स. *इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन इकनोमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स: रेटिफिकेशन एंड अक्सेशन बाई जनरल असेंबली– जो रेजोलुशन 2200A (XXI) ऑफ़ 16 दिसंबर, 1966.* प्राप्त किया12/04/2019. https://www.ohchr.org/documents/professionalinterest/cescr.pdf .
- यूनाइटेडनेशंस एजुकेशनल साइंटिफिक एंड कल्चरल आर्गेनाइजेशन. *कन्वेंशन अगेंस्ट डिस्क्रिमिनेशन इन एजुकेशन अडॉप्टेड बाई द जनरल कांफ्रेंस इन पेरिस इन इलेवेंथ सेशन– 14 दिसंबर, 1960 प्राप्त किया1 2/04/2019.* http://www.unesco.org/education/pdf/DISCRI_E.PDF .
- ऑफिस ऑफ़ द यूनाइटेडनेशंस हाईकमिश्नर फॉर ह्यूमनराइट्स. *विएना डिक्लेरेशन एंड प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन अडॉप्टेड बाई द वर्ल्ड कांफ्रेंस ऑन ह्यूमन राइट्स इन विएना ऑन 25 जून, 1993.* प्राप्त किया 13/04/2019. https://www.ohchr.org/Documents/ProfessionalInterest/vienna.pdf .
- भारत सरकार. *भारत का संविधान* 14/04/2019. https://www.india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text .
- ऑफिस ऑफ़ द यूनाइटेड नेशंस हाई कमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स. *चैलेंजेज दे फेस: ह्यूमन राइट्स विओलेशन्स कमिटेड अगेंस्ट डिफेंडर्स एंड अदर डिफीकल्टीज दे कंफ्रन्ट* 4/04/2019. https://www.ohchr.org/EN/Issues/SRHRDefenders/Pages/Challenges.aspx .

वनस्थली विद्यापीठ के अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र की कार्यप्रणाली

गौरव रानी[1]
डॉ. अजय सुराणा[2]
डॉ. प्रिया सोनी खरे[3]

शिक्षा ज्ञानार्जन की एक प्रक्रिया है। यह प्रगति का मार्ग भी है। शिक्षा के तीन मुख्य प्रकार है: औपचारिक (फॉर्मल), अनौपचारिक (इन फॉर्मल) तथा निरौपचारिक (जनॉ-फॉर्मल) या गैर-औपचारिक फिलिप कूम्बस तथा अन्य के अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि विकसित समाजों में एक नई प्रकार की शिक्षा प्रणाली का विकास किया गया है जिसे अनौपचारिक शिक्षा कहा जा सकता है। सन् 1668 में फिलिप कूम्बस ने अनौपचारिक शिक्षा की चर्चा की परंतु उसकी परिभाषा 1970 के बाद ही की गई। सामान्यत: दूर शिक्षा की प्रक्रिया को अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। यह समाचार, संपर्क कार्यक्रमों तथा जनसंचार के साधनों द्वारा प्रदान की जाती है।

अनौपचारिक शिक्षा व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में समन्वय स्थापित करना सीखाती है और सफल जीवन व्यतीत करने की योग्यता विकासित करती हैं एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी आयामों, पहलुओं को प्रभावित कर उन्हें एक निश्चित दिशा प्रदान करती है।

वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, में अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र की वर्ष 2002 में स्थापना हुई। तब से ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा और प्रशिक्षण देने के लिए घर से बाहर लाने का प्रयास किया जा रहा है। अनौपचारिक शिक्षा केंद्र की स्थापना वनस्थली की मूल भावना समाज सेवा के लिए की गयी है। अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में वनस्थली गाँव, कटनपुरा, पिल्लई, हरिपुरा के आसपास के गाँवों से महिलाओं को नि:शुल्क प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। महिलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए कभी-कभी उनके द्वारा लिखे गये लेख तथा उनके द्वारा बनाये गये कपड़ों की प्रदर्शनी लगाकर

[1] **वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान**

[2] **वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान**

[3] **वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान**

उन्हें प्रोत्साहित करने की कोशिश भी की जाती है। प्रदर्शनियों द्वारा महिलाओं को आर्थिक लाभ भी मिलता है, साथ-साथ उन्हें प्रोत्साहन भी मिलता है।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में महिलाओं को निम्नलिखित अधिगम (लर्निंग) प्रदान किया जाता है-

- साक्षर करने के लिए पढ़ने और लिखने का ज्ञान।
- आध्यात्मिकता, नैतिक मूल्यों और शिष्टाचार के बारे में सामान्य ज्ञान।
- चित्रकारी, कार्ड, बैग, दीवार के पर्दे, पर्स आदि बनाना।
- सिलाई, कढ़ाई और सिलाई मशीन का संचालन करना।
- मेंहदी, पापड़, आवेदन लिखना, राखी, आचार, मसाले आदि बनाना ।

वनस्थली के अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में सभी तरह के कार्य सिखाये जाते हैं, जैसे – सिलाई, सिलाई मशीन का संचालन, चित्रकारी, कपड़ों का पर रंग करना, खादी के कपड़े बनाना, माँडी (स्टार्च) या मण्ड लगाना आदि। केंद्र का लक्ष्य है गरीब, बेरोजगार, महिलाओं को रोजगार देना जिससे महिलाएं आत्मनिर्भर बन सकें। महिलाओं के घर जाकर इस योजना के बारे में बताना ताकि वे केंद्र में आ सके। यहाँ चल रही गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता एवं स्वरोजगार पर बल दिया जाता है। अतः शोधकर्त्री के मन में अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र के संदर्भ में अनेक प्रश्नों को जानने की जिज्ञासा हुई जैसे –

- अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कौन-कौन सी गतिविधियाँ चल रही है?
- अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र से लाभान्वित होने वाले कौन है?

अध्ययन के उद्देश्य –

- अनौपचारिक शिक्षा केंद्र की महिलाओं के नामांकन का अध्ययन करना।
- अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र की महिलाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन करना।

अनुसंधान विधि – प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के चर - अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र प्रस्तुत पर रिपोर्ट के लेखन-अध्ययन में दो प्रकार के चरों - स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर) का प्रयोग किया गया है।

- स्वतंत्र चर - अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में चलने वाली विभिन्न गतिविधियाँ।
- आश्रित चर – संबंधित प्रशीक्षक एवं महिलाओं का प्रत्यक्षीकरण।

न्यादर्श

- वनस्थली विद्यापीठ के अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कार्यरत सभी महिलाएं (81 महिलाएं) न्यादर्श के लिए चयनित की गईं।
- न्यादर्श विधि – सौद्देश्य न्यादर्शन (या प्रतिचयन/ सैम्पलिंग) विधि

प्रदत्त के स्रोत – प्रस्तुत अध्ययन में अवलोकन से प्राप्त प्रदत्तों की प्रकृति वर्णनात्मक तथा प्रत्यक्षीकरण मापनी से प्राप्त प्रदत्तों की प्रकृति आंकिक प्रकार की है।

प्रस्तुत रिपोर्ट अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया है –

1. असंचरित अवलोकन
2. स्वनिर्मित प्रशिक्षक साक्षात्कार अनुसूची
3. स्वनिर्मित प्रशिक्षणार्थी साक्षात्कार अनुसूची

प्रदत्त का विश्लेषण –

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र वनस्थली विद्यापीठ में चल रही विभिन्न गतिविधियों के बारे में संचालनकर्ता, प्रशिक्षक एवं प्रशिक्षणार्थियों का साक्षात्कार एवं अवलोकन किया गया जो इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है –

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में चल रही गतिविधियाँ

बड़ा चरखा

छोटा चरखा

माँड़ी

लूम (करघा)

संचालनकर्ता एवं प्रशिक्षकों द्वारा अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र संचालित हो रहा है। जहाँ मुख्य रूप से खादी के कपड़ों का निर्माण एवं महिला प्रशिक्षण का कार्य सिखाया जाता है।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कार्यरत प्रशिक्षकों के कार्य को जानने के लिए शोधकर्त्री ने साक्षात्कार परिशिष्ट-I के द्वारा यह पाया कि प्रशिक्षक अपने कार्य के प्रति कितने उत्साहित हैं और महिलाओं को प्रशिक्षण किस प्रकार और क्यों दिया जा रहा है? प्रशिक्षकों के प्रत्यक्षीकरण द्वारा यह प्रतिक्रिया प्राप्त हुई कि दोनों प्रशिक्षक हिमेन्द्र सिंह एवं मंजू रानी 10 वीं पास हैं। इनकी मासिक आय 9000/- रूपये है। प्रशिक्षक स्थायी रूप से कार्यरत हैं। अनौपचारिक महिला शिक्षा का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना है, यहाँ प्रतिवर्ष 10-15 महिलाएं बाद में कार्य सीखने आती हैं और बाद में वे महिलाएं अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में ही कार्य करने लगती हैं। यहाँ 120 महिलाओं को एक साथ रोजगार दिया जा सकता है लेकिन वर्तमान में केवल 81 महिलाएं कार्यरत हैं।

यहाँ मुख्य रूप से 50 चरखे, 15 लूम मशीन, 2 ताना मशीन उपलब्ध है। यहाँ महिलाएं सभी कार्यों में रुचि दिखाती हैं। अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र का मुख्य उद्देश्य ही महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना, उनकी आर्थिक दशा को सुधारना है, जिससे परिवार की आर्थिक स्थिति सुधर सके। महिलाओं को प्रोत्साहित एवं अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र के प्रोत्साहन के लिए पूर्व एवं वर्तमान मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत, श्रीमती मीरा कुमार (लोकसभा की पूर्व अध्यक्ष), पेट्रोलियम मंत्री रंजना भारती जैसे कई मंत्री यहाँ पधारे हैं और चल रहे विभिन्न कार्यक्रमों की सहायता भी की है। इस कार्य में मीडिया का भी सहयोग रहा है।

शोधकर्त्री ने अवलोकन के द्वारा पाया कि प्रशिक्षक अपने कार्यों के प्रति जागरूक हैं तथा वे महिलाओं को रुचिपूर्ण ढंग से कार्यों को सिखाते हैं। महिलाओं को कार्य सीखने में जो समस्याएं आती हैं, वे सभी की समस्याओं को सुनते हैं एवं उनका निदान भी करते हैं। अतः विश्लेषक के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रशिक्षण महिलाओं को कार्य सिखाने के प्रत्येक तरीकों को अपनाते हैं जिससे महिलाएं आसानी से कार्य सीख जाती हैं और उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।

शोधकर्त्री ने साक्षात्कार के द्वारा पाया कि अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में महिलाओं को उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर, अगर महिला विधवा है, उसे शारीरिक समस्या है, इत्यादि आधारों को देखकर प्रवेश एवं प्रशिक्षण दिया जाता है। यदि यहाँ प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद वे यहाँ

कार्य करना चाहती हैं तो कार्य भी कर सकती हैं। महिलाओं को प्रशिक्षित करने के बाद यहाँ कोई सर्टिफिकेट नहीं मिलता है लेकिन महिला को जरूरत पड़े तो उसे लेटर पैड पर लिखकर प्राप्त प्रशिक्षण का हस्तलिखित प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में प्रशिक्षण देने का समय तीन माह है। शुरूआत में तीन मास का प्रशिक्षण दिया जाता था लेकिन अब महिलाएं इस कार्य को जल्दी सीख जाती हैं। यह महिलाओं के सीखने पर निर्भर करता है कि वे कितनी जल्दी सीख लेती हैं, कभी-कभी महिलाएं आपस में एक-दूसरे से ही कार्य सीख लेती हैं। शुरूआत में लाड़ कँवर जीजी ने खादी के कपड़े बनाने का उपाय सोचा था, तभी से इस केंद्र में खादी के ही बनाये जा रहे हैं और प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में महिलाओं की नामाकंन स्थिति को जानने के लिए शोधकर्त्री ने साक्षात्कार द्वारा (प्रशिक्षकों के साक्षात्कार, लाड़ कँवर जीजी के साक्षात्कार एवं रजिस्टर के द्वारा) पाया कि अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र 2002 से चल रहा है समय केवल 15 महिला इस केंद्र में कार्यरत थी, 2003 में 17 महिला, 2004 में 22 महिला, 2005 में 28 महिला, 2006 में लगभग 32 महिला, 2007 में 38 महिला, 2008 में 45 महिला, 2009 में लगभग 50 महिला, 2010 में 61 महिला, 2013 में 66 महिला, 2014 में 56 महिला, 2015 में 62 महिला तथा वर्ष 2016 में यानी वर्तमान वर्ष समय में 81 महिलाएं अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कार्यरत है।

प्रशिक्षकों के साक्षात्कार एवं रजिस्टर से प्राप्त जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्ष 2002 से 2011 तक अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में महिलाओं के नामांकन दर में लगातार वृद्धि हुई हैं परन्तु 2012 में महिलाओं की संख्या में कुछ वृद्धि हुई तथा 2014 में नामांकन दर 2013 से भी घटकर 56 पायी गई। इस प्रकार महिलाओं की नामांकन स्थिति 2011 से 2015 तक घटती-बढ़ती रही है। किन्तु वर्तमान समय में यह संख्या 62 से बढ़कर 81 है अर्थात् अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में वर्तमान समय में 81 महिलाएं कार्यरत हैं।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में महिलाएं कब से कार्य कर रही हैं, इसके लिए शोधकर्त्री ने साक्षात्कार के द्वारा उनके कार्य के वर्ष को आधार पर उनके अनुभव एवं कार्य की निपुणता के संबंध में महिलाओं की यह प्रतिक्रिया प्राप्त हुई कि सन् 2002 से 16 महिलाएं कार्यरत हैं, सन् 2009 से 26

महिलाएं कार्यरत हैं, सन् 2012 से 5 महिलाएं कार्यरत हैं, सन् 2013 में 4 महिला कार्यरत हैं, सन् 2014 में 7 महिलाएं कार्यरत हैं, 2015 से 9 महिलाएं कार्यरत हैं, तथा 6 महिने से 6 महिलाएं कार्यरत हैं।

साक्षात्कार द्वारा शोधकर्त्री ने यह पाया कि सन् 2002 से 20 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं, 2009 से 32 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं, 2011 से 10 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं, 2012 से 6 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं, 2013 से 5 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं, 2014 से 9 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं, 2015 से 11 प्रतिशत महिलाएं एवं पिछले छह मास से 7 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं,जिसमें से 2002 से कार्यरत महिलाएं अपने कार्य में सबसे अधिक निपुण हो चुकी हैं।

अतः साक्षात्कार एवं अवलोकन के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि 2002 तथा 2008 से कार्यरत महिलाएं केंद्र में आने वाली नई महिलाओं को कार्य करने में सहयोग करती हैं एवं नवागत महिलाओं के साथ मित्रता पूर्ण रहती हैं।

उपरोक्त प्रश्न के आधार पर शोधकर्त्री ने पाया कि कम समय में कार्य सीखने वाली महिलाओं का प्रतिशत सबसे ज्यादा है। 2 मास में सीखने वाली महिलाओं का प्रतिशत सबसे कम है। 15 दिन में 4 प्रतिशत महिलाएं कार्य सीख पाई हैं।

अतः साक्षात्कार एवं अवलोकन के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि जिनकी मानसिक बुद्धि एवं शारीरिक क्षमता अधिक है वे कार्य को जल्दी सीख लेती हैं और जिनकी उम्र कम हैं वे भी कार्य को जल्दी सीख लेती हैं।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में जो महिलाएं कार्य करने आती हैं उन्हें किस कार्य में रुचि है इसका पता लगाने के लिए शोधकर्त्री ने साक्षात्कार द्वारा यह जानने की कोशिश की कि किस महिला की किस कार्य में रुचि है ताकि यह ज्ञात हो सके कि उन्हें उनकी रुचि के अनुसार उन्हें कार्य करने का अवसर मिल रहा है या नहीं। अतः शोधकर्त्री ने प्रत्यक्षीकरण द्वारा यह पाया कि 17 महिलाओं को चरखे का कार्य करना पसन्द है, माँड़ी लगाने में 13 महिलाओं को रुचि है, 39 महिलाएं सभी कार्यों में रुचि रखती हैं तथा 12 महिलाएं लूम (कपड़ा बनाने) में रुचि रखती पायी गईं।

अतः साक्षात्कार एवं अवलोकन के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि संयुक्त परिवार होने के कारण उन महिलाओं को लाभ मिल रहा है जिनके बच्चे छोटे हैं। परिवार वाले उनके बच्चों का ध्यान रख रहे हैं।

अधिकतर महिलाओं के बच्चे वनस्थली के ही विद्यालय में पढ़ रहे हैं जिससे की उन्हें भी आराम है। महिलाएं सुबह जब अपने कार्य के लिए आती हैं, अपने साथ बच्चों को भी स्कूल में छोड़ देती हैं और उनकी छुट्टी के बाद वे बच्चे केंद्र में आ जाते हैं और उनके साथ ही घर जाते हैं जिससे की बच्चे भी सुरक्षित एवं माता-पिता भी भयमुक्त रहते हैं।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में एक ही परिवार के कार्यरत सदस्यों की संख्या कितनी है यह जानने के लिए शोधकर्त्री ने साक्षात्कार द्वारा ज्ञात किया कि उनके परिवार में कितने लोग अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कार्य कर रहे हैं। प्रत्यक्षीकरण द्वारा यह पता चला कि 78 महिलाएं अपने घर से अकेले कार्य कर रही हैं एवं केवल 3 महिलाओं के घर से परिवार के और भी महिला सदस्य कार्य कर रही हैं।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कार्यरत महिलाओं को यहाँ कार्य करके क्या लाभ प्राप्त हुआ। यह जानने के लिए शोधकर्त्री ने साक्षात्कार द्वारा पता लगाया कि 81 महिलाओं को यहाँ कार्य करके जीवन में क्या परिवर्तन अनुभव हुआ? शोधकर्त्री ने प्रत्यक्षीकरण द्वारा पाया कि 71 महिलाएं ये सोचती हैं कि घर का खर्च चलाने के लिए केंद्र में कार्य करने से लाभ मिला है। 6 महिलाओं की यह सोच है कि वे यहाँ कार्य कर आत्मनिर्भर बनी हैं एवं केवल 4 महिलाएं यहाँ कार्य कर अपने आपको भय मुक्त महसूस करती हैं। वे बाहर निकलकर कार्य करना सीख रही हैं तथा भविष्य के लिए पैसे जमा कर पा रही हैं।

अवलोकन एवं साक्षात्कार के द्वारा पाया गया कि सबसे अधिक प्रतिशत 71 प्रतिशत महिलाओं को घर का खर्च चलाने में लाभ मिला है। 6 प्रतिशत महिलाएँ का आत्मनिर्भर बनने का उद्देश्य पूरा करने के लिए यहाँ कार्य कर रही हैं।

अतः अवलोकन एवं साक्षात्कार के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि महिलाओं के घर की आर्थिक स्थिति सुधारने में अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र का बहुत सहयोग रहा है। अधिकतर महिलाएं संतुष्ट है क्योंकि वे स्वावलंबी बनना और खर्चे को स्वयं वहन करना चाहती हैं।

निष्कर्ष-

वनस्थली विद्यापीठ में संचालित अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में संचालित रोजगार के प्रति जागरूकता को लेकर 81 महिलाओं से अवलोकन एवं साक्षात्कार के आधार पर पाया गया कि

महिलाएं मुख्यतः रोजगार के लिए यहाँ कार्य कर रही हैं । ये महिलाएं रोजगार के लिए यहाँ कार्य करके आत्मनिर्भर बनने के साथ-साथ अपने घर के खर्च में सहयोग कर रही हैं।

केंद्र में कार्यरत महिलाओं की शैक्षिक योग्यता 10वीं तक है तथा अनपढ़ है। सभी कार्यरत महिलाएं अपने सहयोगियों से मित्रवत् ही रहती हैं। अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में विभिन्न प्रकार के कार्य किए जाते हैं, जैसे – बड़ा चरखा, छोटा चरखा, कपड़ा बनाना, माँड़ी लगाना।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में आनेवाली महिलाएं शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के अनुसार कार्य सीखती हैं, यदि कार्य सीखने के दौरान कोई समस्या आती है तो महिलाएं आपस में एक-दूसरे का सहयोग करती हैं। इस केंद्र में कार्य करने प्रौढ़ महिलाएं अधिक संख्या में आती हैं। यहाँ पर 18 वर्ष से 45 एवं 50 वर्ष तक की महिलाएं कार्य करती हैं।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में चल रही गतिविधियों में बड़ा चरखा पर 60 प्रतिशत महिलाएं कार्य कर रही हैं अर्थात् केंद्र में सबसे अधिक चरखे की मशीनें हैं। महिलाओं की मासिक आय उनके प्रतिदिन के कार्य पर निर्भर करती है। महिलाएं अधिक से अधिक कार्य करना चाहती हैं ताकि ज्यादा आय प्राप्त कर सकें। केंद्र में कुछ महिलाएं अपने बच्चों को भी साथ लाती हैं। केंद्र ने इसकी व्यवस्था इसलिए की है क्योंकि अनौपचारिक शिक्षा केंद्र में 4 प्रतिशत महिलाऐं ऐसी हैं जिनके साथ अन्य सदस्य भी केंद्र में कार्य करने आते हैं। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने में केंद्र ने एक अच्छा अवसर दिया है।

अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में कार्य करने से महिलाओं को विविध प्रकार के लाभ हुए हैं। घर का खर्च उठाने के लिए 71 प्रतिशत महिलाएं कार्य कर रही हैं। अतः महिलाओं के घर की आर्थिक स्थिति सुधारने में केंद्र का बहुत सहयोग रहा है। अधिकतर महिलाएं संतुष्ट हैं क्योंकि वे स्वावलंबी बनना और अपने खर्चे को स्वयंवहन करना चाहती हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि प्रशिक्षक एवं महिलाओं के प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर मूलतः महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना, उन्हें घर से बाहर निकाल कर रोजगार के लिए प्रेरित करना तथा उन्हें एहसास दिलाना कि समाज के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनौपचारिक महिला शिक्षा केंद्र में चल रही गतिविधियों के प्रति महिलाओं में दृढ़ इच्छा शक्ति एवं प्रबल अभिरुचि है।

संदर्भ ग्रन्थ –

- भटनागर, सुरेश (2011) :– "आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं", आर. लाल बुक डिपो।
- नारायण, लक्ष्मी, डॉ. कुमार, प्रदीप (2009-10):- "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद।
- सोनी, दयालचन्द (1998) :–" अनौपचारिक शिक्षा का सही स्वरूप" वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
- गुप्त, रामबाबू (1995-96) :– "भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामाजिक समस्या समस्याएं", रतन प्रकाशन मन्दिर।
- पाण्डेय, के. वी. (2008) :–"शैक्षिक अनुसंधान" विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- कौल, लोकेश (2014) :– " शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली" विकास पब्लिकेशन हाउस नोएडा।
- कपिल, एच. के. (2015) :– "अनुसंधान विधियाँ", एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- सुराणा, अजय (2005) : "शैक्षिक विकास की प्रवृत्ति" पॉपुलर बुक डिपो, जयपुर।

वेबसाइट्स-

- https://books.google.co.in>booksdate-29/11/016
- www.banasthali.org>home>lower.menu29/11/016
- Infed.org>mobi>informal.nonformal……
- www.aimss.in72016/05>paper-6

उत्तराखंड राज्य का संस्कृत शिक्षा में योगदान

संतोष कुमार काण्डपाल[1]

भूमिका

उत्तर-प्रदेश के 13 हिमालयी जिलों को लेकर 9 नवम्बर 2000 को भारतीय गणराज्य के 27 वें राज्य के रूप में उत्तरांचल नए राज्य का गठन किया गया। 1जनवरी 2007 से इसका नाम उत्तराखंड कर दिया गया है। उत्तराखंड राज्य भारतवर्ष का एक पर्वतीय राज्य है। यह हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं से निर्मित प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण राज्य है।

क्षेत्रफल –

उत्तराखंड राज्य का कुल क्षेत्रफल लगभग 53,483 वर्ग किलोमीटर है अर्थात यह भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 1.6 प्रतिशत है। यह क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का 18वाँ राज्य है। इस राज्य में गढ़वाल एवं कुमाऊँ दो मंडल हैं।

गढ़वाल मंडल के जिले हैं– (1) उत्तरकाशी (2) चमोली (3) टिहरी गढ़वाल (4) देहरादून (5) पौड़ी (6) रुद्रप्रयाग (7) तथा हरिद्वार

कुमाऊं मंडल के जिले हैं :– (1) अल्मोड़ा (2) उधमसिंह नगर (3) चम्पावत (4) नैनीताल (5) पिथौरागढ़ तथा (6) बागेश्वर ।

उत्तराखंड राज्य के राज्य चिह्न एवं प्रतीक –

राज्य चिह्न –

शासकीय कार्यों के लिए स्वीकृत राज्य चिह्न में उत्तराखंड के भौगोलिक स्वरूप की झलक देखने को मिलती है। इस चिह्न में गोलाकार मुद्रा में तीन पर्वत चोटियों की श्रृंखला और उसके नीचे गंगा की चार लहरों को दर्शाया गया है। बीच में स्थित चोटी अन्य दोनों चोटियों से ऊँची हैं और उसके मध्य में अशोक की लाट अंकित है। अशोक की लाट के नीचे मुंडकोपनिषद से लिया गया वाक्य 'सत्यमेव जयते' लिखा है।

[1] **शोध छात्र (शिक्षा शास्त्रविभाग), श्री लालबहादूर शास्त्रीराष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई-दिल्ली**

राज्य पशु –

उच्च हिमालय में पाया जाने वाला कस्तूरी मृग को राज्य का राजकीय पशु माना गया है।

राज्य पक्षी –

मोनाल पक्षी को राज्य का राजकीय पक्षी माना गया है। यह पक्षी उच्च हिमालयों पर्वत शिखरों में पाके या जाने वाला दुर्लभ श्रेणी का पक्षी है ।

राज्य पुष्प –

ब्रह्मकमल को राज्य पुष्प माना गया है। यह पुष्प ऊँचे हिम से ढकी कठोर चट्टानों में उत्पन्न होता है। यह 3600 मी. से 5500 मी. तक की ऊँचाई पर पाया जाता है।

राज्य वृक्ष –

उत्तराखंड राज्य का राज्य वृक्ष बुराँश को माना जाता है। इस सदाहरित वृक्ष में लाल या श्वेत सुन्दर मनोहारी पुष्प खिलते हैं।

उत्तराखंड में उच्च शिक्षा –

उत्तराखंड में उच्च शिक्षा के लिए राज्य-गठन से पूर्व 6 विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई थी। जिनके नाम इस प्रकार हैं –

1. तकनीकी विश्वविद्यालय, रूड़की
2. कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
3. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल
4. पन्तनगर विश्वविद्यालय, पन्त नगर, ऊधमसिंह नगर
5. गुरूकुल कांगड़ी मानित विश्वविद्यालय, हरिद्वार
6. एफ. आर. आई. मानित विश्वविद्यालय, देहरादून

राज्यगठन के बाद उच्च शिक्षा के लिए सरकारी स्तर के 6 और निजी स्तर के 7 विश्वविद्यालयों को मिलाकर 13 विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। अब राज्य में कुल मिलाकर 19 विश्वविद्यालय हैं।

उत्तराखंड में मानित विश्वविद्यालय –

1. गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
2. पतंजलि योगपीठम्
3. एफ.आर.आई. विश्वविद्यालय
4. देवसंस्कृति विश्वविद्यालय
5. स्वामीराम विद्यापीठ
6. ग्राफिक एरा आइ. टी. विश्वविद्यालय

उत्तराखंड में चर्चित विश्वविद्यालय –

1. गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्त नगर, 1960
2. गुरूकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
3. कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, 1973
4. हेमवतीनन्दन बहुगुणा केंन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर 1973
5. तकनीकी विश्वविद्यालय रुड़की, रु (2001 से यह आई. आई. टी, रुड़की में परिवर्तित हो गया)
6. उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार 2005
7. पतंजलि योगपीठम्, हरिद्वार 2006

उत्तराखंड राज्य का सांस्कृतिक दृष्टिकोण – भारत की उत्तर दिशा में सिधत उत्तराखंड एक अभिनव प्रदेश के रूप में विख्यात है। प्राचीनकाल से ही जप-तप की साधना से अभिभूत बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, अलकनन्दा, भागीरथी, पंचप्रयाग, देवप्रयाग, ऋषिकेश, हरिद्वार, नन्दादेवी, बाराही, जागेश्वर, बागेश्वर, मानिला, दूनागिरी, विन्सर, झूलादेवी, गणनाथ, कटारमल, गिरिजादेवी, नयनादेवी आदि अनेक तीर्थों के रूप में परम पवित्र यह भूभाग सुशोभित है। विद्वानों का अभिमत है कि इन पवित्र स्थलों के दर्शनमात्र से ही समस्त पापों का नाश हो जाता है।

राज्य में संस्कृत शिक्षा हेतु आधुनिक दृष्टिकोण – उत्तराखंड राज्य में संस्कृत शिक्षा विकास के लिए वर्तमान समय में अनेक संस्थाएं कार्य कर रही हैं जिनमें प्रमुख रूप से उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार, देव संस्कृति विश्वविद्याल, हरिद्वार, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार तथा पतंजलि योगपी। हरिद्वार का विशेष योगदान है। इन संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

1. **उत्तराखंड संस्कृत** विश्वविद्यालय हरिद्वार – भारत सरकार के संस्कृत आयोग (1956-57) की अनुशंसा के आधार पर उत्तराखंड प्रदेश में संस्कृत शिक्षा के उन्नयन के लिए **उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना 21 अप्रैल 2005 को की गई**। इस विश्वविद्यालय में संस्कृत शिक्षा विकास हेतु अध्ययन-अध्यापन के विषय क्षेत्रों को 5 संकायों में विभक्त किया गया है जिनका क्रमानुसार विवरण इस प्रकार है- **वेद-वेदांग संकाय, साहित्य-संस्कृति संकाय, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय, दर्शन संकाय तथा शिक्षा शास्त्र संकाय**। संस्कृत भाषा के संरक्षण, संवर्धन और उन्नयन तथा आधुनिक एवं प्राचीन ज्ञान विज्ञान के समन्वयन के साथ ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए यह विश्वविद्यालय सक्रिय है।

2. **देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार** – उत्तरांचल विधानसभा ने 22 मार्च 2002 को हरिद्वार में सर्वसम्मति से देव संस्कृति विश्वविद्यालय स्थापित किए जाने का एक विधेयक पारित किया। निजी क्षेत्र का यह विश्वविद्यालय शांतिकुंज में स्थापित किया गया है। इसका संचालन वेदमाता गायत्री ट्रस्ट द्वारा किया जाता है। इस विश्वविद्यालय में **साधना, शिक्षा, स्वास्थ्य** और **स्वावलंबन** नामक चार संकाय खोले गए हैं।

3. **गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार** – यह देश का एकमात्र ऐसा विश्वविद्यालय है जो प्राचीन भारतीय विद्याओं के साथ आधुनिक वैज्ञानिक विषयों यथा प्रबन्ध प्रौद्योगिकी तथा कम्प्यूटर में उच्च शिक्षा प्रदान कर रहा है। यहाँ आज भी गुरूकुलीय आश्रम व्यवस्था है जिसके तहत स्नातक शिक्षण का काल 15 वर्ष का है। प्रथम 12 वर्ष तक विद्यालय में आश्रम व्यवस्था में रहना पड़ता है। इसके पश्चात् छात्र स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम पूर्ण करता है। इसका शिक्षण कार्य 6 संकायों में समाहित है। इसके प्राच्य विद्या संकाय के अन्तर्गत वेद, संस्कृत, दर्शन, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति तथा योग की उच्च शिक्षा दी जाती है। इन विषयों में शोध की भी व्यवस्था है।

4. **पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार** – राज्य सरकार ने 25 मार्च 2006 को एक प्रस्ताव द्वारा हरिद्वार स्थित पतंजलि योगपीठ को मानित विश्व विद्यालय का दर्जा प्रदान किया और स्वामी रामदेव को इसका आजीवन कुलाधिपति नामित किया।

5. **राज्य में संस्कृत शिक्षा विकास हेतु प्राचीन दृष्टिकोण** –भारत की उत्तर दिशा में स्थित देव भूमि उत्तराखंड को कौन नहीं जानता? महर्षि वेदव्यास ने इसी देवभूमि में पुराणों की रचना की थी, वीरों की आध्यात्मिक भूमि, गंगा –यमुना तथा सरस्वती आदि नदियों की उद्गमस्थली, कवियों की कविता-स्थली तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की वीरभूमि के रूप में विख्यात है। पर्वतों का राजा हिमालय मणिमुकुट के समान इस राज्य की शोभा बढ़ा रहा है। इसी **हिमालय** की विशेषता का वर्णन करते हुए **कविकुलगुरु कालिदास** ने अपने **कुमारसम्भवम्** नामक महाकाव्य का शुभारम्भ इस प्रकार किया है –

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

अर्थात् उत्तर दिशा में हिमालय नाम से अभिभूत देवताओं की आत्मा (निवास करने योग्य स्थान) पर्वतों का राजा (स्थित) है जो पूर्व और पश्चिम दिशा में स्थित दोनों समुद्रों में पृथ्वी के मापक पैमाने की तरह प्रविष्ट होकर खड़ा है अर्थात् दोनों समुद्रों के बीच में स्थित होकर पृथ्वी की गहराई को माप रहा है।

वस्तुतः कालिदास का उत्तराखंड से गहरा संबंध रहा है अर्थात् यह कह सकते हैं कि कालिदास को उत्तराखंड की भूमि अत्यधिक प्रिय थी। इसलिए उन्होंने अपने महाकाव्यों में उत्तराखंड का विशेष वर्णन किया है। मेघदूत में कवि ने अलकापुरी का जो वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि कालिदास उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित थे। क्योंकि किसी भी क्षेत्र विशेष का वर्णन वही कर सकता है जो उस क्षेत्र से हो या उस क्षेत्र विशेष की जानकारी रखता हो। इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास का जन्मस्थान उत्तराखंड में स्थित है। मेघदूत में जिस अलकापुरी का वर्णन महा कवि कालिदास ने किया है वर्तमान समय में यह क्षेत्र चमोली जिले में अवस्थित है। इसी प्रकार महाकवि ने रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में जो देवदारू वृक्ष का वर्णन किया है वह भी उत्तराखंड राज्य से ही संबद्ध है। यथा –

अमुं पुरः पश्यसि देवदारूं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ।

यो हेमकुम्भस्तननिः सृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः॥

अर्थात् सामने उस देवदारु वृक्ष को देख रहे हो न? उसे भगवान शंकर जी ने अपने पुत्र के समान माना है जो कुमार कार्तिकेय की माता पार्वती के सोने के घटरूपी स्तनों से निकले हुए दूध रूपी जल के स्वाद को जानने वाला है।

इन्हीं देवदारू वृक्षों के आधार पर जो द्वादश ज्योतिर्लिगों का वर्णन किया गया है उनमें एक नाम नागेश ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रसिद्ध है। यथा नागेशं दारूकावने। दारूकावने अर्थात् देवदारू का वन। इस आधार पर कुछ लोगों के मतानुसार उत्तराखंड के अल्मोड़ा जनपद से 17 मील उत्तर पूर्व में योगेश (जागेश्वर) शिवलिंग ही नागेश ज्योतिर्लिंग है।

वस्तुतः यह स्थान पूर्व बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमती द्वारका से ईशान कोण में बारह-तेरह मील की दूरी पर है। कुछ लोग विगत आन्ध्र राज्य के अन्तर्गत औढ़ाग्राम में स्थित शिवलिंग को नागेश्वर ज्योतिर्लिंग मानते हैं।

इसी प्रकार हिमालय में स्थित केदारनाथ से तो सभी परिचित हैं फिर भी विशेष जानकारी के लिए इसका वर्णन इस प्रकार है – हिमालये तु केदारम् अर्थात् हिमालय में स्थित जो ज्योतिर्लिंग है वह केदारनाथ के रूप में प्रसिद्ध है। यह स्थान उत्तराखंड में श्रीकेदारनाथ हिमालय के केदार नामक श्रृंग पर स्थित है। शिखर के पूर्व की ओर अलकनंदा के तट पर श्रीबदरीनाथ अवस्थित है और पश्चिम में मन्दाकिनी के किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वार से 150 मील और ऋषिकेश से 132 मील दूर है।

केदारनाथ उत्तराखंड के ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष के हिंदुओं के लिए सम्माननीय तीर्थ स्थल है। यहाँ भगवान शिव का प्राचीन मन्दिर है जो बारहवीं सदी के पूर्व निर्मित किया गया है। केदारनाथ हिन्दुओं के चार धामों में से एक है। केदारनाथ मन्दिर के गर्भगृह में शिलालेख उत्कीर्ण हैं तथा इस के द्वार पर मूर्तियाँ भी खुदी हैं। इस मन्दिर को रुहेलों द्वारा लूटा गया था। शीतकाल में केदारनाथ का मन्दिर दर्शनार्थियों के लिए बन्द रहता है। ऐसा कड़ाके की ठण्ड तथा बर्फ से आच्छादित होने के कारण किया जाता है।

उत्तराखंड में न केवल भारतवर्ष से अपितु विदेशों से भी बहुत अधिक संख्या में लोग प्रतिवर्ष आते हैं। को पतित-पावनी मोक्ष-दायिनी पापनाशनी माँ गंगा की पूजा-अर्चना तथा स्नानादि के लिए

आते हैं तो कई मठ-मन्दिरों तथा चारों धामों की यात्रा के लिए आते हैं तो कोई मसूरी, नैनीताल, कौसानी आदि प्राकृतिक क्षेत्रों का सौन्दर्य निहारने के लिए यहाँ आते हैं।

धार्मिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के कारण उत्तराखंड राज्य का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। उत्तराखंड के प्रायः सभी देवक्षेत्रों का वर्णन संस्कृत साहित्य में समुपलब्ध है। कुमांऊ मंडल में प्रमुख रूप से अल्मोड़ा जनपद में नन्दादेवी मन्दिर, मानिला मन्दिर, चम्पावत में पूर्णागिरी, बाराही, वरदायिनी, काली आदि मन्दिर तथा पिथौरागढ़ जनपद में पातालभुवनेश्वरी तथा काली देवी के भूगर्भ में अवस्थित प्रसिद्ध मन्दिर हैं। इस प्रकार उत्तराखंड राज्य का सुदीर्घ इतिहास समुपलब्ध होता है।

नन्दादेवी, वनरांचल, गंधमादन, तुंगोच्च शिखर, चन्द्रशिला, गणेश पचंद, नन्दा पर्वत, यक्षकूट, महिष मंडल, रेणुकाद्रि, श्रीमुख, नीलपर्वत, बिल्वपर्वत, मलय पर्वत, भृगुतुंग शिखर, संकर नन्दन, चौखम्बा इत्यादि पर्वतों से आच्छादित भारत के उत्तर दिशा में उत्तराखंड प्रदेश शोभायमान हो रहा है।

कनखल, मायापुर, हरिद्वार, देव प्रयाग, सौम्यकाशी, कुब्जाम्रक तीर्थ (ऋषिकेश), लक्ष्मणतीर्थ, इन्द्रप्रयाग, श्रीक्षेत्र, रूद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, गोपेश्वर, विष्णुप्रयाग, बद्रिकाश्रम, तुंगनाथ, रुद्रालय, कल्पेश्वर, मेनकाक्षेत्र, केशव प्रयाग, गंगोत्री, यमुनोत्री, कालीमठ, पंचकेदार, पंचबदरी आदि परम पुनीत पावन तीर्थों से युक्त यह भूमि देवताओं की पवितस्थली, कवियों की कर्मभूमि तथा शंकरादि देवों की क्रीडाभूमि रही है। इस क्षेत्र के बारे में मास्टर रोहित चौहान नामक बालकवि ने जो गीत प्रस्तुत किया है वह काफी सराहनीय है जिसके बोल इस प्रकार है :

ऋषि-मुनियों की तपोभूमि, पाण्डवों की कर्मभूमि।

देवि-देवतों का वास यखि छा, जन रंगत मेरा उत्तराखंड

मा छा उन रंगत कखि और नि छा.....

उत्तराखंड का सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद से प्राप्त होता है, जिसमें इस क्षेत्र को देवभूमि एवं मनीषियों की पूर्ण भूमि कहा गया है। वेदों के अलावा इसका उल्लेख उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों, रामायण तथा महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों से भी प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में इस क्षेत्र को पुण्यभूमि, ऋषिभूमि तथा पवित्र क्षेत्र कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में यहाँ उत्तर-कुरूओं का निवास होने के

कारण इस क्षेत्र के लिए उत्तर-कुरु शब्द का प्रयोग किया गया है। स्कन्द पुराण में पाँच हिमालयी खंडों (नेपाल, मानसखंड, केदारखंड, जालंधर एवं कश्मीर) का उल्लेख है जिनमें से दो खंडों (मानसखंड और केदारखंड) का संबंध वर्तमान उत्तराखंड राज्य से है। स्कंद पुराण में मायाक्षेत्र (हरिद्वार) से हिमालय तक के विस्तृत क्षेत्र को केदारखंड (गढ़वाल क्षेत्र) तथा नन्दादेवी पर्वत से लेकर कालागिरी तक के क्षेत्र को मानसखंड (वर्तमान कुमांऊ क्षेत्र) कहा गया है। नन्दादेवी पर्वत इन दोनों खंडों की विभाजन रेखा पर स्थित है। पुराणों में मानसखंड एवं केदारखंड के संयुक्त क्षेत्र को उत्तर-खंड, ब्रह्मपुर एवं खसदेश आदि नामों से संबोधित किया जाता है। पालिभाषा में बौद्धसाहित्य के ग्रन्थों में उत्तराखंड क्षेत्र के लिए हिमवन्त शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्राचीन काल में इस क्षेत्र में बद्रिकाश्रम और कण्वाश्रम नामक दो प्रसिद्ध विद्यापीठ थे। इनमें से कण्वाश्रम दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम-प्रसंग के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसी आश्रम में चक्रवर्ती सम्राट भरत का जन्म हुआ था जिनके नाम पर अपने देश का नाम भारत पड़ा। महाकवि कालिदास ने अपने नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् की रचना मालिनी नदी के तट पर स्थित इसी कण्वाश्रम में की थी। वर्तमान में इस स्थान को चौकाघाट कहा जाता है।

उत्तराखंड राज्य का आविर्भाव नाथ सम्प्रदाय से माना जाता है। पुराणों और शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तराखंड के सर्वप्रथम आचार्य गुरू गोरखनाथ हैं। गोरखनाथ जी का यह आश्रम मन्दाकिनी के निकट गौरीतीर्थ में अवस्थित है । गोरखनाथ का जीवनकाल दसवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम भाग तथा विक्रमी संवत् के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी स्वीकार किया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथसम्प्रदाय नामक ग्रन्थ में तथा कल्याणी मलिक ने अपनी पुस्तक नाथसम्प्रदाय में धर्म एवं साधना प्रणाली में नौ नाथों के वर्णन के साथ उनके उत्तराखंड में प्रवासादि के बारे में विस्तृत वर्णन किया है।

संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में अलंकृत महाकवि कालिदास ने भी अपने काव्य में उत्तराखंड का विशेष वर्णन किया है। यथा –

स कृत्तिवासास्तपसेयतात्मा, गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारुः।

प्रथं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धिर्किञ्चित्क्कणत्किन्नरमध्युवासः॥

अर्थात् गज चर्म को धारण करके जितेन्द्रिय शंकर भगवान तपश्चर्या करने के लिए हिमालय के किसी रमणीक शिखर पर रहा करते थे जहाँ भागीरथी के जल प्रवाह से सींचे हुए देवदारु के बहुत से वृक्ष थे, चारों तरफ कस्तूरी मृगों की सुगन्धि थी तथा किन्नर मिथुन सर्वदा गाया करते थे। इससे यह पता चलता है कि कालिदास ने कुमारसम्भव की रचना हिमालय से लगे उत्तराखंड में की होगी। इसी प्रकार महाकवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल में इस उत्तराखंड की भूमि को तपोभूमि कहा है। जिसका वर्णन इस प्रकार है –

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने,

तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया।

ध्यानं रत्नशिलातलेषु विवुधस्त्रीसन्निधौ संयमौ,

यत्काञ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी॥

अर्थात् जिनमें ये कल्पवृक्ष विद्यमान हैं ऐसे वन में ये ऋषिजन वायुमात्र से ही प्राणों की वृत्ति चलाते हैं। स्वर्ण कमलों के पराग से पीले जल में धर्माचरण के लिए स्नान किया करते हैं तथा रत्नशिलातलों पर ध्यान लगाते हैं। देवांगनाओं के समीप रहने पर भी संयम रखते हैं। दूसरे मुनिजन तप के द्वारा जो चाहते हैं उनके बीच में रहकर ये तप करते हैं। उपरोक्त श्लोक के निष्कर्ष द्वारा कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल को आधार मानकर उत्तराखंड का जो वर्णन किया है उससे इस प्रदेश को तपोभूमि का गौरव प्राप्त हैं। इसी प्रकार कालिदास ने मेघदूत के माध्यम से जो अलकापुरी (वर्तमान चमोली) का वर्णन किया है वह भी उत्तराखंड की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करता है। जो इस प्रकार है-

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्त्रस्तगंगादुकूलां, न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यते कामचारिन्।

या वः काले बहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना, मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्॥

अर्थात् इच्छा के अनुसार विचरण करने वाले हे मेघ! जैसे प्रियतम की गोद में शिथिल वस्त्र वाली कामिनी रहती है उसी प्रकार प्रणयी के समान कैलास पर्वत के ऊर्ध्वभाग में वस्त्र के समान बहने वाली गंगा से युक्त अलकापुरी को देखकर तुम यह बात नहीं जानोगे? (जान ही जाओगे) जैसे अभिमान

न करने वाली स्त्री मोतियों के समूह से गुम्फित अलकों को धारण करती है उसी तरह सात भवनों से युक्त वह (अलका) वर्षाकाल में जल की वृष्टि करने वाले मेघसमूह को धारण करती है।

इसमें महा कवि ने अलकापुरी का जो मार्मिक वर्णन किया है वह संप्रति चमोली जिले में स्थित है। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास को उत्तराखंड से विशेष लगाव था इसी कारणवश उन्होंने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर उत्तराखंड राज्य का मनोहारी वर्णन किया है जिससे इस क्षेत्र का आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक महत्व प्रकट होता है। आधुनिक पाठ्यपुस्तकों में भी उत्तराखंड राज्य की झलक देखने को मिलती है। यथा-

हिमाद्रेः संभूता विहरसि तदङ्केः हिममये,

ततोभूमिं याता विचरसि सुहासा समतले।

पुनासि त्वं लोकान् प्रवहसि समुद्रं प्रति सदा,

अहो दोव्ये गंगे! भवतु सुखदं नो तव जलम्॥

न जाने किं पुण्यं फलितमधुना नो भगव*ति,*

प्रियः देशो जातस्तव जलकणैर्नष्टकलुषः।

हरिद्वारं काशीं तव तटमहत्त्वं कथयतः,

प्रयागस्तीर्थानां पतिरतुलनीयस्तव तटे॥

इसी प्रकार गढ़वाल के प्रसिद्ध लेखक बालकृष्ण भट्ट ने अपनी पुस्तक **कालिदास जन्मभूमि विलास** में ऋषि-मुनियों के आश्रमों तथा उनके उत्तराखंड में निवास स्थान आदि का विस्तृत वर्णन किया है। डॉ. प्रेमदत्त चमोली ने अपनी पुस्तक गढ़वाल को संस्कृत साहित्य की देन में इन ऋषि-मुनियों के आश्रमों का वर्णन इस प्रकार किया है- "गन्धमादन पर्वत पर कश्यप (कण्व) और चरम नामक आचार्यों के आश्रम थे। कपिल, दक्ष, सनत्कुमारों के हरिद्वार में, वशिष्ठ-अरून्धती का हिमदाश्रम के सप्तपुरी के नीचे मध्य शैल-पर्वत पर, मनु और जमदग्नि के उत्तरकाशी में, गर्गाचार्य का द्रोणगिरी में, मनु का माणा में, पतंजलि का ऋषिकेश के निकट तपोवन में, अगस्त्य और गौतम का मन्दाकिनी के निकट, विश्वामित्र का उपज्योतिषपीठ तपोवन में, पाराशर का यमुनोत्री में, भरत और

परशुराम का उत्तरकाशी में, भृगु ऋषि का केदारकाण्ठा के समीप और वाल्मीकि का पौड़ी के समीप शीतोस्यूँ आश्रम, मरीचि का अलकापुरी (वर्तमान चमोली) के समीपवर्ती प्रदेश में था।" इन ऋषि महर्षियों के आश्रमों का उद्देश्य केवल तपस्या तक ही सीमित नही था अपितु इनका उद्देश्य वेद, व्याकरण, साहित्य, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद इत्यादि का अध्ययन-अध्यापन भी था। ये सभी आश्रम न केवल पूजा-पाठ तक ही सीमित नहीं थे अपितु आधुनिक विद्यापीठ सदृश शिक्षणालय और गुरूकुल भी थे।

निष्कर्ष –

उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तराखंड राज्य में संस्कृत शिक्षा का विकास अनादिकाल से ही सुचारु रुप से होता चला आया है। अब जरूरत है संस्कृतरूपी इस कल्पवृक्ष के भाषा तथा साहित्यरूपी शाखाओं के संरक्षण तथा संवर्धन की जिससे लोग संस्कृत भाषा और साहित्य तथा प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के आधार पर उच्च आदर्शों का निर्माण करके मूल्यआधारित चारित्रिक गुणों से युक्त जीवन का सुचारु रूप से निर्वहन कर सकें। अतः हमें भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को पहचानते हुए वर्तमान में इनकी आवश्यकता तथा भविष्य में इनके संरक्षण संबंधी विचारधारा की ओर आगे बढ़ना होगा जिससे संस्कृत भाषा तथा साहित्य की गंगारूपी धारा स्वतः ही अविरल रूप से प्रवाहित होती रहेगी।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. पाण्डेय, प्रद्युम्न (1990) कुमार सम्भवम् चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी। पृ.1 तथा पृ. 21
2. मिश्र, श्रीहरगोविन्द (वि. सं.2072) रघुवंश महाकाव्यम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान। पृ.44
3. स्तोतरत्नावली (सं.2072) गीताप्रेस गोरखपुर। पृ.36
4. जोशी, घनश्याम (2011) उत्तराखंड का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाश बुक डिपो बरेली। पृ. 234
5. त्रिपाठी, केशरीनन्दन (2011-12) उत्तराखंड- एक समग्र अध्ययन, बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद। पृ.31-32

6. शर्मा, राममूर्ति (1984) अभिज्ञानशाकुन्तलम् ईस्टर्न बुक लिंकर्स। पृ.258
7. रेग्मी, आचार्य श्री शेषराज शर्मा (2013) मेघदूतम् चौखम्बा, विद्याभवन वाराणसी। पृ.133
8. शेमुषी, उत्तराखंड विद्यालयीय-शिक्षा एवं परीक्षा परिषद् (2009) रामनगर, नैनीताल
9. चमोली, डॉ. प्रेमदत्त गढ़वाल को संस्कृत साहित्य की देन। पृ.24-25

रामचरितमानस में निहित मूल्य

अभय तिवारी[1]

भारतीय संस्कृति में रामकथा को जन-जन में लोकप्रिय बनाने में तुलसीदास का बहुत योगदान है। रामकथा भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता का प्रबलसूत्र रही है। तुलसी के काव्यों में न केवल भगवद्भक्ति बल्कि इसके साथ मूल्यों की भी बात है। तुलसीकृत राम चरित मानस मानवजीवन को समुन्नत बनाने वाले नैतिक मूल्यों का अक्षय भण्डार है अपने आराध्य भगवान राम के समान तुलसी दास ने अपने काव्य में सर्वत्र मर्यादा का निर्वाह किया है। तुलसी ने राम को शील, शक्ति व सौन्दर्य का समन्वित रूप मानकर मानो साक्षात धर्म को मूर्त रूप में दिखाने का प्रयास किया है। महर्षि बाल्मीकि कृत रामायण से लेकर वर्तमान समय तक के साहित्यकारों ने भिन्न-भिन्न उपमाओं, अंलकारों, कथा-प्रसंगों आदि से राम के चरित्र का वर्णन किया है। अध्यात्म रामायण, आंनद रामायण, भुशुंडि रामायण, कंब रामायण आदि ग्रंथों द्वारा भी राम कथा का व्यापक प्रचार हुआ है, परन्तु राम कथा को जो प्रसिद्धि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा मिली, वह किसी अन्य के द्वारा नहीं मिल पाई ।

तुलसीदास के जीवनवृत्त के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उनका समय संवत् 1554, 1560, 1558, 1600 आदि विभिन्न विद्वानों ने बताए हैं। यही बात उनके जन्म स्थान के विषय में है। राजापुर, सूकरखेत तथा सोरों के विषय में विद्वानों ने दावा किया है। उनके बारे में अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य दोनों मिलते है। अन्तः साक्ष्य तुलसीदास कृत रचनाएं हैं और बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत स्वामी गोकुलनाथ द्वारा लिखित दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, नाभादास का भक्तमाल, बाबा वेणी माधवदास कृत भक्तमाल की टीका प्रमुख हैं। जनश्रुति के अनुसार पं. रामगुलाम द्विवेदी ने तुलसी का जन्म संवत् 1589 माना है तुलसी का मूलनाम रामबोला था। उनके माता-पिता का नाम क्रमशः हुलसी और आत्माराम दुबे था।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल में सगुण भक्ति के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। वे प्रकांड विद्वान, रचनाकार, आदर्शवादी, भारतीयता के उन्नायक तथा अद्भुत समन्वयकारी थे। जो साहित्य हर समय प्रासंगिक हो वास्तव में वही चिरंतन, कालजयी तथा अमर

[1] **शोधछात्र (शिक्षा शास्त्र विभाग), लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-110016**

साहित्य हैं। लोकनायक तुलसीदास सिर्फ़ कवि ही नहीं बल्कि सामाजिक चेतना के अग्रदूत थे। अपनी कालयजी रचना रामचरितमानस से उन्होंने समाज को एक सूत्र में आबद्ध करने का कार्य किया हैं।

रामचरितमानस तुलसीदास की अद्‌वितीय कृति है I इसकी रचना जनश्रुति के अनुसार संवत् 1631 को रामनवमी के दिन प्रारंभ हुई थी। यह रचना अवधी में लिखी गई है। यह एक चरित काव्य है जिसमें राम का संपूर्ण जीवन वर्णित हुआ हैं । इसमें कथा और काव्य दोनों के गुण समान रूप से मिलते हैं। इस काव्य के नायक कवि के आराध्य भी हैं, अतः मानस 'चरित' और काव्य होने के साथ-साथ कवि की भक्ति का प्रतीक भी है। गोस्वामी तुलसीदास का नाम हिन्दी साहित्य जगत में अति सम्मान से लिया जाता है। तुलसी ने मानस का सृजन ऐसे काल में किया जब भारतीय समाज अनेक विघटनशील प्रक्रियाओं से गुजर रहा था। तुलसी के काल में समाज में विभिन्न अंतर्विरोधी प्रवृत्तियाँ एवं विसंगतियां पनप रही थीं। ऐसे समय तुलसी के समक्ष जाति के अस्तित्व का, भारतीय संस्कृति की रक्षा का तथा धर्म को आस्था और विश्वास की भूमि पर खड़ा करने का प्रश्न था। तुलसी ने मानस द्‌वारा युग बोध का संदेश दिया। तत्कालीन समाज में जो रचनात्मक ऊर्जा गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से आई, उस से तुलसी और मानस की प्रासंगिकता और बढ़ जाती हैं । रामचरितमानस के श्रोता-वक्ता चार हैं। ग्रन्थ के अन्त तक उनके उल्लेख प्राप्त होते रहते हैं। ये हैं - शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भारद्‌वाज, काकभुशुंडि-गरूड़ और तुलसी तथा उनके पाठक, इन चारों का उल्लेख तुलसी ने स्वयं भी कर दिया हैं-

सुठि, सुंदर, संवाद वर विरचे बुद्‌धि विचारि ।

तेइ एहि पावन, सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥

तुलसीदासकृत रामचरितमानस का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उनका यह महाकाव्य इन शाश्वत जीवनमूल्यों का आकाशदीप है। मानस वह युगवाणी है जो आधुनिक काल में भी उर्ध्वगामी जीवनदृष्टि एवं व्यवहार धर्म का संदेश देता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार बालकांड से लंकाकांड तक रामचरितमानस लोकमंगल की साधनावस्था का काव्य हैं और उत्तरकांड सिद्‌धावस्था का । राम का वनवासकाल में सामान्य जनों के सम्पर्क में आकर उनके दुःख सुख का साथी बनना, धरती को अन्यायकारी आसुरी शक्तियों से मुक्त करने का संकल्प व संघर्ष, सबके प्रति सम्यक् आचरण का निर्वाह स्रोते। एक आदर्श राजा के रूप में राम तथा एक आदर्श राज्य के रूप में रामराज्य

की परिधि में व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य और विश्व का कल्याण समाविष्ट है जहाँ धर्म की संकुचित अवधारणा नहीं वरन् सत्य ही धर्म हैं।

"धरम न दूसर सत्य समाना"

तुलसी भारतीय साहित्य के एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं, वह कलिकाल के वाल्मीकि हैं। नाभादास ने अपने भक्तमाल में इसके संबंध में कहा है- "कलि कुटिल जीव निस्तार बालमीकि तुलसी भयो"

तुलसी दास के संबंध में बेनी कवि कहते हैं –

बेदमत सोधि, सोधि सोधि कै पुरान सबै, संत औ असंतन को भेद को बतावतो ।

कपठी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव, कौन रामनामहू की चरचा चलावतो ॥

'बेनी' कवि कहैं मानो-मनो हो प्रतीती यह, पाहन हिये में कौन प्रेम उपजावतो ।

भारी भवसागर उतारतो कवन पार, जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो ॥

तुलसीदास के समय द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और कितने ही दार्शनिक मतवाद परस्पर टक्कर ले रहे थे। इसके अतिरिक्त तलवार के बल पर धर्म की जड़ जमाने वाले कतिपय मुस्लिम कट्टर शासकों के अत्याचार प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। तत्कालीन समाज आर्थिक रूप से भी कमजोर था इसके संबंध में उनकी उक्ति मिलती है-

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि। बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी॥

जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस, कहैं एकन सौ, कहां जाय का करी ॥

तुलसीदास एक समन्वयकारी कवि थे । उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। रामचरितमानस शुरू से अन्त तक समन्वय का काव्य है उनके महान संदेश जन-जीवन को अवलोकित कर रहे हैं। उन्होंने राम के आदर्श से समाज को संगठित करना चाहा, संस्कृति की रक्षा की और शुद्ध भक्ति का निरूपण किया ।

'रामचरितमानस' भारत का गौरव ग्रंथ है। मानस ने भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वरूप को स्थापित किया है। समाज में मनुष्य का ऐसा कोई भी आदर्श तुलसी दास ने नहीं छोड़ा जो व्यक्ति,

समाज, राष्ट्र के लिये आवश्यक हो । सभी संबंधो को ढालने का सन्देश उन्होंने रामचरित मानस में दिया है। महाकवि ने भारतीय जीवन-दर्शन और संस्कृति को रामचरितमानस के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

तुलसी दास कवि होने के साथ-साथ ही एक विचारक, दार्शनिक, व समाज सुधारक के रूप में प्रकट हुए हैं । भारतीय महापुरूषों में अग्रगण्य गोस्वामी तुलसीदास भारतीय समाज और संस्कृति के उन्नायक हैं। उनके राम निश्चित जीवनमूल्यों और आदर्शो के प्रतीक हैं। रामचरितमानस में जीवन के विभिन्न पहलुओं के जीवनमूल्यों पर विस्तार से चर्चा की गई है विशेष रूप से रामचरितमानस उनका एक ऐसा महाकाव्य है जो हमारे तत्कालीन समाज को प्रतिबिम्बित करता है।

तुलसी के राम भगवान के साथ-साथ एक दृढ़-निश्चयी, समस्याओं को धैर्य व साहस के साथ सामना करने वाले मानव के रूप में चित्रित हुए हैं। वे एक सुखी समाज के निर्माता हैं, वे एक संगठित परिवार के प्रणेता हैं और आदर्श राज्य के चक्रवर्ती सम्राट भी हैं।

रामचरितमानस के नायक राम अनेक स्थानों पर ईश्वरीय शक्ति की तरह नहीं वरन एक साधारण मानव के समान ही आचरण करते हैं । प्रत्येक स्थिति में चित्त की प्रसन्नता बनाये रखते हैं। मानस में यही चित्रित किया गया है कि केवल उच्च चरित्र आचरण से ही ईश्वर प्राप्त किया जा सकता है। राम का जो पक्ष मानवीय- व्यवहार का प्रेरणा-बिन्दु है वह है कि पशु-पक्षियों के प्रति भी आत्मीयता। जटायु जैसे पक्षी को भी अपने पिता के समान सद्गगति देते हैं और सुग्रीव जैसे निर्वासित वानर को भी गले लगाते हैं। निषादराज गुह से लेकर शबरी तक से सप्रेम मिलते हैं ।

तुलसी दास के वचन लोक- कल्याण की भावना से भरे हुए हैं:–

"परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई" ॥

अर्थात् हे भाई दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं और दूसरों को दु:ख देने के समान कोई पाप नहीं हैं । तुलसी ने परम्परा से चली आ रही भारतीय समाज-व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए ही अपने समाज को देखने का प्रयास किया। समाज के हित को केंद्र में रखते हुए तुलसी एक आदर्श और स्वस्थ समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें मानवीयता हो, वे इस समाज को व्यवस्थित करने के लिये ऐसे राम राज्य की कल्पना करते हैं जहां सभी लोग सुखपूर्वक वेद विहित मार्ग पर जीवन यापन करते हों। शारीरिक, दैविक और लौकिक, किसी प्रकार के कष्ट से लोग पीडित नही थे ।

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज काहू नही व्यापा ॥

सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥

तुलसी के राम में एक आदर्श राजा के सभी गुण विद्यमान हैं। सामाजिक नीतियों में तुलसी ने प्रेम तथा आपसी समझौते पर आधारित परिवार तथा समाज व्यवस्था का सन्देश दिया है। तुलसीदास ने भाई- भाई, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, स्वामी-सेवक, गुरू-शिष्य, तथा पति-पत्नी के परस्पर मर्यादापूर्ण व्यवहार की नीतियों का वर्णन अपने काव्य में किया है। गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस उत्तम चरित्रवान नागरिक बनने का मार्गदर्शक हो सकता है। मानस के सभी पात्र- श्रीराम, लक्ष्मण,भरत, हनुमान, जगदम्बिका सीता आदि उत्तम एवं श्रेष्ठ आदर्श का मानों साक्षात् विग्रह हैं।

इसमें श्रीराम का आचरण सर्वाधिक प्रशस्त और अनुकरणीय है। उनका चरित्र मानवता के पावन, पुनीत एवं उज्ज्वल धरातल पर प्रतिष्ठित है। एक मानव, एक कुटुम्बी, एक मित्र, एक पति, एक भाई और एक जननेता के रूप में उनका चरित्र तथा उनका आदर्श सदा अनुकरणीय हैं। उत्तम चरित्र का निर्माण कोई साधारण कार्य नहीं है। श्री रामचरितमानस के नायक श्रीराम सत्य का अनुसरण करने के कारण ही आदर्श एवं मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाए।

तुलसीदास एक महान स्रष्टा और जीवनद्रष्टा कवि हैं । उन्होंने मध्ययुगीन भारत की संपूर्ण जनमानस की चेतना को काव्यमय वाणी दी है। काव्य उनका साधन है, साध्य है रामभक्ति। किन्तु अपने साध्य तक ले जाने के लिये गोस्वामी जी ने जिस साधन को स्वीकार किया उसे इतना संपूर्ण और समर्थ बना दिया कि उनका मानस जनमानस हो गया। उनका साहित्य स्वान्तः सुखाय होते हुए भी सर्वहिताय सिद्ध हुआ है।

तुलसी ने लोक जीवन के लौकिक- पारलौकिक दोनों ही आदर्शों का वर्णन किया है । गोस्वामी जी की दृष्टि रामकथा के माध्यम से सामाजिक मूल्यों, नैतिक मूल्यों की स्थापना पर केंद्रित थी। तुलसी के राम भारतीय जनमानस के नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मूल्यपरक शैक्षिक विचार – तुलसी ने शिक्षा पर यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कुछ विशेष नहीं कहा है, किन्तु हम उनके विचारों का शैक्षिक निहितार्थ निकाल सकते हैं ।

विनयशीलता – विनयशीलता शिक्षित व्यक्ति का महत्वपूर्ण गुण होता है '**जथा नबहि बुध विद्या पाई**' कहकर तुलसी ने विनयशीलता की सराहना की है ।

ज्ञान की प्राप्ति - धर्म ते विरति जोग ते ग्याना, ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना। यह कहकर तुलसी ने मानस को ज्ञान का भण्डार बताया है ।

चारित्रिक उन्नयन – गोस्वामी जी के अनुसार सामाजिक कर्तव्यों का बोध, नैतिक गुणों का विकास शिक्षा का आदर्श होना चाहिए ।

शिक्षण विधि – शिक्षण विधियों में उन्होंने देशाटन विधि की बात कही है । इसे परिभ्रमण विधि भी कह सकते हैं उन्होंने प्रयाग, हिमालय, नैमिषारण्य, चित्रकूट, काशी आदि तीर्थों की यात्रा का वर्णन किया है ।

प्रश्नोत्तर विधि की भी चर्चा है – याज्ञवल्क्य का भारद्वाज को कथा सुनाना, गरूड़ के प्रश्न और काकभुशुण्डि के उत्तर इस विधि के परिचायक हैं। राम-सीता संवाद, राम-लक्ष्मण संवाद, राम-कैकेयी संवाद, राम-भरत संवाद, इत्यादि अनेक स्थानों पर संवाद विधि वर्णित है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्रीराम का जीवन विश्व कल्याण का प्रतीक था ।

तुलसी ने मनुष्यों के मार्ग में आगे बढ़ने हेतु भटकते हुए मानव समाज के लिए अपने राम चरित के द्वारा जैसा आकर्षक प्रकाश-स्तंभ दिया वैसा शायद ही किसी अन्य साहित्य ग्रन्थ ने दिया हो ।

गोस्वामी जी ने गुरु को बहुत महत्व दिया है तथा रामचरितमानस के बालकांड के आरम्भ में गुरु वंदना की हैं- **बन्दउं गुरु - पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सहस अनुरागा।।** सच ही कहा गया है- रामकथा बचपन को प्रबुद्ध करती है, जवानी को शुद्ध करती हैं और बुढ़ापे को सिद्ध करती है। अर्थात् रामचरित मानस मानव के जीवनमूल्यों का वर्धन करने वाली अनुपम कृति है।

संदर्भ सूची:-

1) गुरूपंच, कुबेर सिंह एवं साहू, नागेश्वर प्रसाद, (2014,) मूल्य शिक्षा, अंक-5 (शोध पत्रिका)

2) पाण्डेय, रामसकल, (2000), तुलसी और मूल्य शिक्षा, अध्ययन पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्यूटर्स दरियागंज, नई दिल्ली

3) पाण्डेय, रामसकल, (2000), मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

4) प्रधान, साधना (1997) "रामचरितमानस में जीवनमूल्य www.shodhgangainflibnet.ac.in

5) शर्मा, आर.ए. (2008) मानवमूल्य एवं शिक्षा, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

6) सिंह, अमितारानी, (1993) रामचरित में जीवनमूल्य, तिरुमला प्रकाशन, तिरुपति आन्ध्र प्रदेश

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा एवं जागरुकता में विज्ञापन की भूमिका

डॉ. रेणु सिंह[1]
डॉ. शशि गौड़[2]

सामाजिक सुरक्षा योजनाएं समाज के निम्न वर्ग के जीवन-यापन का सहारा होती हैं। इन योजनाओं को जमीनी स्तर पर लागू करने और ग्रामीणों को शिक्षित करने के लिए सरकार द्वारा विज्ञापनों की मदद ली जाती है। टेलीविजन पर प्रसारित विज्ञापन श्रव्य-दृश्य माध्यम होने के कारण शिक्षित एवं अशिक्षित सभी दर्शकों के लिए प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। विज्ञापन अपनी भाषा, स्लोगन, पृष्ठभूमि, सेलिब्रिटी आदि के कारण काफी आकर्षक एवं दर्शकों के बीच बहुत लोकप्रिय हो जाते हैं। इसके साथ ही विज्ञापन को बार-बार प्रसारित करने से उनके द्वारा दिए गए संदेश भी दर्शकों को याद हो जाते हैं। विज्ञापन जनसम्पर्क का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है जो जनता को जागरूक करने का कार्य करता है। सामाजिक सुरक्षा योजनाएं समाज के हर वर्ग को प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में ऐसी योजनाओं को शामिल किया गया है जो ग्रामीण परिवेश के विकास से जुड़ी हुई हैं।

शिक्षा की कोई उम्र या सीमा नहीं होती। मनुष्य हर वक्त और हर जगह ज्ञान प्राप्त करता रहता है। ग्रामीण परिवेश में यह देखा गया है कि महिलाएँ ज्यादातर कम शिक्षित होती हैं और उनकी सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूकता भी कम होती है। ग्रामीण महिलाओं को सरकारी योजनाओं की जानकारी होना अति आवश्यक है। विज्ञापन उन्हें योजनाओं के बारे में शिक्षित करने का सबसे उत्तम माध्यम है। सामाजिक सुरक्षा योजनाएं समाज को एक सुरक्षा कवच प्रदान करती हैं जो विपरीत परिस्थितियों में समाज का साथ देती हैं और उनका विकास करती हैं। ऐसी योजनाएं- मनरेगा, खाद्य सुरक्षा और स्वच्छ भारत मिशन हैं:

अभी हाल की ही एक घटना है जिसमें सरकारी योजना के तहत अनाज न मिल पाने के कारण एक बच्ची ने भूख से तड़प कर जान गवा दी। इस प्रकार ये सामाजिक सुरक्षा योजनाएं समाज के एक वर्ग के जीवन के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस वर्ग को जागरूक करने के लिए सामाजिक सुरक्षा

[1] **सहायक प्रोफेसर, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

[2] **शोधार्थी, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

योजना के विज्ञापन बहुत आवश्यक हैं। जागरूकता की कमी के कारण ही अधिकतर परिवारों को अनाज नहीं मिल पाता है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है जहाँ जनता द्वारा चुनी गई सरकार शासन करती है। यह सरकार जनता के प्रति जवाबदेह होती है। लोकतंत्र का जनहित से बहुत ही गहरा संबंध है। लोकतंत्र में जनहित ही सर्वोपरि होता है। लोकतंत्र में चुनी हुई सभी सरकारें जनता के हित में ही कार्य करती हैं। यह सभी क्षेत्रों, जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, व्यापार आदि के लिए योजनाएं बनाती है। सरकार की प्राथमिकता जनता को लाभ पहुँचाना है। सरकार की योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों को जनता तक प्रसारित करने का कार्य सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन कार्यरत सरकारी विज्ञापन एजेंसी विज्ञापन दृश्य एवं प्रचार निदेशालय द्वारा किया जाता है।

सत्तारुढ़ सरकारें अपनी योजनाओं को सफल बनाने और उसमें जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए खूब प्रचार-प्रसार करती हैं। इस प्रकार के सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विज्ञापन का उद्देश्य जनता को जागरूक करना है।

महिलाओं की समाज में पुरूषों के समान ही भागीदारी है। आज के समय में महिलाएं पुरूषों से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हैं इसलिए उनको भी सरकारी योजनाओं की जानकारी होना जरूरी है। प्रस्तुत आलेख में महिलाओं के सामाजिक सुरक्षा योजना के प्रति दृष्टिकोण को प्रायोगिक शोध के माध्यम से जानने का प्रयास किया गया है। विज्ञापनों में सेलेब्रिटी होने से विज्ञापन की प्रभावशीलता बढ़ जाती है।

जनसेवा विज्ञापनों में सामाजिक उत्तरदायित्व होता है। जिसे कहानी, मुहावरों और लोकोक्ति के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। जब विज्ञापन सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है तो इससे प्रायोजक की छवि का निर्माण भी होता है। लोग विज्ञापन की चर्चित हस्तियों से विज्ञापन को पहचानते भी हैं। परिणाम स्वरूप लोग चर्चित हस्तियों को तो याद रखते हैं, पर विज्ञापन के मूल उद्देश्य को भूल जाते हैं।

आर. महेश्वरी और डॉ. जी. सुरेश ने सामाजिक विज्ञापन को परिभाषित किया है कि सामाजिक संदेश देने वाले विज्ञापन सामाजिक विज्ञापन होते हैं। पहले केवल सरकार द्वारा सामाजिक विज्ञापन प्रेषित किये जाते थे, परन्तु अब निजी संस्थानों द्वारा भी सामाजिक विज्ञापन प्रेषित किये जाते हैं।

व्यवसायिक विज्ञापन सामाजिक संदेश देकर अपनी ब्रांड इमेज बनाने की कोशिश करते हैं। युवा इस तरीके के विज्ञापन की तरफ आकर्षित होते हैं क्योंकि ये विज्ञापन भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित होते हैं और सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इंटरनेट इस प्रकार के विज्ञापनों के प्रसारण का नया माध्यम है। लोगों के दिमाग में अपनी छवि निम्रण के लिए भी सामाजिक विज्ञापन का उपयोग हो रहा हैं। इसतरह के विज्ञापन ।

सरकारी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विज्ञापनों का ग्रामीण महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने के लिए दो गाँवों महिलाओं को 2 दो समूहों में शामिल किया गया। प्रायोगिक है। प्रत्येक समूह में महिलाओं की संख्या न्यूनतम 3 और अधिकतम 8 रखी गई है। इन महिलाओं की आयु 25-50 वर्ष की थी। ये ग्रामीण महिलाएं कक्षा पांच से कम पढ़ी लिखी थीं और अधिकतर महिलाएं अनपढ़ थीं। टेलीविजन पर प्रसारित विज्ञापनों का वीडियो ग्रामीण महिलाओं को दिखाकर उनका इन विज्ञापनों के प्रति दृष्टिकोण जानने का प्रयास किया गया निर्मित प्रश्नावली में दो-दो प्रश्न विज्ञापन दिखाने से पहले और चार-चार प्रश्न विज्ञापन दिखाने के बाद पूछे गये थे। इस प्रकार विज्ञापन दिखाने से पहले कुल 6 प्रश्न और विज्ञापन दिखाने के बाद 12 प्रश्न पूछे गये हैं।

आंकड़ा विश्लेषण-

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी –

मनरेगा के लिए 30-30 सेकंड के तीन विज्ञापनों की एक श्रृंखला का प्रयोग किया गया I यह विज्ञापन भारत सरकार के ग्रामीण मंत्रालय द्वारा जारी किया गया है। इस विज्ञापन को एन.एफ.डी.सी. के द्वारा निर्देशित किया गया है। मनरेगा भारत सरकार का कार्यक्रम है।

मनरेगा का विज्ञापन महात्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम की लगभग पूरी जानकारी सहज और सरल शब्दों में लक्षित समूह तक पहुँचाने का कार्य करता है। इस विज्ञापन में सभी प्रकार की जानकारी जैसे जॉब कार्ड कहाँ से बनेगा, इस योजना के तहत क्या काम करना होता है? मजदूरी कहाँ से मिलेगी? इत्यादि प्रकार की सभी जानकारी लक्षित समूह तक पहुँचाने का प्रयास इस विज्ञापन में है।

जागरूकता के अभाव में व्यक्ति अपने हक के लिए आवाज नहीं उठा पाता है और शोषण का शिकार हो जाता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 56 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है।

भारत की कृषि मानसून पर निर्भर है। मानसून अच्छा रहता है तो कृषि भी अच्छी होती है। कई बार वर्षा की अनियमितता के कारण फसल बर्बाद हो जाती है और उस कठिन समय में ऐसी योजना जिसमें कृषक को रोजगार मिल सके की जरूरत होती है। इस योजना के तहत साल में कभी भी 100 दिन का रोजगार ग्रामीण माँग सकते हैं। रोजगार न मिलने पर बेरोजगारी भत्ता मिलने का प्रावधान है।

खाद्य सुरक्षा योजना

खाद्य सुरक्षा योजना एक ऐसी योजना है जिसमें गरीब परिवारों को कम मूल्य पर यानि सस्ते दाम पर अनाज उपलब्ध करने का प्रावधान है।

इस विज्ञापन की अवधि 59 सेकण्ड है। यह विज्ञापन भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा जारी किया गया है। विज्ञापन की पृष्ठभूमि में गरीब की वास्तविक स्थिति को दिखाने का प्रयास किया गया है। यह विज्ञापन वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखकर बनाया गया है। विज्ञापन में साधारण तथा सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। विज्ञापन के संदेश को आसानी से समझा जा सकता है। योजना का उद्देश्य विज्ञापन में स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

स्वच्छ भारत मिशन-

शहरों और गांवों की साफ-सफाई को ध्यान में रखकर स्वच्छ भारत अभियान को शुरु किया गया है। इसे 'स्वच्छ भारत मिशन' के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत सरकार की राष्ट्रीय योजना है। इस अभियान का उद्देश्य ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में साफ-सफाई की आदत विकसित करना है। इस अभियान की शुरुआत 2 अक्टुबर 2014 को नई दिल्ली के राजघाट से की गई थी। इसके तहत भारत सरकार ने 2 अक्टुबर 2019 तक भारत को स्वच्छ बनाने का उद्देश्य रखा है, जिसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण भारत में प्रचलित खुले में शौच की आदत से मुक्ति दिलाना है। इसके लिए सरकार द्वारा 11 करोड़ 11 लिख शौचालय बनाने की योजना बनाई गई है। इस योजना के प्रसार के लिए निरंतर विज्ञापनों का सहारा लिया जा रहा है। ये विज्ञापन भारत सरकार द्वारा जनहित में जारी किये जा रहे हैं और इसके विज्ञापन का निर्माण सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने किया है।

प्रायोगिक शोध विश्लेषण-

प्रायोगिक शोध का विश्लेषेण इस प्रकार से है-

विज्ञापन देखने के बावजूद महिलाएं विज्ञापन में दिखाए तथ्यों को अपने व्यावहारिक जीवन में जोड़कर नहीं बता पाईं मनरेगा के तहत लोगों ने मजदूरी तो बैंक से ही प्राप्त की है। आवेदन कहाँ करना है? इस प्रश्न का जवाब था मुखिया आकर नाम लिखकर गये थे। इन सब प्रश्नों का उत्तर विज्ञापन में दिया गया है। विज्ञापन में ऐसा दिखाया गया है कि मजदूरी 15 दिन बाद मिल जाती है, परन्तु शोध के दौरान लोगों का कहना था कि मजदूरी 15 दिन के बाद नहीं बल्कि महीने दो महीने बाद मिलती है।

स्वच्छ भारत अभियान

निर्मल भारत अभियान स्वच्छ भारत अभियान से पहले शुरू हुआ था। इस अभियान के विज्ञापन में स्वच्छता की आदत विकसित करने का सन्देश दिया गया है। इस विज्ञापन को दिखाने से पहले 2 प्रश्न पूछे गये जिनके जबाव में- महिलाओं का कहना था कि वे आपने आस-पास सफाई तो रखती हैं। इस अभियान के विषय में जानकारी महिलाओं को है क्योंकि कुछ लोगों के यहां इस अभियान तहत शौचालय का निर्माण हुआ है।

विज्ञापन दिखाकर चार प्रश्न पूछे गए। उनका जबाव इस प्रकार से था- विज्ञापन में खुले में शौच से होने वाली बीमारी से विषय में बताया गया है लेकिन महिलाएं इसका जबाव सही से नहीं दे पाई। वे शौचालय का इस्तेमाल नहीं करती थीं।

निष्कर्ष और सुझाव –

सामान्यतया टेलीविजन पर एक विज्ञापन बार-बार दिखाया जाता है तो उसकी विषय- वस्तु लोगों को याद हो जाती है। प्रायोगिक शोध के दौरान पाया गया कि मनरेगा का विज्ञापन कई बार देखने के वाबजूद जो महिलाएं मनरेगा में काम कर रही थीं और जिन्होंने काम नहीं किया था दोनों मनरेगा से जुड़े प्रश्नों का उत्तर पूर्णतः विज्ञापन की विषयवस्तु अनुसार नहीं दे रही थीं बल्कि जैसे उनका मनरेगा या खाद्य सुरक्षा योजना का अनुभव था वैसे वे जबाव दे रही थीं। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विज्ञापन को अपने जीवन के अनुभव से जोड़कर उसका विश्लेषण कर रही थीं। यहाँ यह विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि चयनित महिलाएँ कम शिक्षित और ग्रामीण परिवेश में रहने वाली थीं। इसके साथ यह भी सम्भव था कि समूह की अनेक महिलाएँ इन विज्ञापनों को पहली बार देख रही हों। इन सबके वाबजूद यह तो स्पष्ट है कि इन विज्ञापनों ने महिलाओं को इन योजनाओं के

बारे में समुचित जानकारि देने एवं अपने अधिकारों और सुविधाओं के बारे में जागरूक बनाने एवं उन्हें स्वच्छता की शिक्षा देने में अहम् भूमिका निभाई है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

- टेलिस, गेरार्ड जे. (2009). इफेक्टिव एडवरटाइजिंग, न्यू दिल्ली: रेस्पॉन्स बुक्स
- सलमोन, चार्ल्स, टी. (1989). इनफार्मेशन कैंपेन्स, न्यू दिल्ली: सेज पब्लिकेशन
- तिवारी, अर्जुन. (2007). संपूर्ण पत्रकारिता, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन
- आहुजा, राम. (2008). सामाजिक सर्वेक्षण. जयपुर:रावत पब्लिकेशन
- पंत, एन.सी. (2008). जनसंम्पर्क, विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम. दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन
- धवन, मधु. (2015). विज्ञापन कला. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
- सेठी, डॉ रेखा. (2016). विज्ञापन भाषा और संरचना. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

समृद्ध राष्ट्र की धुरी बालिका शिक्षा

डॉ. डोरी लाल[1]

बालिका शिक्षाः वर्तमान परिदृश्य

शिक्षा एक मौलिक अधिकार है, और किसी भी अधिकार के लिए प्रयास करने की जरूरत होती हैं। आज भी हमारे देश में लड़के और लड़कियों में अंतर किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो लड़कियों की स्थिति अभी भी चिंतनीय है। उनकी दृष्टि में शिक्षा की जरूरत पुरूषों को होती है, जो जीविकोपार्जन के उद्देश्य से बाहर काम करने जाते हैं, जबकि लड़कियां घर में रहती हैं और शादी के बाद घर के काम-काज में ही उनका ज्यादातर समय बीतता है। इस मनोदशा को बदलने और समाज को शिक्षा के गुणों के प्रति जागरूकता की अत्यंत आवश्यकता है। वर्तमान प्रधान मंत्री महोदय ने भी में कहा है कि हमें देश के चहुंमुखी विकास के लिए समाज के सभी वर्गों को शिक्षित करना होगा।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था की प्रमुख समस्याओं में बालिका साक्षरता की दर का राष्ट्रीय साक्षरता से निम्न होना भी है। बालिका शिक्षा के लिए बुनियादी सुविधाएं सीमित हैं, मगर भ्रष्ट्राचार, शिथिल सामुदायिक भागीदारी, अनाकर्षक शैक्षिणिक वातावरण, शिथिल प्रशासनिक निगरानी, लचर शिक्षण व्यवस्था, असुरक्षा आदि कारणों से सरकारी विद्यालयों के प्रति लोगों का रुझान कम है। एक अनुसंधान के अनुसार रु. 5000 मासिक आय वाला गरीब परिवार भी, सरकारी प्रोलोभनों की उपेक्षा कर अपने बच्चों को निजी विद्यालय में भेजना पसन्द करता है। निश्चित रूप से यह उस परिवार पर भार है जो बड़ी कक्षा में जाकर और बढ़ जाता है, जिसका दुष्प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है।

श्रमशक्ति के हर क्षेत्र में महिलाएं आगे बढ़ी हैं। कामकाजी महिलाओं की संख्या बहुत कम तथा नीचे के पदों तक ही सीमित रही है। महिलाओं के प्रति अपराध का ग्रॉफ भी नीचे नहीं आ रहा है। 1995 की मानव विकास रिपोर्ट में पहली बार लिंग संबंधी विकास को शामिल किया गया जिसमें स्वास्थ्य और दीर्घायुता, शिक्षा स्तर (प्रौढ़ साक्षरता तथा कुल नामांकित छात्रों की संख्या) तथा उचित जीवन स्तर जैसे आयाम सम्मिलित हैं। यू.एन.डी.पी रिपोर्ट (2017) के अनुसार भारत का लैंगिक विकास सूचकांक (जी.डी.आई.) 130 वाँ एवं मूल्यांक 0.841, जिसमें पुरूषों एवं महिलाओं का मूल्यांक कमशः 0.683 एवं 0.575 है।

[1] **सहायक प्रोफेसर, आई.ए.एस.ई. शिक्षा संकाय, जामिया, मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

विश्व में पुरुषों का औसत स्कूल वर्ष 7.9 वर्ष तथा महिलाओं का 6.2 वर्ष है। आकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में महिलाओं एवं पुरुषों के औसत स्कूली वर्ष के बीच लगभग दोगुने का फर्क है जबकि विश्व स्तर पर यह अंतर काफी कम है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में पुरुष और महिला राष्ट्रीय साक्षरता में 16.68 प्रतिशत का अंतर है जो समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता को दर्शाता है। भारत में राष्ट्रीय महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत है जो पुरुष साक्षरता (82.14 प्रतिशत) की तुलना में काफी कम है।

इनमें से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता क्रमशः 56.46 व 49.36 प्रतिशत अपेक्षाकृत काफी कम है । सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम बेसलाइन सर्वे 2014 की रिपोर्ट के अनुसार 15 से 17 साल की लगभग 16 प्रतिशत लड़कियां स्कूल बीच में ही छोड़ देती हैं।

अखिल भारतीय उच्चतर शिक्षा सर्वेक्षण 2017-18 की रिर्पोट के मुताबिक उच्च शिक्षा (18-23 आयुवर्ग) में बालिकाओं का सकल नामांकन दर 25.4 प्रतिशत है, जबकि अनुसूचित जाति की बालिकाओं की दर 21.4 प्रतिशत एवं अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं की दर 14.9 प्रतिशत मात्र है। माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने की औसतन वार्षिक दर 17.86 प्रतिशत है, जबकि अनुसूचित जाति की बालिकाओं की दर 18.66 प्रतिशत एवं अनुसूचित जनजाति, की बालिकाओं की दर 27.2 प्रतिशत है (डाइस रिपोर्ट 2013-14)। सामान्य जनसंख्या के सापेक्ष अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं का ड्रॉप आउट अंतर ज्यादा है। उच्च शिक्षा में भी इन वर्गों की बालिकाओं का अनुपात सामान्य वर्ग की बालिकाओं की तुलना में बहुत पीछे है। अनु.जाति ग्रामीण आदिवासी समुदाय की मात्र 46.90 प्रतिशत तथा ग्रामीण अनु.जाति समुदाय की मात्र 52.6 प्रतिशत लड़कियां शिक्षित हैं। (जनसंख्या सर्वेक्षण, 2011)।

बालिका शिक्षा की आवश्यकता

आर्थिक विकास के दौर में शिक्षा एक वरदान है। एक शिक्षित लड़की परिवार की जरूरतों के साथ-साथ देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। शिक्षित लड़की विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के काम और बोझ को साझा कर सकती है। साथ ही वह अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी अपना और परिवार का नाम रोशन कर सकती है। एक कुरीति के रूप में दहेज आज भी समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। लड़कियां अगर शिक्षित और आत्मनिर्भर होंगी तो वह दहेज जैसी किसी भी प्रथा

का स्वयं ही विरोध करने में सक्षम हो पाएंगी। शिक्षित महिलाएं अपने बच्चों को भी शिक्षित करेंगी साथ ही उनमें अच्छे और बुरे की समझ विकसित कर पाएंगी।

बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारक

अशिक्षित माता-पिता: आज भी अधिकांश अशिक्षित माता-पिता शिक्षा के गुणों से अनभिज्ञ हैं। उनकी रूढ़िवादी सोच लड़कों को घर का चिराग और लड़कियों को पराया धन समझती है। उनके अनुसार लड़कियों को केवल गृहप्रबंधन की कला में निपुण होना चाहिए। घर की आर्थिक जरूरतों का संचालन कार्य लड़कों का है।

गरीबी - अशिक्षा गरीबी को जन्म देती है। भारत एक विकासशील देश है। यद्यपि सरकारी स्कूलों में ड्रेस, स्टेशनरी, किताबें, दोपहर का भोजन आदि उपलब्ध होता हैं। फिर भी गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार अत्यधिक आर्थिक तंगी के कारण अधिकांश माँ बाप अपनी बच्चियों को विद्यालय में नहीं भेज पा रहे हैं।

असुरक्षा की भावना - अधिकांश माता-पिता आज भी लड़कियों को अकेले बाहर भेजने में डरते हैं। स्कूल और स्कूली रास्तों में लड़कियों को कभी-कभी हिंसा के विभिन्न रूपों का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण परिवेश में महिला सुरक्षा एक गम्भीर मुद्दा है। सुरक्षा कारकों को ध्यान में रखते हुए माता-पिता लड़की को स्कूल नहीं भेजते।

नकारात्मक दृष्टिकोण –खाना बनाना, घर को साफ सुथरा रखना और घरेलू कार्यों को करना ही बालिका से अपेक्षित होते हैं। स्कूली शिक्षा को वह अपव्यय मानते हैं। ऐसे अभिभावकों के अनुसार गृहप्रबन्धन में उनका योगदान उनकी शिक्षा से अधिक मूल्यवान है।

बाल विवाह - भारतीय समाज में बाल विवाह के मामले भी होते हैं। लड़कियों को कम उम्र में शादी करके स्कूली शिक्षा से विमुख कर दिया जाता है। इस तरह उनका सारा ध्यान बच्चों और परिवार की देखरेख में लग जाता हैं। अध्ययन के लिए उनके पास कोई समय नहीं बचता और न ही ससुराल पक्ष उन्हें आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

बाल मजदूरी - बेरोजगारी और आर्थिक तंगी के कारण कम उम्र के बच्चे भी पारिवार को आर्थिक सहयोग करने के लिए बाध्य होते हैं जिससे उनकी शिक्षा में व्यवधान उत्पन्न होता है। गरीबी

और अस्वस्थ्यता के कारण माता-पिता बच्चों को छोटी उम्र में काम करने का दबाव डालते हैं और इस कारण लड़कियों को पढ़ाई से रोक दिया जाता है।

विद्यालयी सुविधाएँ- 2013 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष पूरे देश में 5वीं तक आते-आते करीब 23 लाख छात्र-छात्राएं स्कूल छोड़ देते हैं। लगभग एक तिहाई सरकारी स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग शौचालयों की सुविधा नहीं है। सरकारी स्कूलों में पोशाक, स्टेशनरी, किताबें आदि का वितरण भी समय से नहीं हो पाता है। स्कूल में महिला शिक्षकों या कर्मचारियों की कमी हो जिसके कारण भी लड़कियां स्कूल छोड़ देती हैं।

बालिका शिक्षा के लाभ-

महिलाओं के शोषण का अंत- एक महिला अगर पढ़ी- लिखी होगी तो वह अपने सामाजिक और लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति जागरूक होगी। वह अपने और अपनों पर होने वाले अत्याचार, शोषण इत्यादि का विरोध करने में सक्षम होगी। साथ ही आने वाली पीढी को इनके लिए मानसिक रूप से प्रशिक्षित कर पाएगी। इसलिए महिलाओं का शिक्षित होना बहुत जरूरी है।

रूढ़िवादिता का विरोध - शिक्षा वैज्ञानिक विचारधारा को जन्म देती है। नारी अगर शिक्षित होगी तो पुराने ख्यालों के लोग अपने रूढ़िवादी विचार उन पर थोप नहीं पाएंगे।

लैंगिक असमानता में कमी - समानता प्रकृति का यथार्थ सत्य है। समाज में पुरूष और नारी की बराबर की भागीदारी होती है। नारी के शिक्षित होने से वह अपने संवैधानिक अधिकारों का संरक्षण करने में समर्थ होगी। जिससे सामाजिक, लैंगिक असमानता और भेद भाव का समाप्त होना तय है।

सामाजिक उत्थान - एक अच्छे समाज की कल्पना तभी की जा सकती है जब वहां के सभी नागरिक शिक्षित हों। विशेषकर यदि महिलाएं शिक्षित होंगी तो वे पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज की उन्नति में भागीदार हो पाएंगी, जिससे सामाजिक उत्थान होना तय है।

आर्थिक प्रगति में सहायक- देश की आधी आबादी भी अगर पूर्ण रूप से शिक्षित और दक्ष होंगी तो घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर परिवार की आर्थिक मद्द करने में सक्षम होगी। जिस कारण परिवार का आर्थिक बोझ स्त्री पुरुष समान रूप से वहन करने में सक्षम होंगे और परिवार के साथ देश की भी आर्थिक प्रगति होगी ।

बालिकाओं को शिक्षित एवं सबल बनाने हेतु सरकार के प्रयास

आज पुरुषों के बराबर स्त्रियों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जा रही है। सरकार द्वारा ऐसी अनेक योजनाएँ चलायी जा रही हैं जिनका उद्देश्य बालिकाओं को नि:शुल्क शिक्षा देना और उनमें आर्थिक सुरक्षा की भावना पैदा करने का प्रयास है। लोगों में बालिका शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाने का काम सरकार के साथ-साथ स्वयंसेवी संस्थाएं भी कर रही हैं। इन सब का परिणाम है कि आज ग्रामीण क्षेत्रों में भी बालिकाओं का रुझान पढ़ाई की ओर बढ़ रहा है।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ कार्यक्रम - यह अभियान महिला और बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय और मानव संसाधन विकास मंत्रालय का संयुक्त कार्यक्रम है। बालिकाओं के अस्तित्व, संरक्षण और शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 22 जनवरी, 2015 को पानीपत, हरियाणा में इस कार्यक्रम की शुरुआत प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र मोदी द्वारा की गई थी। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ एक सामाजिक अभियान है जिसका लक्ष्य है कि महिला भेद भाव का उन्मूलन और युवा भारतीय लड़कियों के लिए कल्याण सेवाओं पर जागरूकता बढ़ाना। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य लड़कियों के गिरते अनुपात और उन पर होने वाले भेद भाव तथा उन की सुरक्षा-शिक्षा के मुद्दे के प्रति लोगों को जागरूक करना है।

साक्षर भारत मिशन- इस कार्यक्रम का लक्ष्य प्रौढ़ शिक्षा, विशेषकर महिला शिक्षा को बढ़ावा देना है। अन्तरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस 8 सितम्बर, 2009 के अवसर पर प्रधानमंत्री मनमोहन सिहं द्वारा भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग की ओर से साक्षर भारत मिशन का आरंभ किया गया था, जो पूर्णतया केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य शिक्षा से वंचित ऐसे व्यक्तियों को शिक्षित करना है जो किसी भी कारण से औपचारिक शिक्षा से वंचित रह गए हैं और निर्धारित आयु सीमा पार कर चुके हैं तथा अब पुनः शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं।

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना- 2004 में भारत सरकार द्वारा समाज के पिछड़े वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के लिए 75 प्रतिशत सीटें तथा 25 प्रतिशत सीटें गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार की बालिकाओं के लिए, सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना हेतु कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का शुभारंभ किया गया था। कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का 1 अप्रैल, 2007 को सर्व शिक्षा अभियान में एक अलग घटक के रूप में विलय कर दिया गया। यह योजना उन पिछड़े क्षेत्रों में

क्रियान्वित की गई है जहाँ ग्रामीण महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय स्तर से कम है। इसमें केंद्र व राज्य सरकारें क्रमशः 75 और 25 के अनुपात में खर्च वहन करती हैं। योजना में मुख्य रूप से ऐसी बालिकाओं पर ध्यान दिया जाता है जो विद्यालय से बाहर हैं तथा जिनकी उम्र 10 वर्ष से ऊपर है।

महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम - महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की इस योजना की शुरुआत 1986-87 में एक केन्द्रीय योजना के रूप में की गई थी। योजना का मुख्य उद्देश्य 16 वर्ष या उससे अधिक की लड़कियों/महिलाओं का कौशल विकासीत कराकर उनको इस योग्य बनाना है ताकि वे स्व-रोजगार या उद्यमी बनने का हुनर प्राप्त कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं को प्रोत्साहन - 14 से 18 वर्ष की आयुसमूह की बालिकाओं, विशेष रूप से जिन्होंने कक्षा-8 उत्तीर्ण कर ली हो ऐसी बालिकाओं के, माध्यमिक स्तर पर नामांकन में वृद्धि करने और उन्हें माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित इस योजना की शुरुआत मई, 2008 में की गई थी। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की वे सभी बालिकाएं, जिन्होंने कक्षा-8 परीक्षा कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय से उत्तीर्ण की हो और राज्य, संघ राज्य क्षेत्र के सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त या स्थानीय निकाय के स्कूल की अगली कक्षा के लिए अपना नामांकन कराया है, उन्हें के लिए अपना नामांकन कराया है,उन्हें प्रोत्साहन राशि दी जाती है।

इन सभी के साथ-साथ सरकारी निकायों द्वारा बलिका शिक्षा के संवर्धन हेतु अनेक शैक्षिक अनुदान, स्टार्ट अप अनुदान, निःशुल्क प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी, विभिन्न स्तर की छात्रवृत्तियां तथा फैलोशिप आदि संचालित की जा रही हैं, जो उन्हें अपनी शिक्षा जारी रखने में मददगार हैं।

निष्कर्ष

भारत सरकार के आर्थिक उदारीकरण, सबका साथ सबका विकास और महिला सुरक्षा-सम्मान व बराबरी की नीति, जैसे क्रांतिकारी परिवर्तनों का परिणाम है कि दो दशक पूर्व और आज की बालिकाओं/महिलाओं की स्थिति की तुलना करें तो हमें अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई पड़ेगा। आज महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष माना जा रहा है। बालिका शिक्षा से आज देश प्रगति की ओर बढ़ रहा है। बाल विवाह, दहेज प्रथा, महिला उत्पीड़न जैसी घटनाओं में कमी और इनके प्रति जागरूकता आई है।

संस्कृत-शिक्षण में नवाचार

डॉ. कुन्दन कुमार[1]

बढ़ती जनसंख्या से अनेक शैक्षिक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। नूतन शिक्षण विधियों तथा तकनीक के प्रयोग से हम उन समस्याओं से निपटने हुए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। नवाचार दो शब्दों 'नव' और 'आचार' के योग से बना है, जिसका अर्थ है – नवीन परिवर्तन। अर्थात् जो स्थापित विधियों, परम्पराओं, वस्तुओं, तकनीक इत्यादि में नवीनता का समावेश करे वही नवाचार है। वर्तमान युग में अन्य विषयों की तरह देश के विभिन्न विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, गुरुकुलों, आश्रमों तथा विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं में संस्कृत शिक्षण किया जा रहा है। संस्कृत शिक्षण की गुणवत्ता एवं उपयोगिता में वृद्धि हेतु नवीन तकनीक, विधि तथा अन्य सभी प्रकार के सहायक उपादानों का आश्रय लेना लाभकारी होता है। यहाँ संस्कृत शिक्षण में नवाचार का अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि परम्परागत विधि का परित्याग करके सर्वथा नवीन विधि का आश्रयण किया जाए। अब प्रश्न यह उठता है कि संस्कृत शिक्षण में नवाचार की आवश्यकता क्यों है? क्या परम्परागत संस्कृत शिक्षण की पद्धति ही श्रेष्ठ है और नवीन पद्धति सर्वथा त्याज्य है। इस सम्बन्ध में महाकवि कालिदास के श्लोक को उद्धृत करना उचित समझता हूँ-

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यम् नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

- मालविकाग्निमित्रम्

अर्थात् पुरानी होने से ही न तो सभी वस्तुएँ अच्छी हो जाती हैं और न ही नयी होने से ही कोई भी वस्तु बुरी या त्याज्य हो जाती है। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से ही परीक्षा करके श्रेष्ठ वस्तु को स्वीकार कर लेते हैं और मूर्ख लोग दूसरों के बताने पर ही ग्रहण करते हैं। वस्तुतः शिक्षण में नवाचार उसी प्रकार ग्राह्य है जैसे कृषि कार्य में हल-बैल की जगह ट्रैक्टर, घर की सफाई में झाड़ू की जगह विद्युत् चालित झाड़ू, खाना पकाने हेतु मृद्भाण्ड की जगह प्रेशर-कुकर, यात्रा हेतु पैदल चलने की जगह साइकिल इत्यादि वाहन। संस्कृत शिक्षण में नवाचार संस्कृत को लोकप्रिय बनाने में अत्यन्त

[1] **प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक (संस्कृत), कोर एकेडमिक यूनिट, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली**

सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इसी नवाचार के कारण सुदूरस्थ विदेश के संस्कृत प्रेमी भी संस्कृत अध्ययन हेतु प्रवृत्त हो रहे हैं।

अल्पायु मनुष्य के लिए कम समय में व्याकरणशास्त्र का अध्ययन सुलभ कराने के उद्देश्य से महर्षि पाणि ने लगभग 4000 सूत्रों का व्याकरण-ग्रन्थ अष्टाध्यायी का प्रणयन किया। लेकिन यही ग्रन्थ एकमात्र व्याकरण अध्ययन का साधन नहीं बना अपितु विभिन्न अध्ययन-पद्धतियों के मानसिक स्तरों को ध्यान में रखकर अनेक ग्रन्थ रचे गए और वर्तमान में भी रचे जा रहे हैं। प्राचीन युग में संस्कृत अध्ययन की अनेक विधियाँ विविध काल-खण्डों में विविध क्षेत्रों में प्रचलित रही हैं। वेदों का अध्ययन श्रुति-परम्परा से होता था। उस युग में ऋषियों की प्रज्ञा इतनी प्रखर होती थी कि संपूर्ण वेद का अध्ययन मौखिक ही कर लिया जाता था। कालान्तर में गुरुकुलों, आश्रमों तथा नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों में तालपत्रों पर लेखन और शास्त्र संरक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ। वर्तमान युग के शैक्षिक परिवर्तनों को स्वीकार करके संस्कृत शिक्षण का कायाकल्प किया जा सकता है। संस्कृत शिक्षण में नवाचार हेतु कुछ विचारणीय बिन्दु अधोलिखित हैं-

संस्कृत पाठ-योजना में नवाचार - अध्यापक छात्र के सर्वविध कौशल में वृद्धि करने हेतु अध्यापन करता है। इसके लिए वह योजना का निर्माण करता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार शिक्षक पाठ को कंठस्थ और हृदयंगम करके अध्यापन करते थे, जिससे छात्रों पर अध्यापक का सकारात्मक प्रभाव पड़ता था। यह भी पाठ-योजना का प्राचीन अलिखित स्वरूप था, जिसका आज के परिप्रेक्ष्य में समन्वय एवं आधुनिकीकरण किया गया है। संस्कृत शिक्षण हेतु प्रत्येक अध्यापक को पढ़ाए जानेवाले पाठ की पूर्व योजना अवश्य बनानी चाहिए। पाठ योजना जितनी अच्छी होगी शिक्षण उतना ही सफल एवं प्रभावी होगा क्योंकि योजनाबद्ध तरीके से किया गया अध्यापन सुव्यवस्थित होता है। एतदर्थ शिक्षाशास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार पाठ योजना अवश्य बनानी चाहिए। शिक्षाशास्त्र के आधुनिक आचार्यों ने पाठ-योजना हेतु कुछ ध्यातव्य बिंदुओं की चर्चा की है जिनके क्रमबद्ध अनुपालन से हम शिक्षण में नयापन लाते हुए छात्रों को रोचक ढंग से पाठ पढ़ा सकते हैं। आधुनिकतम शिक्षाशास्त्रीय नियम के अनुसार पाठ योजना बनाकर अध्यापन करने से संस्कृत शिक्षण में नयापन और रोचकता आती है। गद्य- शिक्षण, पद्य-शिक्षण, व्याकरण-शिक्षण, रचना-शिक्षण, अनुवाद-शिक्षण, नाट्य-शिक्षण इत्यादि की आवश्यकतानुसार अलग-अलग पाठ योजना बना कर अध्यापन करना चाहिए।

भाषा अधिगम कौशल में नवाचार - प्राचीन युग में अध्यापक अपने में निहित ज्ञान को छात्रों तक संक्रान्त करने हेतु अध्यापन करता था। प्राचीन युग में गुरुमुख से सुनकर ही छात्र अध्ययन करते थे परन्तु आज उनके लिए पठन-लेखन के लिए प्रचुर सामग्री विद्यमान है। वर्तमान में शिक्षण का उद्देश्य छात्र केंद्रित हो गया है। एक अध्यापक एक साथ अनेक छात्रों को तथा सुदूरस्थ छात्रों को भी विविध उपकरणों एवं तकनीकों के माध्यम से अध्यापन करने में समर्थ है।

भाषा शिक्षण के चार सोपान हैं- श्रवण, भाषण, पठन और लेखन। प्रारम्भिक स्तर के छात्र सुनकर बोलना और पढ़कर लिखना सीखते हैं परन्तु प्रौढ़ कक्षा के छात्र इन चारों सोपानों के अतिरिक्त अवबोध एवं शोध की भी अपेक्षा रखते हैं। छात्र भी अपने श्रवण, भाषण, पठन और लेखन कौशलों के विकास में तकनीक का प्रचुर प्रयोग कर रहा है। इन्टरनेट के माध्यम से विभिन्न वेबसाइटों पर उपलब्ध वैदिक एवं लौकिक संस्कृत पाठ्य वस्तुओं को सुनकर बोलने में निपुण हो रहा है। इसी तरह वेबसाइटों पर उपलब्ध विभिन्न पाठ्य सामग्रियों के आधार पर अपने लेखन कौशल में भी अभिवृद्धि कर रहा है।

संस्कृत शिक्षण तकनीक में नवाचार- प्राचीन भारत में गुरु सिर्फ मौखिक अध्यापन करते थे किन्तु वर्तमान युग सूचना और प्रौद्योगिकी का है। विभिन्न शिक्षण संस्थान अध्यापन हेतु कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट का प्रचुर उपयोग करते हुए आधुनिकतम पाठ्य सामग्रियों को छात्रों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। यह सामग्री छात्रों के ज्ञान को अद्यतन करने के साथ-साथ रोचक भी बना रही है। अब इन्टरनेट के माध्यम से शिक्षण सामग्रियाँ अत्यन्त सुलभ हो गई हैं। लाखों पुस्तकें E-Library के रूप में उपलब्ध हैं जिसे कोई भी सुदूरस्थ व्यक्ति सुगमता से प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार विभिन्न विद्वानों के ऑडियो, वीडियो एवं लाइव कक्षा शिक्षण का प्रसारण उपलब्ध है। शिक्षक इन्टरनेट, कम्प्यूटर एवं वेबसाइट के माध्यम से अपने घर में बैठे हुए ही दूरस्थ छात्रों को पढ़ा रहे हैं और नोट्स आदि शिक्षण सामग्री भी प्रदान कर रहे हैं। शिक्षक के पास अनेक पुस्तकें Soft Copy (PDE, PPT, MS WORD इत्यादि) के रूप में कम्प्यूटर में सुरक्षित रहती हैं, जिसे वह प्रोजेक्टर इत्यादि की सहायता से कक्षा में अनेक छात्रों को रोचक ढंग से पढ़ाने हेतु उपयोग करता है।

आधुनिक शिक्षाशास्त्री छात्र केंद्रित शिक्षा पर बल देते हैं। तदनुसार शिक्षक छात्र को केंद्र में रखकर नाना प्रकार से पाठ्य को प्रस्तुत करता है। कक्षा में कृष्णपट्ट और चाक के अतिरिक्त अनेक साधन प्रयुक्त हो रहे हैं। यथा - (i) स्मार्ट बोर्ड (ii) चार्ट पेपर (iii) मॉडल (iv) फ्लैश कार्ड (v) प्रोजेक्टर (vi) ऑडियो वीडियो (vii) कम्प्यूटर (vii) मोबाइल ऐप इत्यादि। इनके अतिरिक्त शिक्षक इन्टरनेट के

माध्यम से Skype, Zoom Cloud meeting, Youtube, WhatsApp, Telegramme, Webinar, Facebook Live इत्यादि नवीतम तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं।

ई संसाधन में नवाचार- भाषा शिक्षण एक बहुआयामी शैक्षणिक विधा है। यहाँ शिक्षण के क्रियान्वयन का उद्देश्य न केवल अध्येता को शिक्षण-सम्बन्धी ज्ञान अथवा भाषिक सम्प्राप्ति की उपलब्धि होती है अपितु उस भाषा के दार्शनिक, साहित्यिक, मौलिक, सांवेगिक तथा रचनात्मक पक्षों को भी उच्च शिक्षण के अन्तर्गत वर्णित किया जाता है। शैक्षणिक विधा में क्रियान्वित होनेवाली विषय वस्तु जितनी व्यापक अथवा बहुआयामी होगी उसके शैक्षिक क्रियान्वयन की चेतना उतनी ही विस्तृत हो जाएगी। कक्षागत परिस्थितियों में संस्कृत शिक्षण का क्रियान्वयन करनेवाला अध्यापक यदि प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति, साहित्य अथवा कोश ग्रंथों में वर्णित शब्दों का निर्वचन पढ़ाना चाहे तो मात्र व्याख्यान अथवा पाठ्यपुस्तक विधि के अन्तर्गत यह क्लिष्टसाध्य होगा। परन्तु आज के ई-लर्निंग के सम्प्रत्यय ने न केवल इसे सरल और उपयोगी बनाया है अपितु एक बड़े ग्रन्थागार को आसानी रीत से अध्ययन के लिए सुलभ बना दिया है।

कोई भी शिक्षक या वह इकाई अथवा कक्षागत परिस्थितियाँ शिक्षण का क्रियान्वयन कर रही है; परन्तु वह व सभी शैक्षिक प्रबंधों एवं प्रविधियों का वांछित संसाधन हो, यह आवश्यक नहीं है। लेकिन कई वेबसाइट इस विषय में एक प्रासंगिक भूमिका रखती है, जो विषय-वस्तु के अनुरूप उसी इकाई अथवा संसाधन का चयन करती हैं जो उस विधा अथवा उस विषय वस्तु के क्रियान्वयन में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी एवं पारंगत होता है। इसके द्वारा न केवल भाषा के यथार्थ गूढ़ज्ञान का ही अधिगम होता है अपितु भाषा के विविध आयाम, जो एक अध्येता के लिए भाषागत शिक्षण के उद्देश्यों की सम्प्राप्ति में वांछनीय होता है, उनका भी एक व्यवस्थित क्रियान्वयन हो सकता है। कम्प्यूटर के प्रचलन में आने के उपरान्त शिक्षा जगत् में क्रान्ति आ गई। संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थ भी सुलभ हो गए। अनेक विद्वानों के व्याख्यान आडियो एवं विडियो के रूप में अनेक वेबसाइटों पर उपलब्ध हैं, जिनका कभी भी उपयोग किया जा सकता है। संस्कृत शिक्षण-प्रशिक्षण हेतु कुछ उपयोगी बेवसाइटें इस प्रकार हैं-

https://www.samskritpromotion.in/
https://www.samskrittutorial.in/
https://www.learnsamskrit.online/

http://epathshala.nic.in/hi/e-pathshala-4/

https://epgp.inflibnet.ac.in/

http://samskritabharati.in

http//:sanskrit.jnu.ac.in

www.sanskritworld.in

http://sanskritlibrary.org

www.sanskritbooks.org

www.sanskrit.nic.in

www.vyomalabs.in

www.archives.org

www.mediafiresanskritpromotion.in

http://sanskrutisamvardhan.org

संस्कृत शिक्षण-प्रशिक्षण हेतु सहायक ऐप्स

NCERT ने अपनी पुस्तकों को App के माध्यम से सुलभ कर दिया है। जैसे – E Pathshala, E PG pathshala, Swayam, Swayamprabha इत्यादि। Samskrit Promotion Foundation द्वारा निर्मित अनेक छात्रोपयोगी App हैं जो प्रायः CBSE इत्यादि के पाठ्यक्रम पर आधारित हैं। जैसे-kids Dictionary, samskrittutorial, class 6, samskrittutorial class 7, samskrittutorial class 8, samskrittutorial, class 9 samskrittutorial, class 10 samskrittutorial इत्यादि। Google Play Store पर shrutijha के नाम से खोजने पर अनेक विश्वविद्यालय स्तरीय उपयोगी App डाउनलोड कर सकते हैं। जैसे- sanskrithindidictionary, sanskritdictionary, dhatuvrttis, sanskritsanskrit, sanskritsanskrit, shabdroopmala, vachaspatyam, ashtadhyayivarnanukramanika, upsslibrary, paniniashtadhyayi, dhatuvrttison, quizapp, siddhantakaumudi, amarkosh, ashtadhyayichandrika, schoollocator, hindishabdkosh, visualhindidictionary, kridantroopadarshika, kridant, siddhantkaumudibook, learnsanskrit, chitrakoash, sanskritquiz, edutest, shastralochanam इत्यादि।

पाठ्य प्रस्तुति में नवाचार- शिक्षक कक्षा में पाठ को समझाने हेतु छात्रों के समक्ष उपस्थित होता है। शिक्षक स्वयं के ज्ञान को छात्रों तक संक्रान्त करने हेतु नाना प्रकार के प्रयत्न करता है। आधुनिक शिक्षा शास्त्री छात्रकेंद्रित शिक्षा पर बल देते हैं। तदनुसार शिक्षक छात्र को केंद्र में रखकर नाना प्रकार से पाठ्य को प्रस्तुत करता है। यथा – संस्कृत शिक्षण की प्राचीन विधियाँ -(i) पाठशाला विधि (ii) प्रश्नोत्तर विधि (iii) मौखिक एवं व्यक्तिगत शिक्षण विधि (iv) पारायण विधि (v) वाद-विवाद विधि (vi) सूत्र विधि (vii) कथा कथन विधि (viii) कक्षा नायक विधि (ix) भाषण विधि (x) व्याकरण विधि (xi) व्याकरण अनुवाद विधि (भण्डारकर विधि)

संस्कृत शिक्षण की नवीन विधियाँ - (i) पाठ्य-पुस्तक विधि (ii) प्रत्यक्ष विधि (iii) विश्लेषणात्मक विधि (iv) व्याख्या विधि (v) हरबार्टीय पंचपदी विधि (vi) मूल्यांकन विधि

मूल्यांकन में नवाचार- मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है। जब हम इसे किसी कालखंड में बाँधकर किसी निश्चित पाठ्यवस्तु के आधार पर कुछ निश्चित उपकरणों द्वारा मूल्यांकन करने का प्रयास करते हैं तो वह नवाचार की आवश्यकता का अनुभव करता है। यह नवाचार सदैव नई युक्तियों, विधियों एवं प्रणालियों में निहित होता है। मूल्यांकन प्राचीन भारतीय शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग रहा है, किन्तु अब यह अत्यन्त सूक्ष्म और वैज्ञानिक हो गया है। यह मूल्यांकन मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं - लिखित और मौखिक। परन्तु वर्तमान युग में बाह्य तथा आन्तरिक परीक्षाएँ (External and internal examination) निकष सन्दर्भित परीक्षाएं (Criterion-Referenced Test), निर्माणात्मक (Formative), संकलनात्मक (Summative), सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (Continuous and Comprehensive Evaluation), निबन्धात्मक परीक्षाएँ (Essay Type Test), वस्तुनिष्ठ एवं लघु उत्तरी परीक्षाएँ (Objective and Short Type Test) इत्यादि। इनके भी अनेक सूक्ष्म भेद एवं उपभेद हैं।

संस्कृत शिक्षण व्यवस्था में नवाचार- शिक्षण-प्रक्रिया शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच संबंधों की धुरी है। यहीं से व्यक्ति अपने सीखने और सिखाने की रुचि, लालसा और ज्ञान-प्राप्ति के लिए सजग एवं समुन्नत होने की ओर निरन्तर प्रवृत्त होता है। शिक्षण प्रक्रिया बालक के व्यवहार की परिणति को रेखांकित करता है। जब हम कक्षा शिक्षण में नए-नए उपादानों का प्रयोग करके वांछित परिणाम प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते हैं तो हमारे द्वारा प्रयुक्त की गईं विधियाँ अथवा युक्तियाँ हमारे लिए शिक्षण नवोन्मेष का एक कारण मानी जाती है। बालक समाज का एक अवयव है तथा समाज में उसकी उपयोगिता चिर निहित है। जब बालक समाज से दक्षता की माँग करता है तो समाजोपयोगी दक्षता में व्यक्ति को पारंगत करने के लिए सैदधांतिक एवं व्यावहारिक दोनों तरह के नवाचारों का प्रयोग किया जाता है।

सैद्धांतिक नवाचार - हर व्यक्ति अपनी जरूरतें जिस माध्यम से पूरा करना चाहता है, वह शिक्षा व्यवस्था में निहित है। उसे अपने श्रेय तक पहुँचाने के लिए प्रदत्त प्रक्रियाओं से हमारे आर्ष ग्रन्थ भरे पड़े हैं। यह बात अलग है कि वह प्रक्रिया कालक्रम और युगबोध की सूचक रही है। समाज अपनी जरूरतों के अनुसार अपने नागरिकों में बदलाव चाहता है और यह बदलाव विद्यालयों द्वारा ही संभव है। इसके लिए व्यावहारिक रूप से अपना कार्य संपादित करने के पूर्व उसका सैद्धान्तिक निरूपण

अत्यन्त आवश्यक है। कभी-कभी यह संकेतों और सूत्रों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। संकेतों और सूत्रों को छात्र हित एवं समुदाय हित में खोल पाना एक शिक्षक के लिए चुनौती है। जब शिक्षक किसी भी ज्ञान की सूत्रात्मक संक्षिप्त प्रविधि को खोलने के लिए नई-नई युक्तियों का प्रयोग करता है तो उसे नवाचार कहते है।

व्यावहारिक नवाचार - सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप से सिद्ध करते हुए जन उपयोगी बनाने के लिए जब हम विद्यार्थियों के सामने उसे लागू करने की ओर विभिन्न व्यावहारिक क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से संकल्पबद्ध हो क्रियाशील होते हैं तब उससे प्राप्त लक्ष्य संधान जन सामान्य में व्यावहारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत समाकलित किया जाता है। व्यावहारिक प्रक्रिया केवल कक्षा की प्रक्रिया ही नहीं है अपितु यह समाज के प्रयोगशाला में अपनाई जानेवाली एक बृहत् प्रायौगिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत भूल एवं सुधार के माध्यम से हम व्यक्ति में सद्गुणों का विकास करते हैं और अवगुणों को दूर करते हैं। संस्कृत शिक्षण के सिद्धान्त और व्यवहार में 3 सूत्रों - बौधायन के शुल्बसूत्र आपस्तम्ब के गृह्यसूत्र, और आश्वलायन के धर्मसूत्र को हम जन सामान्य के जीवन जीने के तरीकों के रूप में मान सकते हैं। नैतिक एवं सामाजिक शिक्षा के साथ-साथ जब हम इन सूत्रों में वर्णित विचार-श्रृंखला को शिक्षण का आधार बनाते हैं तब तो हमारी सृजनशीलता नए परिणाम का वाहक होती है।

नूतन प्रविधियों द्वारा प्राचीन ज्ञान एवं विज्ञान आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों को बोध करा सकें तो यह नवाचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य होगा । संस्कृत वांमय में ज्ञान और विज्ञान रूपी रत्न भरे पड़े हैं, जिनका शोध अनुसंधान और अनुप्रयोग यदि कक्षा शिक्षण में समुचित पद्धति से किया जाए तो यह नवाचार के कई प्रतिमान उपस्थित कर सकता है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि हम अपनी शिक्षा-संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य शिक्षण पद्धति को अपनाने में ही नवाचार समझते हैं। हमारा यह कार्य ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार संस्कृत वांग्मय में छिपे रत्नों की जगह पाश्चात्य देशों से कंकर-पत्थर जैसे जूठन इकट्ठा करना। नवाचार की जड़ें उपकरण के लिए भले ही कहीं और से ग्राह्य हो सकती हैं लेकिन उनका सम्बन्ध भारतीय अस्मिता के साथ होना परम आवश्यक है। सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से उनका अनुपालन अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान की प्राचीन परम्परा का अनुसन्धान एवं वैज्ञानिक अनुप्रयोग भी नवाचार की श्रेणी में आता है।

शिक्षण प्रविधि में नवाचार - शिक्षण प्रविधियाँ सम्प्रेषण के तरीके को प्रदर्शित करती हैं। यह पाठ- संप्रेषण में अलग तरीके से प्रयोग की जा सकती है। एक शिक्षक वह चाहे सामाजिक विषय का हो, गणित का हो भाषा का हो, उसकी प्रविधि निश्चित रूप से बदलाव को लेती हुई होती है। पढ़ने-लिखने और गणित सीखने में कौशल केंद्रित प्रविधियाँ प्रयोग की जा सकती हैं। संस्कृत का अध्ययन दो तरह से किया जाता है-(i) संवाद की भाषा के रूप में (ii) विषय वस्तु के रूप में।

संवाद की भाषा के रूप में - संवाद की भाषा का अभिप्राय किसी भी सूचना या जानकारी का एक जगह से दूसरी जगह तक पहुँचाने अथवा ले जाने संबंधित है। संवाद की भाषा द्वारा न केवल संस्कृत, अपितु प्रत्येक विषय का पठन-पाठन कर सकते हैं। विद्यार्थियों के दैनिक जीवन में उनके संवाद से लेकर सार्वजनिक जीवन में वार्तालाप इसी पर निर्भर करते हैं। गणित, विज्ञान एवं मानविकी के साथ-साथ नैतिक और सामाजिक शिक्षण में सम्पर्क भाषा के रूप में संस्कृत का प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह से हम विविधता में एकता के भाव को प्रगाढ़ कर सकते हैं। संवाद जीवन के प्राण हैं। हमारे द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ हमारी संस्कारशीलता को भी दर्शाती हैं। हम इनके द्वारा यह निश्चित कर पाते हैं कि हम क्या कह-सुन रहे हैं। इसके साथ ही साथ सीखने का भाव अपने आप आता है। संवाद जोड़ने का कार्य करता है। भाषा कभी भी एक पक्षीय नहीं होती। यह जीवन में समग्रता का बोध कराती है।

विषय वस्तु के रूप में - विषय वस्तु के रूप में शिक्षण प्रविधि विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप पाठ्यक्रम के निर्धारण से संबंधित है। विषय वस्तु समाज की जरूरतों के अनुरूप होती है। विद्यार्थी और शिक्षक विषय वस्तु की प्रस्तुति में नए-नए तरीके प्रयोग में लाते हैं। संस्कृत-शिक्षण प्रविधियों में व्याख्यान, भाषा-क्रीडा आदि को प्रमुख स्थान दिया जाता है। शिक्षण प्रविधि समय एवं जरूरत के अनुसार स्वयं को परिष्कृत करती रहती है। भाषा शिक्षण में पढ़ना, लिखना बोलना, सुनना जैसे कौशलों के विकास के लिए पाठ्य सामग्री का नियोजन किया जाता है और उस के अनुरूप निर्धारित ढंग से पाठ्य प्रस्तुति की जाती है। अतः नवाचार का संस्कृत शिक्षण में यथा सम्भव प्रयोग किया जाना चाहिए तथा ऐसे प्रयोग का खुले दिल से स्वागत करना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह उक्ति अत्यन्त प्रासंगिक है- अनुगच्छन्तु प्रवाहम्।

जेलों में शिक्षा और इग्नू की भूमिका

डॉ. वर्तिका नंदा[1]

'जेलों में शिक्षा' का सीधा मतलब है- पुनर्वास और वैचारिक बदलाव। अगर आप किसी प्राय: को उसी विद्या या गुण के साथ रिहा करते हैं जिसके साथ वह अंदर गया था तो जब वह बाहर आएगा तो उन्हीं गतिविधियों में फिर से शामिल होगा जिनकी वजह से वह जेल में आ पहुँचा था। - **अज्ञात**

जेल सुधार की आधुनिक अवधारणाओं में जेल के अंदर शिक्षा को बंदियों की बुनियादी जरूरत के तौर पर प्राथमिकता दी जाने लगी है। यह माना जाता है कि बंदियों के जेल से छूटने के बाद उन्हें समाज में लौटने और अपनी जगह को फिर से बना पाने में शिक्षा अहं भूमिका निभा सकती है।शायद यह भी एक वजह है कि जेल में बंदियों के शिक्षण पर संयुक्त राष्ट्र, सर्वोच्च न्यायालय और मानवाधिकार आयोगों ने जोर दिया है। मॉडल प्रिजन मैनुअल के मुताबिक बंदियों के संपूर्ण विकास के लिए शिक्षा सबसे बड़ा माध्यम है। शिक्षा के जरिए उनकी सोच, आदतों और परिप्रेक्ष्य में पूरी तरह से बदलाव लाया जा सकता है। शिक्षित होने पर कई बार बंदियों में अपराध की प्रवृत्ति के घटने की संभावना बढ़ती है। अपराध कम होने से पीड़ितों की संख्या घटती है और साथ ही घटता हैजेलों पर - भीड़ का दबाव।

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के 31 दिसंबर, 2016 तक के जारी आंकड़ों के मुताबिक कुल 4,26,163 बंदी कैदी भारत की 1400 जेलों में बंद थे। इन कैदियों में 1,33,317 दोषी 2,89,800 विचारणाधीन और 3,046 निरुद्ध किए गए थे। इसके अलावा 1,942 बच्चे भी थे जो अपनी माताओं के साथ जेल में रह रहे थे। भारतीय जेलों में क्षमता से 14 फीसदी ज़्यादा बंदी कैदी रह रहे हैं। इस मामले में छत्तीसगढ़ और दिल्ली देश में सबसे आगे हैं जहाँ जेलों में क्षमता से दोगुने से ज्यादा बंदी हैं। इस हिसाब से उत्तर प्रदेश में बंदियों की संख्या सबसे ज्यादा ((94,939)) थी। इसके बाद मध्य प्रदेश में 37, 627 और बिहार में 33, 013 बंदी थे जो यथाक्रम कुल संख्या का 22.25%, 8.82% और 7.74% है। देश की विभिन्न अदालतों में 31 मार्च, 2016 तक लंबित पड़े मामलों की संख्या 3.1 करोड़ थी। ऐसे में जेलों

[1] **पत्रकारिता विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, (दिल्ली विश्वविद्यालय नई-दिल्ली)**

में शिक्षा की जरूरत के महत्व को समझा जा सकता है। लेकिन इसके लिए जेलों में आने वाले बंदियों की शैक्षणिक योग्यता को जानना भी जरूरी है।

जेलों में बंदियों की शैक्षणिक स्थिति

31 दिसंबर 2016 के आंकड़ों के मुताबिक जेलों में 28.4 प्रतिशत बंदी अनपढ़ थे जबकि 1.8 प्रतिशत बंदी स्नातकोत्तर थे। इस परिस्थिति में जेलों का यह दायित्व बन जाता है कि वे बंदियों की शिक्षा केलिए अग्रसर रहें। फिर भी इस दिशा में किए गए प्रयासों का ही नतीजा है कि 2016 में भारतकी जेलों में 1,30,443 बंदियों को शिक्षा मुहैया करवाई गई। इनमें 12,923 बंदियों नें उच्च शिक्षा हासिल की जबकि 8,779 बंदियों को कंप्यूटर की ट्रेनिंग दी गई। तेलंगाना, उत्तर प्रदेश और गुजरात में 2,452, 2,454 और 1,083 बंदियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की। जेलें यह समझने लगी हैं कि अपराधों को कम करना है तो ज्यादा से ज्यादा लोगों को शिक्षित करना होगा ताकि आपराधिक प्रवृत्ति में कमी लाई जा सके। चीनी चिंतक कन्फ्यूशियस ने कहा था कि ज्ञान ऐसा होना चाहिए जिसका सभी फायदा उठा सकें। पढ़े बिना बुद्धिमान व्यक्ति मूर्ख बन सकता है और पढ़कर मूर्ख व्यक्ति बुद्धिमान। ऐसे में किसी अपराध की सजा के तौर पर जेलों में आए बंदियों को शिक्षा से जोड़ना पूरे समाज के लिए फायदेमंद हो सकता है। बंदियों केलिए मुख्य चुनौती है- उनका अकेलापन जो उन्हें हताशा और फिर से अपराध की दुनिया में खींच ले जाने की क्षमता रखता है। जेलों के उदास और नकारात्मक माहौल में शिक्षा का अभाव पूरी जेल व्यवस्था केलिए एक समस्या बन सकती है जिससे जेल के बंदी और जेल कर्मचारी सभी प्रभावित होंगे। बेशक शिक्षा का माहौल बंदियों को बेहतर इंसान बनाता है। यह माना जाता है कि ज्यादातर अपराध शिक्षा की कमी और बेरोजगारी के कारण किए जाते हैं। ऐसे में कम से कम जेल में आने के बाद अगर बंदियों को शिक्षा का माहौल मुहैया करवाया जाए तो हालात बेहतर हो सकते हैं क्योंकि शिक्षा मानसिक विकास, फैसले लेने की क्षमता और समझ में इजाफा करती है। यही वजह है कि सरकारें बंदियों को जेल में उनकी पसंद की डिग्री या स्कूल की परीक्षा देने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। बंदियों को दीक्षांत समारोह आदि में भाग लेने की अनुमति भी दी जाती है और कई मामलों में तो परीक्षा में अच्छे परिणाम और अच्छे व्यवहार के चलते बंदियों की सजा भी कम कर दी जाती है। इसके अलावा समुचित शिक्षा का माहौल देने से बंदियों के लिए कानूनी प्रक्रिया को समझना और उससे निपटना भी आसान हो सकता है और इससे समाज को अपराध मुक्त वातावरण भी मिल सकता है।

शिक्षा पाने से बंदियों के लिए अपने आप को सामाजिक माहौल में ढालना और जेल से बाहर लौटने पर समाज का हिस्सा बन जाना भी आसान होता है।

इग्नू की भूमिका

इग्नू ने जेलों में शिक्षा की एक बड़ी जिम्मेदारी निभाई है। इग्नू की स्थापना 1985 में संसद् के एक अधिनियम द्वारा की गई थी ताकि समाज के सभी वर्गों को गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान की जा सके। इसका उद्देश्य विभिन्न स्तरों पर गुणवत्ता, रचनात्मकता और आवश्यकता-आधारित कार्यक्रमों को उपलब्ध करानाथा। इग्नू बेहद कम कीमत में शिक्षा मुहैया करवाने का एक सफल मंच है। इग्नू उच्च शिक्षा को समावेशी बनाकर शिक्षा के लोकतंत्रीकरण के अवसरों में लगातार वृद्धि कर रहा है। विश्वविद्यालय ने एक लचीला और रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है जिससे शिक्षार्थियों को पढ़ाई के साथ-साथ काम करने का मौका मिलता है। इग्नू के शैक्षणिक कार्यक्रम देश की विविध आवश्यकताओं के अनुकूल हैं और यह छात्र को पूरी क्षमता के साथ शिक्षा-प्रक्रिया में शामिल होने में मदद करते हैं। ऐसे में इग्नू को एक ऐसे मजबूत मंच के तौर पर देखा जा सकता है जिसने जेलों में शिक्षा के स्तर में इजाफा लाने और बंदियों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने में बड़ा योगदान दिया है। इग्नू ने 2010 में भारत भर में विचारणाधीन और सिद्ध दोषी- सभी बंदियों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करके मानवाधिकार की दिशा में एक बड़ी पहल की है। इस वर्ष के शैक्षणिक सत्र में इग्नू ने बंदियों के लिए मुफ्त शिक्षा' की घोषणा की और विश्वविद्यालय में पढ़ने के इच्छुक देश भर के उन सभी बंदियों के लिए फीस (सभी प्रकार के शुल्क जैसे प्रवेश शुल्क, परीक्षा शुल्क, आवेदन शुल्क, दीक्षांत शुल्क आदि) माफ कर दी। इग्नू के कर्मचारियों की देख-रेख में सभी जेलों को अध्ययन सामग्री और पुस्तकालय सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। जेल परिसर के भीतर सभी नामांकित बंदियों के लिए परीक्षा आयोजित करने सहित शिक्षण लेन-देन के हर पहलू को संचालित करने के लिए प्रावधान किए गए हैं। विचारणाधीन बंदी भी फ्रीशिप के लाभ के लिए पात्र हैं जो सिद्ध दोषी बंदियों के लिए हैं। लेकिन जब बंदी जेल से छूटकर बाहर जाएँगे तो उन्हें एक साधारण छात्र की तरह ही माना जाएगा और तब उन्हें कोर्स की फीस भी देनी होगी। इग्नू के इस बेहद कारगर कदम से महिला और पुरुष बंदियों को सकारात्मक व्यस्तता और चिंतनशील होने के अवसर मिले हैं। इसने बंदियों की रिहाई में भी एक बड़ी भूमिका निभाई है जिसकी कभी विस्तार से चर्चा नहीं की गई। ऐसे में इग्नू बंदियों को समाज के लिए एक बेहतर नागरिक बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। इग्नू की इस सार्थक कोशिश ने देशभर के बंदियों को

विकास के स्तर पर आपस में जोड़ दिया है और शिक्षा के मौके देकर मानवाधिकार के क्षेत्र में भी बड़ा योगदान दिया है। असल में बाहरी दुनिया से संवाद से कटी जेलों में इग्नू की मौजूदगी ने शिक्षा के जरिए बंदियों की जिंदगियों में ठहराव आने से बचा लिया है।

तालिका- जेलों में इग्नू के जरिए पढ़नेवाले बंदियों की संख्या

स्रोत- इग्नू

http://ndpublisher.in/admin/issues/EQv9n1f.pdf

IGNOU Total Enrollment Pattern Vs. Jail Inmates
(Enrollment Pattern and Pass out percentage) across the Country

Year	Total Admission	Jail Inmates admission	Jail Inmates Admission	Jail Inmates Awarded Degree	Jail Inmates Awarded Degree
2007-12	2187214	7772	0.33	199	2.56
2013	379348	11251	2.97	324	2.88
2014	407820	11224	2.75	317	2.82
2015	476405	10822	2.27	113	1.04
Year	1263573	33297	2.66	754	2.25
Source " Chaudhay et. al. Degree					

जेल में शिक्षा और बंदियों के नतीजे

2013 में भारत में उच्च शिक्षा की सुविधाओं का लाभ उठाने वाले बंदियों की कुल संख्या 8311 थी। वर्ष 2013 में बंदियों को उच्च शिक्षा की सुविधाओं का लाभ लेने वाले राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश चंडीगढ़ और दिल्ली की जेलें शामिल हैं। वर्ष 2013 में उच्च शिक्षा की सुविधाओं का लाभ उठाने वाले प्रदेशों में उत्तर प्रदेश 1353 बंदियों के साथ शीर्ष स्थान पर रहा जो कि देश भर की जेलों में पढ़ रहे कुल 8311 बंदियों का 16.28% था। हरियाणा में उच्च शिक्षा की सुविधाओं से लाभ उठाने वाले बंदियों कि संख्या 1112 थी (13.38%), दिल्ली में 908 बंदी लाभार्थी थे जिनका प्रतिशत 10.93 था; महाराष्ट्र में उच्च शिक्षा की सुविधाओं से लाभ उठाने वाले 882 बंदी थे जिनका प्रतिशत 10.61 था। गुजरात में उच्च शिक्षा की सुविधाओं से लाभान्वित बंदियों की संख्या 875 थी जो

कुल बंदियों का 10.53% हिस्सा था। साल दर साल जेलों के आंकड़े देखें तो जेलों में शिक्षा के स्तर में बढ़ोतरी के प्रमाण मिलते हैं।

जेलों में शिक्षा मुहैया कराने में चुनौतियाँ

जेलों में पढ़ाई के होने के अपराधों का कम होने से सीधा संबंध है। ऐसा होने पर समाज को अपराध से छुटकारा मिलने के आसार तो बनेंगे ही साथ ही अनावश्यक ,व्यय में भी कमी आएगी। जेलों के तमाम शैक्षिक कार्यक्रम इन बंदियों को सकारात्मक तौर पर सक्रिय रखने और नए अवसरों से जोड़ने में मदद करते हुए उन्हें अपने जीवन को दुबारा से शुरू करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। लेकिन जेलें खुद अपने सीमित संसाधनों से सभी दायित्व पूरे नहीं कर सकतीं। ऐसे में उसके लिए सामाजिक संगठनों पर निर्भर होना लाजिमी है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने जेलों में शिक्षा को लेकर एन जी ओ की भूमिका पर भी काफी जोर दिया है। आयोग ने इस मामले में एक विस्तृत रूपरेखा भी बनाई है जिसके अनुसार

- बंदियों को सम्मानजनक जिंदगी जीने का अधिकार है। बंदियों के पढ़नेलिखने पर बेवजह रोक - नहीं लगाई जा सकती।
- बंदियों को शिक्षा से जुड़ी सामग्री लाने और उनके कौशल में सुधार लाने केलिए जेल में प्रावधान होने चाहिए।
- हर जेल में एक पुस्तकालय होना चाहिए जिसमें मनोरंजन और ज्ञान से जुड़ी किताबें हों। बंदियों को इनके इस्तेमाल के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जेलों के पुस्तकालय में कम से कम उतनी किताबें जरूर होनी चाहिए जो जेल की जनसंख्या, उसकी प्रकृति, जरूरतों और जेल के क्षेत्रफल से मेल खाती हों।
- जेलों में अलगअलग तरह के ऐसे कार्यक्रम - किए जाने चाहिए जो अनपढ़ और शिक्षित, दोनों तरह के बंदियों के काम आ सकें। ऐसे कार्यक्रम बनाते समय जेलों के बंदियों की शैक्षिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

- बंदियों को जेल के बाहर से पढ़ने की सामग्री से मँगवाने के लिए जायज स्तर पर छूट मिलनी चाहिए। बंदियों की आवश्यकता के अनुसार उन्हें ज्यादा से ज्यादा किताबों को मुहैया कराने में जेल को सहयोग करना चाहिए।

लेकिन इन दिशा-निर्देशों का फायदा महिला बंदियों तक नहीं पहुँच पाता। देश की सभी जेलों में पुस्तकालय असल में पुरुषों की जेल का ही हिस्सा है जहाँ पर नियम के अनुसार महिलाएं जा ही नहीं सकतीं। कुछ जेलों में महिलाओं के लिए एक छोटी पुस्तकालय सुलभ है। इन जेलों की किताबों को देख कर जेल प्रशासन की रुचि का भी पता लगाया जा सकता है। जेलों की किताबें बोझिल, ऊबाऊ और पूरी तरह से पुराने विषयों के आस-पास ही दिखाई देती हैं। कई बार यहाँ पर धार्मिक किताबें मिलती हैं या फिर कुछ एक ऐसे नेताओं की जीवनियां जिन्हें वे कई बार पढ़ चुकी हैं। जेल के इन पुस्तकालयों की दीवारें सीलन भरी होती हैं, टूटी कुर्सियां,मेजें और जैसी-तैसी खड़ी हुई अलमारियाँ जेल में किताबों की अहमियत खुद ही बोल देती हैं। इन पुस्तकालयों में यह आकर्षण भी दिखाई नहीं देता कि महिला बंदी यहाँ आकर पढ़ सकें। इन पुस्तकालयों के रजिस्टर देखकर यह समझ आ जाता है कि जेल की प्राथमिकता की सूची में पुस्तकालय होता ही नहीं है।

भारत में केवल महिलाओं के लिए सिर्फ 18 जेलें हैं। बाकी तमाम जगहों में महिला जेलें पुरुषों की जेलों का एक हिस्सा होती हैं। वे उसकी एक यूनिट हैं। इससे यह स्पष्ट है कि जेलों को पुरुषों की जरूरत के हिसाब से ही बनाया गया था। महिलाओं को बाद में उसमें किसी तरह से डाल दिया गया ताकि जगह की कमी और उनके लिए अतिरिक्त सुरक्षा मुहैया करवाने की झंझट से बचा जा सके। चूंकि जेलों की सरंचना ओर निर्माण पुरुषों की जरूरतों के हिसाब से किया गया था, वे आज भी उसी ढर्रे पर चलती हैं। महिलाएं और बच्चे जेलों के हिस्से में बाद में आए थे लेकिन उनकी मौजूदगी के बावजूद भारतीय जेलों में वांछित परिवर्तन की कोशिश नहीं की गई।

उत्तर प्रदेश की जेलों में इग्नू का योगदान

देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की जेलों में इग्नू की भूमिका काफी कारगर रही है। स्नातक डिग्री से लेकर डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्स के जरिए ये बंदी खुद को सुशिक्षित कर रहे हैं। बंदियों को स्नातक कार्यक्रम में उपस्थित होने की अनुमति है।उत्तर प्रदेश में नारी बंदी निकेतन के सहयोग से राज्य का कारागार विभाग, महिला कैदियों को पुनर्वास कार्यक्रम में "सब पढ़ें, सब पढ़ाएं" के नारे के

साथ शिक्षा प्रदान करने में जुटा है। बंदियों को आईटीआई के माध्यम से तकनीकी शिक्षा सहित उच्च शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है।

स्रोतउत्तर प्रदेश जेल प्रशासन - 2019

देश की लगभग सबसे पुरानी जेल आगरा की जिला जेल है।-बंदियों को इग्नू के जरिए शिक्षित होने के लिए प्रोत्साहित करता हैं।

बंदियों की सफलता

देश की विभिन्न जेलों से कुछ सफलता की कहानियाँ और उपलब्धियां हैं। ये बंदी आजीविका के स्थाई साधन प्राप्त करके अपने परिवारों को जेल से लौट कर मुख्य धारा से जुड़कर नई जिंदगी शुरू करने का भरोसा दे पा रहे हैं। वे अब सामाजिक जिंदगी में अपनी स्वीकार्यता बना पा रहे हैं। ऐसे उदाहरण देशभर की जेलों से लिए जा सकते हैं।

- 65 साल की जैतून राजस्थान की भीलवाड़ा जिला जेल में बंदी है। वह 2014 में जब जेल में आई तो अशिक्षित थी। जेल में ही उसने पढ़ना शुरू किया और बुनियादी साक्षरता परीक्षा को पास किया। अब वह जेल की अन्य महिला बंदियों को शिक्षित होने के लिए प्रेरित करती है। जैतून को 2016 में 'तिनका तिनका बंदिनी' अवॉर्ड से सम्मानित किया गया।

- चंडीगढ़ जेल में बंद रेखा और सुषमा बंसल को महिलाओं को इग्नू के जरिए शिक्षा पाने के लिए प्रेरित करने के लिए गुजरात की सूरत जेल में बंद मीनाबेन को जेल के साक्षरता स्तर में सुधार लाने और जेल के बच्चों को पढ़ाने में अपने योगदान देने केलिए 'तिनका तिनका बंदिनी' अवॉर्ड से सम्मानित किया गया।

- भानु भाई पटेल ने विभिन्न विश्वविद्यालयों /शैक्षणिक संस्थानों से 54 अधिक डिग्रियाँ हासिल की हैं जिनमें से 23 इग्नू से हैं। पट को यूनीक वर्ल्ड रिकॉर्ड्स और एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स से प्रमाण पत्र मिला है। बाद में वे डॉ बाबा साहेब अम्बेडकर ओपन विश्वविद्यालय, अहमदाबाद में सलाहकार के तौर पर शामिल हुए।

सारांश

इग्नू के जरिए देश की जेलों में शिक्षा की यह मुहिम राष्ट्र-निर्माण की तरफ एक बड़ा कदम है। जेलों में शिक्षित होते यह बंदी जेल से बाहर आकर अपने पुनर्वास के बेहतर अवसर हासिल कर पाते हैं। इससे उनकी आजीविका का साधन भी बनता है और अपराध से विमुखता पैदा होने के आसार भी बनते हैं। भीड़ से भरी जेलों में किसी अध्यापक की कमी होने पर भी इग्नू की मौजूदगी ने यह विश्वास जताया है कि अगर प्रशासन और बंदी चाहेंगे तो इग्नू उनकी शिक्षा के स्तर को अगले पायदान पर ले जाने के लिए तत्पर रहेगी।

संदर्भः

- देश की 1382 जेलों की अमानवीय स्थितिके संबंध में सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका पर 27 मार्च 2018 को हुई सुनवाई
- नन्दा, वर्तिकाः तिनका तिनका मध्य प्रदेश. तिनका तिनका फाउंडेशन, 2018
- नन्दा, वर्तिकाः तिनका तिनका डासना. तिनका तिनका फाउंडेशन, 2016
- नन्दा, वर्तिकाः तिनका तिनका तिहाड़ः राजकमल प्रकाशनः 2013
- अमित कुमार जैन और उपेंद्र नाथ त्रिपाठी, एजुकेशनल क्वेस्ट, 2018
- प्रिजनर्स राइट टू एजुकेशन, के वी पी सिंह, शोधगंगा
- www.tinkatinkaprisonreforms.org
- नन्दा, वर्तिकाः प्रिजन्स मस्ट डू मोर टू हेल्प देयर विमेन इन्मेट्स, हिंदुस्तान टाइम्स,10 जून 2019

वेबसाइटः

- गृह मंत्रालय और नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की वेबसाइट
- लोक सभा और राज्य सभा की वेबसाइट

https://digitallearning.eletsonline.com/2011/06/ignou-educating-inmates-in-correctional homes/
http://ndpublisher.in/admin/issues/EQv9n1f.pdf
http://ndpublisher.in/admin/issues/EQv9n1f.pdf
https://community.data.gov.in/higher-educational-facilities-provided-to-prisoners-during-2013/

शिक्षाशास्त्र के संप्रत्यय अध्ययन में वस्तुनिष्ठता

डॉ सुभाष सिंह[1]

वस्तुनिष्ठता (ऑब्जेक्टिविटी) किसी अध्ययन से संबंधित वह विशेषता है जो यथार्थ अवलोकन पर आधारित होती है। जब हम अपने धर्म, जाति-प्रजाति, विश्वास-क्षेत्र एवं निजी विचारों से पृथक रहकर कोई अध्ययन करते हैं, तब ऐसे अध्ययन को हम वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहते हैं। ऐसे अध्ययन का उद्देश्य किसी तथ्य की अच्छाई-बुराई अथवा उससे संबंधित उचित और अनुचित को देखना नहीं होता बल्कि तथ्यों का विश्लेपण करना होता है। इस प्रकार उनके वास्तविक रूप में प्रवृत्ति तथा वैज्ञानिक प्रयास की संयुक्तता को ही हम वस्तुनिष्ठता के अर्थ के रूप में स्पष्ट करते हैं।

वस्तुनिष्ठता :

ग्रीन (ए.डब्ल्यू) के शब्दों में- "वस्तु निष्ठता निष्पक्ष रूप से किसी तथ्य का परीक्षण करने की इच्छा और योग्यता है।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि वस्तुनिष्ठता एक ऐसी विशेषता है जिसमें निपक्ष अध्ययन की इच्छा और योग्यता दोनों का होना आवश्यक है। 'इच्छा' का तात्पर्य विभिन्न घटनाओं को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने की इच्छा से है जबकि 'योग्यता' का संबंध व्यक्ति निष्ठता को दूर रखने की कुशलता से है। इसका तात्पर्य है कि एक अध्ययनकर्ता जब कुशलतापूर्वक तथ्यों को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है तब इसी विशेषता को हम वस्तुनिष्ठता कहते हैं।

फेयर चाइल्ड के अनुसार - " वस्तु निष्ठता का अभिप्राय एक ऐसी योग्यता से है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन दशाओं से पृथक् रख सके जिसका वह स्वयं एक अंग है तथा किसी तरह के लगाव अथवा भावना के स्थान पर पक्षपात रहित और पूर्वाग्रहों से मुक्त तर्कों के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके स्वाभाविक रूप में देख सके।"

यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति :

प्रत्येक अध्ययन का उद्देश्य कुछ विशेष तथ्यों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना होता है, लेकिन सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में इस प्रवृत्ति की आवश्यकता कहीं अधिक है। सामाजिक अनुसंधानों में वस्तुनिष्ठता के द्वारा ही यथार्थ और उपयोगी ज्ञान का संचय करना संभव है। सामाजिक

[1] **एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, आर.आर.पी.जी.कालेज, अमेठी-227405**

परिवर्तन के कारण आज विभिन्न सामाजिक घटनाओं एवं मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इस स्थिति में एक वस्तु निष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर ही समकालीन दशाओं से संबंधित यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए :

वस्तुनिष्ठता और वैज्ञानिक पद्धति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना निरर्थक है। इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति की प्रथम शर्त वस्तुनिष्ठता है और इसकी प्राप्ति वस्तुनिष्ठ पद्धति द्वारा ही संभव है। अतः यदि हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक पद्धति का सफल प्रयोग है तो अपने अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का प्रयत्न हमें करना ही होगा।

सामान्य भ्रांतियों को दूर करना :

मानव की यह प्रवृत्ति है कि वह अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर अनेक भ्रमों को विकसित कर लेता है यथा विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को समझने के लिए अपने विश्वासों को ही निर्णायक मानता रहता है।ऐसी सभी भ्रान्तियों को केवल वस्तुनिष्ठ अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों द्वारा ही दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अभी तक यह एक सामान्य भ्रान्ति थी कि अन्तर जातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तानें मूर्ख, अकुशल, अविवेकी या कभी- कभी अपंग होती हैं। इसके विपरीत जब वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित वस्तुनिष्ठ अध्ययन किए गए तो यह निष्कर्ष निकला कि अन्तरजातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तानें उन माता - पिता के बच्चों से अधिक योग्य एवं कुशल होती हैं, जिन्होंने अपनी जाति में विवाह किया ।

अनुसंधान के नए क्षेत्रों को विकसित करना :

एक अध्ययनकर्ता जब वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर अध्ययन कार्य करता है तो अनेक ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो जाते हैं जिन पर पहले कभी विचार नहीं किया गया था। यद्यपि ऐसे तथ्यों का अनावरण करना अध्ययनकर्ता का उद्देश्य नहीं होता तब भी उसे आकस्मिक रूप से ऐसे तथ्य प्राप्त हो जाते हैं। इससे अनुसंधान के अनेक नए क्षेत्र स्पष्ट होते हैं तथा विभिन्न अध्ययनकर्ताओं को उनका व्यापक रूप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति :

सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की सर्वप्रथम आवश्यकता व उसका महत्व यह है कि इसके बिना निष्पक्ष निष्कर्षों तक पहुँचना अनुसंधानकर्ता के लिए कदापि संभव नहीं। वस्तुनिष्ठता का अर्थ ही है कि पक्षपातरहित होकर घटनाओं की वास्तविकताओं को ढूंढ निकालना। अतः योग्य निष्कर्षों तक पहुँचना अनुसंधानकर्ता के लिए तब तक संम्भव नहीं होता तब तक उसमें वस्तुनिष्ठ अध्ययन या अनुसंधान करने की क्षमता न हो। इस अर्थ में वस्तुनिष्ठता वह साधन है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के संबंध में वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

तथ्यों के सत्यापन के लिए आवश्यक :

वैज्ञानिक अध्ययन की एक प्रमुख विशेषता उसकी सत्यापनशीलता है। इसका तात्पर्य है कि किसी भी ऐसे अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता जिससे प्राप्त तथ्यों की पुनर्परीक्षा न की जा सके । अध्ययन से संबंधित निष्कर्ष यदि यथार्थ हों तो उनकी किसी भी समय पुनर्परीक्षा करके उनका सत्यापन किया जा सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता इसलिए भी आवश्यक है जिससे सबंधित निष्कर्षों का कोई भी अध्ययनकर्ता सत्यापन कर सके।

वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन अथवा विधियाँ :

अपने अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर शिक्षाशास्त्रियों और सामाजशास्त्रियों ने उन अनेक साधनों का पता लगा लिया है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न इस बात का द्योतक है कि उसका अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ हो सके। इन इच्छाओं तथा प्रयत्नों को ही उन साधनों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण है।

अवधारणाओं का मानकीकरण :

विभिन्न सामाजिक अवधारणाओं का अर्थ स्पष्ट न होने से शोधकर्ता सूचनादाता एवं सामान्य व्यक्ति का अलग-अलग अर्थ लगाने लगते है। विभिन्न शब्दों और धारणाओं को जब एक सुनिश्चित रूप प्राप्त हो जाता है तो सभी शोधकर्ता सूचनादाता और विवेचनकर्ता का समान अर्थों में उपयोग करते

हैं जिसके फलस्वरूप अध्ययन में वस्तुनिष्ठता आने की सम्भावना बढ़ जाती है। यही अवधारणाओं का मानकीकरण है।

सामूहिक अनुसंधान :

शोधकर्ता में व्यक्तिगत अभिनति को दूर करने तथा वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में सामूहिक अनुसंधान का भी विशेष महत्व है। सामूहिक अध्ययन प्रमुख रूप से दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम, एक ही समस्या का किसी विशेष अध्ययन-पद्धति द्वारा और दो या अधिक शोधकर्ताओं द्वारा अध्ययन किया जाए और बाद में वे एक-दूसरे की सहायता से अंतिम निष्कर्षों को प्रस्तुत करें। ऐसी विधि से व्यक्तिनिष्ठता से संबंधित दोषों की सम्भावना बहुत कम रह जाती है। दूसरा तरीका यह है कि एक ही प्रकार की समस्या का दो या दो से अधिक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा अलग-अलग-विरोधाभासों को दूर करके एक सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाए।

प्रयोगसिद्ध पद्धतियों का उपयोग :

अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का सर्वप्रमुख व उल्लेखनीय साधन यह है कि संपूर्ण अध्ययन कार्य में कहीं भी काल्पनिक या दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक विचारों को कोई भी स्थान न देकर केवल प्रयोगसिद्ध पद्धितियों का उपयोग किया जाता है। प्रयोगसिद्ध पद्धति से हमारा तात्पर्य अध्ययन की ऐसी प्रणाली से है जो कि वास्तविक निरीक्षण, सुनिश्चित तथ्य, परिमाणात्मक आंकड़ों तथा ठोस प्रमाणों पर आधारित हों और सर्व प्रकार से गुणात्मक दृष्टिकोण से बिल्कुल परे हों। प्रयोग सिद्ध प्रणाली व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों, भावनाओं, आदर्शों, मूल्यों या मानदंडों पर विश्वास नहीं करती और न ही इन्हीं के आधार पर अपने निष्कर्षों को प्रभावित होने देती है।

अनुसूची एवं प्रश्नावली प्रविधियों का प्रयोग :

वस्तुनिष्ठ अनुसंधान के लिए यह भी आवश्यक है कि हम अपने अनुसंधान- कार्य में उन प्रविधियों का प्रयोग करें जिनमें पक्षपात तथा मिथ्या-झुकाव के प्रवेश की संभावनाएं न्यूनतम हो। निरीक्षण पद्धति में इस प्रकार की संभावना अधिक होती है। अतः प्रश्नावली एवं अनुसूची प्रविधियों को अधिक निर्भर योग्य माना गया है। इनमें कुछ प्रमाणित प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर सूचनादाताओं को देना होता है। अतः स्वयं अनुसंधानकर्ता का पक्षपात तथा मिथ्या झुकाव इसमें अधिक हस्तक्षेप नहीं कर पाता है इसके सिवाए कि प्रश्नों को ही तोड़ मरोड़कर प्रश्नावली में प्रस्तुत किया जाए ।

यादृच्छिक निदर्शन रैंडम सैम्पलिंग पद्धति का उपयोग :

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति में एक कठिनाई दोपूर्ण ढंग से निदर्शनों का चुनाव करने के कारण भी उत्पन्न होती है। अपनी किसी पूर्वधारणा या पक्षपात के कारण अनुसंधानकर्ता ऐसे निदर्शनों को चुनता है जो कि उस घटना का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस दोष से बचने के लिए **यादृच्छिक** निदर्शन पद्धति का प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होता है। यह प्रायिकता निदर्शन प्रोबैबलिटि सैम्पलिंग की बहुतसी पद्धियों निदर्शन, स्तरीकृत निदर्शन, व्यवस्थित निदर्शन, बहुस्तरीय निदर्शन, गुच्छ निदर्शन, आदि में से एक पद्धति है।

अंतर- अनुशासनिक विधि का प्रयोग :

सामाजिक घटनाओं के गहन, निष्पक्ष तथा यथार्थ अध्ययन के लिए आजकल अन्तर अनुशासनिक विधि को बहुत उपयोगी समझा जाने लगा है। यह वह विधि है जिसके द्वारा किसी समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन विभिन्न विषयों के विद्वानों द्वारा पारस्परिक सहयोग से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी समस्या के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों का अध्ययन क्रमशः अर्थशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा मिल-जुलकर किया जाए तब हम इस पद्धति को अंतर-अनुशासनिक विधि कहते हैं।

मिश्रित सांस्कृतिक उपागम का उपयोग :

जब दो या दो से अधिक सांस्कृतिक समूहों अथवा क्षेत्रों के विशेषज्ञ मिलकर किसी एक ही स्थान पर एक विशेष समस्या का अध्ययन करते हैं, तब इसे मिश्रित सांस्कृतिक उपागम कहा जाता है। यदि एक अध्ययनकर्ता उसी सांस्कृतिक समूह का सदस्य हो जिसका वह अध्ययन कर रहा है तो वह कहीं अधिक तटस्थ रहकर यथार्थ तथ्यों को एकत्रित कर सकता है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि घटनाओं को स्वाभाविक रूप में देखना ही वस्तुनिष्ठता का वास्तविक आधार है। वस्तुनिष्ठता के अभाव में किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता चाहे वह बाह्य रूप से कितना ही श्रम-साध्य और आकर्षक प्रतीत क्यों न होता हो। वस्तुनिष्ठता के

अर्थ एवं महत्व से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठता सबसे अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण तथ्य है। इसके बिना किसी अध्ययन का कोई भी वैज्ञानिक मूल्य नहीं रह जाता।

संदर्भ :

- गुप्ता, एस.पी. (2001), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- गुप्ता, एस.पी. (2011), अनुसंधान संदर्शिका-संप्रत्यय, कार्यविधि एवं प्रविधि, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- मंगल,एस.के एवं शुभ्रा मंगल (2017), व्यावहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियां,पी.एच.आई. प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
- शर्मा,आर.ए. (2009), शिक्षा मापन के मूल तत्व एवं सांख्यिकी, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- सिंह, अरुण कुमार (2014), समाज मनोविज्ञान तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- त्रिपाठी, रमाशंकर (2004), सामाजिक शोध एवं सांख्यिकीय तार्किकता, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी।
- वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (2009), मापन एवं मूल्यांकन अधिगम अध्ययन सामग्री।

ज्ञान चर्चा - 1

पेशीय ऐंठन

सतीश चन्द्र सक्सेना[1]

यदा कदा रात को सोते हुए पिंडली या पंजे में पेशी के संकुचन के कारण तेज दर्द उठता है। ऐसी स्थिति में बिस्तर से उठकर पैर को जमीन पर रखकर दबाब डालकर और सहलाने से राहत मिल जाती है। जब तक पेशी का खिंचाव सामान्य नहीं हो जाता तब तक वे पल असह्य वेदना के होते हैं। परामर्शी तंत्रिका विज्ञानी (न्यूरोलॉजिस्ट) पेशी के इस प्रकार के संकुचन को, ऐंठन को क्रैम्प कहते हैं। कभी-कभी पेशी की गांठ भी दिखाई देती है। इस प्रकार के आकर्ष (spasm) तब होते हैं जब पेशियों का अनैच्छिक रूप से संकुचन हो जाता है और वे स्वतः शिथिल नहीं होतीं। इस प्रकार की ऐंठन कुछ सेकंडों से लेकर कुछ मिनटों तक होती है। जिन्हें बिना किसी रोग के जब इस प्रकार की पेशी ऐंठन होती है वह शरीर–क्रियात्मक ऐंठन (physiological cramp) कहलाती है। लगभग 95% व्यक्ति अपने जीवन काल में कभी न कभी इस प्रकार की ऐंठन महसूस करते हैं। ये सामान्यतः पैरों और अधिकतर पिंडली में देखे गए हैं और कभी कभी ही घटित होते हैं। अधिकतर ऐसी ऐंठन रात में उष्ण और आर्द्र (humid) मौसम में होती हैं।

विशेषज्ञों का मानना है कि इस प्रकार के संकुचन से पीड़ा, कष्ट और असहजता उत्पन्न होती है जो सतत, या रुक रुक कर या तरगों के रूप में हो सकती है या किसी कार्यकलाप को करते समय भी हो सकती हैं। ऐच्छिक पेशियों के अधिभारण (overloading) के कारण भी ऐसे क्रैम्प आ सकते हैं। इनका कारण संक्रमण, हार्मोन न्यूनता, वैद्युत अपघट्य असंतुलन (electrolyte inbalance) या किसी चोट के कारण भी हो सकता है। रुधिर प्रवाह के मंदन या कमी के कारण भी पेशी ऐंठन हो सकती है।

विशेषज्ञों के अनुसार समस्याओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

पेशी का अत्यधिक प्रयोग – अधिकतर पेशी ऐंठन इसी कारण होती है। अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम से उत्पन्न थकान के कारण, रात में पेशी ऐंठन हो सकती है। इस ऐंठन का वास्तविक कारण, पेशी को उत्तेजित करने वाले तंत्र-संकेतों और संकुचन को रोकने वाले संकेतों के मध्य असंतुलन है जो

[1] **बी.बी. 35 एफ, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058**

पेशी के बहुत अधिक थक जाने के कारण होता है। व्यायाम से पहले और बाद में अपर्याप्त तनाव या खिंचाव से भी पेशी ऐंठन हो सकती है।

वैद्युत अपघट्य असंतुलन – रुधिर में पोटैशियम तथा सोडियम के स्तर, अपेक्षा से कम होने पर भी वैद्युत अपघट्य असंतुलन हो सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार खिलाड़ियों को वैद्युत अपघट्य युक्त तरलों का पर्याप्त मात्रा में सेवन करके अपने शरीर को जलयोजित (hydrated) कर लेना चाहिए। पसीना आने से शरीर में सोडियम और पोटेशियम की कमी हो जाती है जिसकी पूर्ति आवश्यक है।

तंत्रिका रोग – वेदना प्रबंधन और प्रशामक देखरेख (palliative care) विशेषज्ञ डॉ. माधुरी लोकपुर का कहना है कि तंत्रिका रोगों तथा अवरोध के कारण भी पेशी ऐंठन हो सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी बहुपेशी विकृति जैसे ऊतक संयोजी रोग से ग्रस्त होता है तो पेशी ऐंठन हो सकती है, क्योंकि ऐसे रोग के कारण सभी तंत्रिकाएं प्रभावित हो सकती हैं।

तंत्रिका संपीडन – जब सुषुम्ना (स्पाइनल कार्ड) की तंत्रिकाओं में विशेषकर तंत्रिका वितरण क्षेत्र की तंत्रिकाओं में ऐंठन होती है तब भी पेशी ऐंठन हो सकती है । सुषुम्ना में डिस्क भ्रंश (prolapse) होने पर पैरों और हाथों में जाने वाली तंत्रिकाएं संपीडित हो जाती हैं।

औषधि प्रेरित पेशी ऐंठन – हृदय घात (heart failure), यकृत (लीवर) तथा वृक्क (किडनी) रोगों में शरीर में अधिक तरल जमा हो जाता है जिसे कम करने के लिए तथा उच्च रुधिर दाब के कुछ रोगियों में "फ्यूरोसिमाइड" औषधि का प्रयोग किया जाता है। इस औषधि के अधिक प्रयोग से शरीर में जल, सोडियम और पोटैशियम की कमी हो सकती है। जिससे वैद्युत अपघट्य संतुलन बिगड़ जाता है और पेशियों में ऐंठन हो सकती है।

दमा तथा कालेस्टेरॉल कम करने के लिए तथा ह्रदयरोगों में भी आजकल स्टेटिन के विभिन्न व्युत्पन्नों का प्रचुरता से प्रयोग हो रहा है। यह औषधि ह्रदयरोगों को नियंत्रित करके अचानक होने वाले ह्रदय के दौरे (heart attack) की संभावना को कम करती है। इस औषधि का आजीवन प्रयोग करना पड़ता है। जिससे पेशी वेदना या पेशी ऐंठन उत्पन्न हो सकती है।

इस कारण हम देखते है कि पेशी ऐंठन विभिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकती है। यह एक जटिल आयुर्विज्ञानी समस्या है तथा निदान भी आसान नहीं है। यदि इस प्रकार की ऐंठन यदा कदा होती है तथा इसकी अवधि कम होती है तो चिन्ता का विषय नहीं है। परंतु यदि ऐसे क्रैम्प बार-बार और जल्दी-

जल्दी आते हैं और इनकी अवधि अधिक रहती है तो निदान आवश्यक हो जाता है क्योंकि यह किसी रोग का संकेत हो सकता है।

एक पत्रिका में जानकारी प्रकाशित हुई थी कि रात को सोते समय खुशबूदार नहाने का साबुन रखने पर पेशी ऐंठन की आवृत्ति तथा उग्रता में कमी आती है। सामान्य कारणों से उत्पन्न ऐंठन में हो सकता है साबुन रखने से कुछ लाभ हो, क्योंकि यह मात्र टोटका नहीं है।

सुगंध चिकित्सा (aroma therapy) भी एक चिकित्सा पद्धति है जिसमें विभिन्न सुगंधियों से मन को शांति मिलती है और मन प्रफुल्लित हो जाता है। हो सकता है कि साबुन की खुशबू का पेशियों पर कुछ सौम्य प्रभाव पड़ता हो ।

ज्ञान चर्चा - 2

बचा हुआ भोजन और उसका सदुपयोग

सतीश चन्द्र सक्सेना[1]

सामान्यतः आजकल केंद्रि (लघु) परिवार ही होते हैं अर्थात पति – पत्नी और संतान। मेहमान भी यदा कदा ही आते हैं हो तथा उनके ठहरने की अवधि भी न्यूनतम होती है। जब संतान वयस्क हो जाती है तो विवाह-उपरांत वह अलग ही रहना पंसद करती है। बूढ़े माता-पिता भी आजकल अपनी वयस्क संतान के परिवार में स्थायी रूप से रहना कम पंसद करते हैं जब तक कि उनकी आर्थिक विवशता या शारीरिक अशक्तता न हो।

ऐसी स्थिति में प्रत्येक परिवार में भोजन परिवार की आवश्यकतानुसार ही पकाया जाता है। फिर भी कभी-कभी भोजन थोड़ा-बहुत बच ही जाता है। इसके निपटान के कई तरीके है। जब परिवार के अन्य सदस्य उस भोजन को खाने से मना करें तब उस खाने को समाप्त करने की जिम्मेदारी गृहिणी की होती है जो सामान्यतः उद्यत रहती हैं। उसे यह भी अहसास होता है कि मनोयोग से तैयार किए गए भोजन का तिरस्कार हो रहा है। यदि भोजन स्वादिष्ट है तो फ्रिज में रखने पर दूसरे दिन वह स्वाद नहीं रहता। वैसे आजकल सामान्यतः बचा हुआ भोजन फ्रिज में ही रखा जाता है।

सामान्यतः हम भारतीय पके हुए भोजन को फेंकना नहीं चाहते। अन्न को देवता माना जाता है इसलिए अन्न को फेंकने का अर्थ होता है अन्न देव का तिरस्कार करना। रोजी-रोटी (अन्न) के खातिर मनुष्य को दूर-दराज के क्षेत्र में जाना पड़ता है और इसके लिए वह परिश्रम भी करता है।

जब हम भोजन करते हैं तो जरूरत के अनुसार भोजन करने के लगभग 15-20 मिनट बाद हमारा पेट मस्तिष्क को संकेत भेजता है कि पेट भर गया है। जब पेट को पूरेपन का अहसास जाए तो फिर भोजन नहीं करना चहिए। कुछ लोग तो पूरेपन का अहसास होने से पहले ही भोजन बंद कर देते हैं। कभी-कभी जब भोजन बहुत स्वादिष्ट हो तो, खाना कुछ अधिक हो जाता है या सुबह का नाश्ता नहीं किया हो तो दोपहर का भोजन भी आवश्यकता से अधिक हो जाता है। यह उस समय तो पता नहीं चलता पर 15-20 मिनट बाद जब पेट का सिग्नल मस्तिष्क में पहुंचता है तो अफारा, गैस व बैचेनी शुरू

[1] **बी.बी. 35 एफ, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058**

हो जाती है। इसलिए जितनी आवश्यकता हो उतना ही भोजन करें। सर्दियों के मौसम में शरीर को गर्म रखने के लिए अतिरिक्त केलोरियों की आवश्यकता हो सकती है।

(1) अब हम अतिरिक्त भोजन की समस्या पर दूसरे पहलू से विचार करते हैं। यदि कोई व्यक्ति बचे भोजन के रूप में या अन्यथा अतिरिक्त 100 कैलोरी प्रतिदिन ग्रहण करता है तो एक 8 वर्ष में 36500 कैलोरी आपके पेट में पहुंचेगी जो संचित रह सकती हैं। यदि 36500 अतिरिक्त अनुपभुक्त कैलोरी से शरीर भार में 1 पाउन्ड की वृद्धि होती है तो इन 36500 अतिरिक्त कैलोरी से शरीर भार में 5kg तक की वृद्धि हो सकती है। जरा सोचिए, कि मात्र 100 कैलोरी के अतिरिक्त सेवन के कितने दुष्परिणाम हो सकते हैं?

(2) अतः अच्छा होगा कि परिवार की आवश्यकतानुसार भोजन की मात्रा का आंकलन कर लिया जाए और उतना ही भोजन पकाया जाए। थोड़ा सा अभ्यास करने के बाद परिवार में सही मात्रा में भोजन पकना शुरू हो जाएगा।

(3) दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि परिवार के किसी सदस्य द्वारा प्लेट में छोड़ा गया भोजन उस सदस्य की ही जिम्मेदारी है। उसे भविष्य में ऐसा न करने के लिए सचेत भी किया जा सकता हैं।

(4) आप स्वयं तथा अन्य सदस्य स्वयं का पालन करें और अपनी प्लेटों में सीमित मात्रा में भोजन परोसें।

(5) यदि कुछ भोजन बच जाता है तो कुछ गृहिणियां उस भोजन का किसी न किसी रूप में दूसरे दिन सुबह नाश्ते में प्रयोग कर लेती हैं।

अतः स्मरण रखें कि प्रतिदिन कुछ अतिरिक्त कैलोरियों के ग्रहण करने का प्रभाव आपकी कमर या पेट पर अतिरिक्त भार (kg) के रूप में पड़ सकता है जब कि आज का युवा और प्रौढ़ स्मार्ट व छरहरा (स्लिम) रहना चाहता है- जिसके लिए घरों में या जिम में व्यायाम के रूप में पसीना बहाता है ताकि शरीर का भार नियंत्रित रहे।

ऐसा दृष्टिकोण अपनाने से भोजन व्यर्थ नहीं जाने पाएगा।

ज्ञान चर्चा - 3

महिलाओं में अस्थिसुषिरता (ऑस्टियोपोरोसिस)

डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन[1]

कुछ महिलाँ तो नैसर्गिक रूप से रजोनिवृत्ति की स्थिति से गुजरती हैं और कुछ महिलाओं का गर्भाशय व डिंबकोश शल्य-क्रिया द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। दोनों परिस्थितियों में रजोनिवृति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रजोनिवृत्ति का अर्थ है एक आयु में महिलाओं के मासिक-धर्म का बंद हो जाना। शल्य-क्रिया द्वारा गर्भाशय को तब निकाल दिया जाता है यदि उसमें कोई विकार उत्पन्न हो जाए।

रजोनिवृत्त होने पर महिला के शरीर में कुछ परिवर्तन होते हैं। इसका कारण है, ईस्ट्रोजन नामक हारमोन का शरीर में बनना बंद होना। हारमोन के बंद होने की प्रक्रिया धीरे-धीरे ही होती हैं। अस्थियों का दृढ़ होना इसी हारमोन के कारण होता है। इसकी अनुपस्थिति में अस्थियों का दुर्बल होना स्वाभाविक है। रजोनिवृत्ति के पश्चात् लगभग 5 से 8 वर्ष की अवधि में अस्थियाँ कमजोर होने लगती हैं।

अस्थि के साथ दो अहम बातें जुड़ी होती हैं। एक तो अस्थि का निर्माण और दूसरा अस्थि का अवशोषण। अस्थियों का निर्माण करने की भूमिका अस्थिकोशिकाप्रसू (ऑस्टियोब्लास्ट) निभाते हैं। नेपथ्य में जिसे ईस्ट्रोजन सुगमता से सँभालता है। रजोनिवृत्ति के पश्चात् महिला के शरीर में ईस्ट्रोजन का स्तर जब धीरे-धीरे कम होने लगता है तब ऑस्टियोब्लास्ट भी ढीले पड़ जाते हैं। तब उनका स्थान अस्थिअवकोशिकाएं ले लेती हैं। यही कोशिकाएं अस्थियों का अवशोषण करने लग जाती हैं, और अस्थियों की सघनता विरलता की ओर बढ़ने लगती हैं। फलतः अस्थि निर्माण का कार्य पीछे रह जाता है और अस्थिशोषी कोशिकाओं की जीत हो जाती है। अस्थियाँ पतली और कमजोर हो जाती हैं। साथ ही अस्थियाँ भुरभुरी भी हो जाती हैं। इस अवस्था को ही अस्थिसुषिरता (ऑस्टियोपोरोसिस) कहते हैं। इस दौर में अस्थिभंग (फ्रैक्चर) की संभावना अधिक रहती है। मेरूदंड की अस्थियों के छोटे-छोटे भागों में अस्थिभंग होने के कारण, परोक्ष रूप से महिला का कद कम दिखाई देने लगता है, क्योंकि वह झुककर चलने लगती है। ऐसी स्थिति में या फिर किसी भी अवस्था में ध्यान न देने पर, उपचार न

[1] **सी -2-16- सह्याद्रि, प्लॉट-5- सैक्टर-12, द्वारका - नई दिल्ली- 78**

करने पर, स्थिति बिगड़ने लगती है। रजोनिवृत्ति के पश्चात् कमर / पीठ में लगातार पीड़ा होने लगती है, यहाँ, वहाँ फ्रैक्चर होने पर, महिला का चलना फिरना लगभग बंद ही हो जाता है और वह परेशानी में पड़ जाती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ईस्ट्रोजन नामक यह हारमोन शरीर के लिये अत्यंत उपयोगी होता है। यह शरीर में कैल्शियम खनिज के शोषण और अस्थिनिर्माण में सहायता करता है। साथ ही वृक्क (गुर्दों) के द्वारा कैल्शियम उत्सर्जन को कम करता है। ईस्ट्रोजन के साथ प्रोजेस्टेशन हारमोन भी कंधे से कंधा मिलाकर चलता है। इनके न रहने पर रजोनिवृत्त महिलाओं में फ्रैक्चर की संभावना अधिक हो जाती है। अतः ऐसी महिलाओं में उनके अस्थि-पुंज (बोन मास) को सुरक्षित रखने के लिए ईस्ट्रोजन का प्रतिस्थापन अत्यंत आवश्यक है। इससे अस्थिसुषिरता के कारण उभरे फ्रैक्चर की समस्या को रोका जा सकता है। अस्थि की सघनता बढ़ाने के लिए, आयु के साठवें दशक में नियमित रूप से कैल्शियम लेना आवश्यक है।

वृद्धावस्था में उन महिलाओं में फ्रैक्चर की संभावना अधिक होती है जो कैल्शियम का नियमित रूप से सेवन नहीं करतीं। इसके साथ विटामिन डी लेना भी आवश्यक है जो सुरक्षित और लाभदायक भी है।

अस्थिसुषिरता की रोकथाम –

- किसी भी रोग में उपचार की अपेक्षा रोकथाम अधिक महत्वपूर्ण है। अतः महिला को दैनिक रूप से कैल्शियम और विटामिन 'डी' का सेवन करने की सिफारिश की जाती है।
- प्रतिदिन वजन उठाने का व्यायाम करना आवश्यक है।
- शराब / सिगरेट वर्जित है।
- समय-समय पर अस्थि घनत्व (बोन डेन्सिटी) की जाँच करवाना चाहिए। चिकित्सक के परामर्शानुसार औषधियों का सेवन करना चाहिए।
- महिला को संतुलित आहार लेना चाहिए जिसमें कैल्शियम और विटामिन 'डी' उपलब्ध हो।
- नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए।
- स्वस्थ जीवन शैली अपनाना जरूरी है।

महिलाओं के लिए कैल्शियम पूरक व्यवस्था पूर्व रजोनिवृत्ति- 20-50 तक की आयु तक

- 1000 मि. ग्राम कैल्शियम / प्रतिदिन
- 200 मि. ग्राम विटामिन 'डी'/ प्रतिदिन]
- यदि ईस्ट्रोजन प्रतिस्थापन नहीं लिया जा रहा हो तो कैल्शियम की मात्रा को बढ़ाकर 1500 मि. ग्राम कर दें।

- **रजोनिवृत्ति के पश्चात् –** 60 से 70 आयु के बाद
- 1000 मि.ग्राम कैल्शियम /प्रतिदिन
- 800 मि. ग्राम विटामिन 'डी'/ प्रतिदिन
- यदि ईस्ट्रोजन प्रतिस्थापन नहीं लिया जा रहा हो तो कैल्शियम 1500 मि. ग्राम प्रतिदिन।

ज्ञान चर्चा - 4

जैविक – घड़ी (Biological Clock)

डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन[1]

टिक-टिक की आवाज़ तो हम सब जानते हैं, यह तो दीवार घड़ी की आवाज़ है, आप भी कह उठेंगें "बस हम भी तो यही कहने वाले थे !"

यह तो बात हुई बाहर लगी यांत्रिक घड़ी की, लेकिन चौंका देने वाली बात यह है कि हमारे शरीर के भीतर एक नहीं, अनगिनत घड़ियाँ लगी हुई हैं, जो अविराम अपना कर्तव्य निभाती हैं और विभिन्न कार्यों को करने के लिए सदा सर्वदा सतर्क रहती हैं।

'बायो' एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है 'जीवन'। इस घड़ी का हम सभी को कभी न कभी अनुभव हो जाता है। कुछ उदाहरण हमारे सामने आते ही रहते है, जैसे सूरजमुखी का फूल जो जिस तरफ सूरज जाता है वह उसी तरफ घूम जाता है। सुबह उसका मुख पूर्व की ओर होता है और शाम को पश्चिम की ओर। इसीलिये तो उसका नाम सूरजमुखी पड़ा। उसे सुबह शाम की खबर किसने दी? उसी प्रकार हरसिंगार के फूल रात के अंधेरे में खिलते हैं, सुबह होते होते झड़ जाते हैं। इन्हें- किसने आदेश दिया कि रात को खिलना है, सुबह झड़ जाना है।

एक दिन ऐसा हुआ कि राजू ने रात को अपनी अलमारी खुली छोड़ दी। बंद करना उसे याद नहीं रहा सुबह देखा तो कुछ किताबों के पृष्ठों के टुकड़े बाहर पड़े थे, लेकिन वहाँ चूहे नज़र नहीं आये। राजू के बड़े भाई ने उसे बताया था कि चूहे दिन में बगीचों में चले जाते हैं जहाँ मिट्टी में बिल बने होते हैं। शाम होते ही घर की दीवारों के साथ-साथ एक दूसरे की पूंछ पकड़ कर किताबों की अलमारी व रसोई के डिब्बों में घुस जाते हैं और कुतरने का काम शुरू कर देते हैं।

सूरज के उगते ही हम भी अपनी आँखें मलकर उठने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन हम घड़ी और उसके अलार्म पर अधिक ध्यान/विश्वास रखते हैं। आज भी किसान आसमान पर सूरज की स्थिति को

[1] **सी -2-16- सह्याद्रि, प्लॉट-5- सैक्टर-12, द्वारका –नई दिल्ली- 78**

देखकर समय का अनुमान लगा लेते हैं। उल्लिखित बातें किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जैविक घड़ी की उपस्थिति का प्रमाण हैं।

कुछ घटनाओं का चंद्रमा से भी संबंध होता है। जैसे समुद्र की लहरों का ऊचे उठना (ज्वार-भाटा) या कमलिनी का खिलना ।

ज्ञान चर्चा - 5

"पक्षियों के घोंसले"

डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन[1]

प्रकृति व पर्यावरण के अपने कुछ नियम हैं, जिन्हें तोड़ना या न मानना अपने ही जीवन से खिलवाड़ करने जैसा है। प्रकृति से जुड़े लोग उसके साथ अन्याय नहीं होने देते। वे चाहते हैं कि पक्षियों को उनके भोजन, जैसे कीड़े – मकोड़े, मछली, फूल/मकंरद को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। हालांकि पक्षियों के घोंसलों को देखकर उनके विषय में जानने की उत्सुकता होती है और मन में कितने ही प्रश्न उठते हैं। इतनी मेहनत से बनाए गए घोंसले का रचयिता कौन सा पक्षी होगा? वह कैसा दिखता है? घोंसले में लगाई सामग्री क्या है? पक्षी के घोंसले को देखकर मनुष्य को एक प्रोत्साहन भी मिलता है। पक्षी अपने घोंसले बच्चों के लिये बनाते हैं। प्रजनन-काल की शुरुआत में ही घोंसलों का निर्माण शुरू हो जाता है ताकि वे अपने अंडों व चूजों को सुरक्षित रख सकें। परभक्षियों से बचाना नर/मादा पक्षी का प्रमुख कर्तव्य होता है। अंडे देने से पहले नर/मादा पक्षी पेड़ों, झाड़ियों, झुरमुटों, बिजली के तारों पर बैठकर अपना समय गुजारते हैं। अपनी संतति के प्रति उनका कितना महान त्याग है! क्या उन्हें आंधी, बारिश, धूप, ठंड झेलना नहीं पड़ता? टिटहरी खुले मैदान में जहाँ उसे कुछ सुरक्षित गढ़ मिलते हैं वहाँ तिनकों को एकत्र करके घोंसला बना लेती है। अंडों का रंग भी सूखे तिनकों व झाड़ियों से मेल खाता है। उनके लिये यह प्रकृति की अद्‌भुत देन है। फाख़्ता के घोंसले लचर-पचर ही होते हैं, जो चीज जब मिल जाए जैसे घास-फूस तीलियां, कपड़ों के तानों-बानों से, घरों के छज्जों पर या दो टहनियों के बीच बने कोण पर तिनके जमा करके बन जाते हैं।

चील व कौओं के घोंसले पेड़ों की ऊंचाई पर मोटी-पतली तीलियों से थालीनुमा होते हैं। नवजात बच्चों को ये कठोर तिनके न चुभें, इस वजह से मुलायम पत्तियों को बिछाया जाता है। बुलबुल घास व पेड़ की जड़ों से रेशे खींचकर कटोरीनुमा घोंसले बनाती है, ताकि बच्चों को न चुभें।

फूलसुँघनी (सनबर्ड) मकड़ी के रेशों के सहारे सुंदर व सुराहीनुमा घोंसला बनाता है। यह घोंसला भीतर से मुलायम रेशों से ढंका होता है। दर्जिन चिड़िया (टेलरबर्ड), पत्तों को सीकर बच्चों के लिये सुंदर व अत्यंत सुरक्षित घोंसला बनाती है। क्या पक्षी के घोंसलों को देखकर हर व्यक्ति दाँतों तले

[1] **सी -2-16- सह्याद्रि, प्लॉट-5- सैक्टर-12, द्वारका –नई दिल्ली- 78**

उंगली दबाता है। कला व कल्पना का एक अनूठा उदाहरण यह घोंसला इस प्रकार बना होता है जिसके अंदर साँप व छिपकलियों के घुसने का प्रश्न ही नहीं उठता। जलीय पक्षी भी अपने घोंसले जल में उगी वनस्पतियों के बीचोंबीच बनाते हैं जिसमें उनके बच्चे सुरक्षित रहने के साथ ही शीघ्रातिशीघ्र तैरना भी सीख लेते हैं

धनेश पक्षी (हार्नबिल) पेड़ के खोखले में मिट्टी की दीवार बनाकर अपना घोंसला तैयार करते हैं। अंड़ा देने के लिये मादा पक्षी भीतर जाती है, उसके बाद मात्र इतनि जगह बचती है, जिससे पक्षी की चोंच बाहर निकल सके।

यदि हम घोंसले के भीतर पक्षी को प्रवेश पाते या फिर नन्हें चूजों को हिलते डुलते अथवा क्रीडा करते हुए देखें तो उनकी इन स्वाभाविक क्रियाओं का दूर से आनंद लेना चाहिए, उन्हें किसी प्रकार की क्षति पहुंचाना वर्जित है।

ज्ञान चर्चा - 6

श्रोणिशोथ रोग

डॉ. (श्रीमती) वासंती रामचंद्रन[1]

महिलाओं के जननांग के मुख्य भाग कुछ इस प्रकार होते हैं:

- गर्भाशय (यूटेरस) – जिसके भीतर आंतर द्वार होता है। बाह्य द्वार जो योनि में खुलता है।
- गर्भाशय के ऊपरी हिस्से में दोनों तरफ दो नलीनुमा भाग होते हैं, जो डिम्बवाहिनी नलियाँ फेलोपियन ट्यूब कहलाते हैं।
- अंडाशय, गर्भाशय के पिछले हिस्से में दोनों तरफ लगे होते हैं जो गोलाकार होते हैं।
- गर्भाशय का बाह्य द्वार योनि में खुलता है। योनि एक नली जैसी होती है।
- योनि–मुख शरीर के बाह्य अंग में खुलता है।

जब कभी महिला उदर के निचले हिस्से में पीड़ा बताती है और कभी-कभी यह पीड़ा असहनीय हो जाती है, संभोग के समय दुःख देता है, तो सोच लेना चाहिये कि उसे श्रोणि-शोथ रोग होने की संभावना है। अतः उसके अनुसार निदान व उपचार आवश्यक है।

जननांग में स्थित आंतर – द्वार के ऊपर के भाग में जब संक्रमण होता है तो उसे श्रोणिशोथ रोग के अंर्तगत गिना जायगा । इस शोथ रोग में निम्नलिखित भागों में शोथ हो सकता है –

जिन्हें – अंतर्गर्भाशय कला शोथ (एण्डोमिट्राइटिस) -डिंबवाहिनी – ग्रंथिशोथ (ट्यूबोओवेरियम मास) तथा-श्रोणी पर्युदर्याशोथ (पेल्विक पेरिटोनाइटिस), के रुप में जाना जाता है।

- ये संक्रमण गर्भाशय की ग्रीवा से ऊपर चढ़ता है। इसके कई कारण होते हैं, मुख्य रूप से जीवाणु। जैसे एन. गोनोरी, सी. ट्रेकोमिटीस, या एनऐरोबिक जीवाणु। कभी- कभी श्रोणी शोथ रोग माइकोप्लाज़्मा होमिनिस के कारण भी हो सकता है। इस रोग का यही खतरा होता है कि जब यह पर्युदर्या में फैल जाय तो स्थिति अनियंत्रित हो जाती है। कुछ ही समय में यह रोग श्रोणी पर्युदर्याशोथ या फिर डिंबवाहिनी ग्रंथिशोथ का रूप लेकर कष्टप्रद स्थिति में बदल जाती है जिससे जान को खतरा भी हो सकता है। यदि समय पर उपचार न हो तो कुछ भी हो सकता है,

[1] **सी -2-16- सह्याद्रि, प्लॉट-5- सैक्टर-12, द्वारका –नई दिल्ली- 78**

एक बात और है यदि इस रोग की शुरुआत डिंबवाहिनी नलिका से हो तो उसमें स्थित रंध्र बंद हो जाता है। अंडाशय से 'अंड' निकलकर सरलता से गर्भाशय में ढुलक नहीं सकते, ऐसे में आंशिक बंध्यता हो सकती है। यदि दोनों डिंबवाहिनी नलिका बंद हो जाएं तो पूर्ण – बंध्यता हो सकती है।

कभी-कभी आंशिक-बंध्यता की स्थिति में संभोग के बाद अंडाशय से निकले अंड डिम्बवाहिनी तक तो पहुँच जाते हैं, शुक्राणु द्वारा निषेचित भी हो जाते हैं लेकिन वहीं अटक जाते हैं, गर्भाशय तक नहीं पहुँच पाते। ऐसे में उनकी वृद्धि की शुरुआत हो जाती है। स्थान सीमित होने के बाद भ्रूण की वृद्धि तो नहीं रुकती, हाँ डिम्बवाहिनी नली फट जाती है। साथ ही खून की नलियाँ भी फट जाती है और आपातकालीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फटी नलियों से निकला रक्त उदर में एकत्र हो जाता है, जिसका पता बहुत देर बाद चलता है। ऐसी स्थिति में रोगी को शीघ्रातिशीघ्र अस्पताल पहुँचाना ही अनिवार्य नहीं बल्कि उसे शल्य क्रिया भी उपलब्ध होनी चाहिए।

ध्यान रहे कि कोई भी महिला जब उदर के निचले हिस्से में पीड़ा की शिकायत करे, परेशान हो तो उसका निदान व समयोचित उपचार होना आवश्यक है। परामर्शदाताओं को समय-समय पर महिलाओं की टोलियों में बैठकर चर्चा करनी चाहिए। यदि महिला की नसबंदी का आपरेशन हो भी गया हो तो संभोग के समय निरोध / कंडोम का इस्तेमाल करने में कोई हानि नहीं। इस स्थान पर निरोध का इस्तेमाल गर्भनिरोधक की तरह नहीं, बल्कि योनि का जीवाणुओं से संक्रमण निरोधक उपाय के रूप में होता है।

ये भी समझना जरूरी है कि किन-किन परिस्थितियों में महिला का उपचार बाह्य-रोग विभाग अथवा अस्पताल में भर्ती होने से हो सकता है।

पत्रिकाएँ (त्रैमासिक) / Journals (Quaterly)

1- विज्ञान गरिमा सिंधु / Vigyan Garima Sindhu – Sciences, Applied Sciences and Technology

2- ज्ञान गरिमा सिंधु / gyan Garima Sindhu – Humanities and Social Sciences

सदस्यता शुल्क (उपर्युक्त दोनों के लिए) / Persons / Instututions:

प्रति अंक व्यक्तियों/ संस्थानों के लिए **Per Issue- For Individual / Institutions**	रु. 14.00 Rs. 14.00	पौंड 1.64 £ 1.64	डालर 4.84 $ 04.48
वार्षिक चंदा **Annual Subscription**	रु. 50.00 Rs. 50.00	पौंड 5.83 £ 5.83	डालर 18.00 $ 18.00
प्रति अंक विद्यार्थियों के लिए **Per Issue – For Students**	रु. 8.00 Rs. 08.00	पौंड 0.93 £ 0.93	डालर 10.80 $ 10.80
वार्षिक चंदा **Annual Subscription**	रु. 30.00 Rs. 30.00	पौंड 3.50 £ 3.50	डालर 2.88 $ 2.88

बिक्री संबंधी नियम / Rules Regarding Sales

1- आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध होंगे।

The Publications of the Commission are available at the sale counter of the Commission and at the sale counters of Department of Publication, Government of India.

2- सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75% तक भी छूट जाती है।

A rebate of 25% available on the purchase of all the publications of the Commission. Rebate upto 75% is given on a few old publications.

3- सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, CSTT, New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं हैं। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं। लेकीन सरकारी संस्थानों, केन्द्रीय

उपक्रमों और विश्वविद्यालयों को आदेश प्राप्त होने पर शीघ्र ही भेज दी जाएंगी, परन्तु इनका भुगतान एक माह के अंदर करना होगा।

An invoice is issued by the Commission on the receipt of all types of purchase orders, Bank draft or moey order for the requisite amount should be drawn in favour of the Chairman, CSTT, New Delhi. Cheques are not acceptable. The books are sent only after the receipt of requisite amount but in case of Universities, Government institutions and Government of India Undertaking, the books will be dispatched immediately after receiving the demand of books, for which the payment will have to make within a month.

4- चार किलोग्राम वजन तक सभी पुस्तकें सामान्य डाक / अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैंकिग तथा फॉरवर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

All books weighing upto 4Kg. are sent by ordinary dak/unregistered parcel. No packing and for warding charge is levied on sending these books.

5- चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जा सकती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन- व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही वहन किया जाएगा।

All books weighing more than 4 Kgs. are sent by road transport and the payment of transport charges on it are to be met by the indentor>

6- पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

After sending the books by the road, transport, the original receipt (Bill T) is immediately sent by the Commission to the indentor by registered Post. However, if the books are not got released from the transport office within the stipulated period, all the extra-charges to be levied on it are to be met by the indentor.

7- रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें ले जा सकते है।

Minimum weighing charge is levied for books sent by road transport that varies based on distance. The concerned institution may also directly Purchase books by making necessary payment to the Sales Unit of the Commission.

8- दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं है। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होगीं।

It will not be possible to supply books by post against the orders received from Delhi and its nearby area. The concerned institution will have to get the books from the Sales Unit of the Commission by making necessary payment.

9- पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह के नुकसान का दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

All care is taken to ensure that the books are properly packed and sent to the indentor in a good condition. The books are sent by ordinary dak/un-registered parcle/road transport. The Commission will not be held responsible for any damage/loss in the transit.

10- सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकें वापस नहीं होंगी। यदि क्रय राशि का समायोजन-आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

Generally, after issuance of the bill, neither change is allowed in the purchase order nor books are taken back. If need arises to adjust the amount, money will not be returned. However Only books will be supplied against the said amount.

ग्राहक फार्म

सेवा में :

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066

महोदय,

कृपया मुझे "ज्ञान गरिमा सिंधु" (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष /पाँच वर्ष के लिए ..... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम.....

पूरा .....

.....

भवदीय

(हस्ताक्षर)

	सामान्य ग्राहकों / संस्थाओं के लिए	विद्यार्थियों के लिए
प्रति अंक	**रु. 14-00**	**रु. 8-00**
वार्षिक चंदा	**रु. 50-00**	**रु. 30-00**
पाँच व	**रु. 250-00**	**रु. 150-00**
दस वर्ष	**रु. 500-00**	**रु. 300-00**
बीस वर्ष	**रु. 1000-00**	**रु. 600-00**

डिमांड ड्राफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकांउट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी हैतो कृपया निम्न प्रमाणपत्र- भी संलग्न करे :

कृपया डिमांड ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम और पता लिखें

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारीश्री/श्रीमती/ ..... इस विद्यालय/ महाविद्यालयविश्व/विद्यालय के ..... विभाग का छात्रकी/ छात्रा है।

(हस्ताक्षर)

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)

(मोहर)

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र
Sales Counters of Department of Publication

1	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एम्पोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली-110001	**Kitab Mahal** Department of Publication, Baba Kharag Sigh Marg, State Emporia Building, Unit No.-21, New Delhi-110001
2	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन, गेट न.-3, नई दिल्ली-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Udyog Bhawan, Gate No.-3, New Delhi-110001
3	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, लोयर्स चैंबर, दिल्ली उच्च न्यायालय, गेट न.-3, नई दिल्ली-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Lawyers **C**hambers, Delhi Highcourt, New Delhi-110001
4	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Union Public Service Commissions, Dholpur House, New Delhi-110001
5	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, सी.जी.ओ.काम्पलेक्स, न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई-400020	**Sale Counter** Department of Publication, C.G.O. Complex, New Marine Lines, Mumbai-400020
6	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, के.एस.राय मार्ग, कोलकाता-700001	**Pustak Depot,** Department of Publication, K. S. Roy Marg, Kolkata-700001

आयोग का बिक्री केंद्र
Sales Counter of CSTT

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग **शिक्षा मंत्रालय** **पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066.**	**Commission for Scientific and Technical Terminology** **Ministry** of Education **West Block-VII, R. K. Puram,** **New Delhi-110066**

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
For detailed information please contact:

प्रभारी अधिकारी (बिक्री) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मंत्रालय पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 फोन नं.-01126105211/विस्तार-246	**The Officer-in-Charge (Sales)** Commission for Scientific and Technical Terminology Ministry of Education West Block-VII, R. K. Puram, New Delhi-110066 Ph. No.-011-26105211/ Extn.-246